

शककालीन भारत

इतिहास सीबन की जाती है। उसमें हमारे उन गुणों का सङ्ग्रह होता है जिनके कारण हम ऊपर उठे और हमारी उन मूलों की गाथा होती है जिनके कारण हम गिरे। इतिहास हमें पुकारकर कहता है, सँभलो, ये तुम्हारी मूलें थीं, इनसे बचो और अपने उन गुणों की ओर देखा जिनमें तुम्हारा गौरव प्रकाशित हुआ था। इतिहास हमारे निराशा से बचे हुए मन के अन्धकार का प्रकाशस्वप्न है। यह हमसे कहता है, प्रेय को लो और प्रेय को छोड़ो। यही इतिहास का उपयोग है और यही उसका गौरव है।

—श्री रामनाथ 'सुमन

शककालीन भारत

लेखक

प्रशान्तकुमार जायसवाल

भूमिका

डा० अरुण विश्वेश्वर नारायण

[अध्यक्ष प्राचीन इतिहास विभाग, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी]

सम्पादक

श्रीरजन

प्रकाशक

साधना-सदन

लूकरगञ्ज, इलाहाबाद-१

प्रकाशक
साधना-सदन
शुक्रराज, इलाहाबाद १
प्रथम संस्करण
फरवरी : १९५६

मुद्रक
भागव प्रेस,
१, बार्ड-का-बाग, इलाहाबाद १
मूल्य
पाँच रुपये पचास नये पैसे

समर्पण

श्री भगीरथजी कलौडिया
जिनके ब्यक्तित्व ने मुझे
आकर्षित किया

भूमिका

हिन्दी में सभी भी ऐतिहासिक साहित्य की कमी है। स्कूलों और कॉलेजों के लिए कुछ पाठ्यग्रन्थ तो उपलब्ध हो रहे हैं किन्तु स्वतन्त्र रूप से शापग्रन्थ या किनो कान्फिटेय अथवा रामबंश कितोय का विवरणात्मक इतिहास हिन्दी में उतनी संख्या में उपलब्ध नहीं है, जिसकी उच्चरी आवश्यकता होती चाहिए। एम० ए० और पी०एच० डी० के शोध बन्धों के लिए कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी का माध्यम स्वीकार कर लिया गया है और यदि इनका भी समुचित ढंग से प्रकाशन की व्यवस्था हो तो हिन्दी में ऐतिहासिक साहित्य का संबंध एक अच्छे ढंग में हो सकेगा। प्रस्तुत ग्रन्थ मूलतः एम० ए० की उपाधि के लिए निबंध के रूप में लिखा गया था। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि श्री प्रह्लादकुमार आपसबाल के जल्माह के फलस्वरूप और प्रकाशक श्री श्रीरंजन के सहयोग से इसका हिन्दी में प्रकाशन संभव हो पा रहा है।

शक जाति विशाल सीपियन जाति की एक शाखा थी जिसका मूल निवास मध्यएशिया का भूमि प्रदेश था—बाकिरण ज़ागर से इमिक्टून तक तक यह फैले हुए थे। शक जाति इसकी पूर्वतम शाखा थी जो इमिक्टून स्टोन के बंटे में बसी थी। चीनी वृत्तार्थों में इनको सार' कहा गया है। इन्हीं सार (Sar) सके (Sace) अथवा शक जाति को हर्मुंग-नु जाति के घातक से सामकर घाई मृत-विधियों द्वारा घातक कर दिये जाने के कारण अपना मूल निवास छोड़ना पड़ा। उन्हें मुगलिय स्पान की आवश्यकता थी। बह दखिन की ओर बड़े धीरे धनेक रास्तों की खोजना करते हुए भारत की-रिम में पहुँचे और वहाँ पर अपना सामन स्थापित किया। की-रिम का समीकरण अभी भी विचार का विषय है फिर भी चीनी वृत्तार्थों के विवेचन से मुझे लगता है कि प्रारंभ में की-रिम

का धर्म स्वात घोर पतिव्रती गंधार से रहा हुआ। कामाक्षर में पूरे कर्पूर को की पित कहा जाने गया घोर बार में ती कुपाय साधाम्य को भी कभी-कभी की-पित नाम से जाना जाता था। भारत में इनके घोर भी कई केन्द्र थे। इन्होंने समय-समय पर ही बर्षों तक शासन किया घोर यही के जन-मानस में बुल-मिल गये। सुतन्त्रमानों घोर प्रेमों से पूर बिज बिबेती जाति में बहुत दिनों एक भारत-भूमि पर शासन किया घोर यही के कम समाज संस्कृति एवं कला को प्रभावित किया उनमें शकों का स्वान प्रमुख है। भारतीय संस्कृति के संरक्षण में शकों के पापशात के पड़सुर्मा का मुस्मान करना शोच का विषय होता चाहिए।

इस विषय पर घसी तक धर्म की प्रथमा हिन्दी में इतना विस्तृत विवेचन किसी ने प्रस्तुत नहीं किया है। यद्यपि शकों के जीवन पर धर्मों में कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं। तथापि वे सभी निरक्षर उनके राजनीतिक जीवन पर ही चिन्तित करते हैं। धर्मों का पाप में स्वर्ण, रूप से ही सुपाकर चट्टीपाय्याय प्रथम इतिहास विभाग विरचकारनी में ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। विष्णु धर्म से घनिक समय पूर का पूर ग्रन्थ शकों के राजनीतिक जीवन का ही विवेचन करता है। उसी प्रकार भी समय-समय का ग्रन्थ भी जो पंचाच विरचिचामय ने एम० ए० उपाधि के लिए लिखा गया था केवल मायमी पकन करता है। इस पुस्तक में महापद्म के चहुरात घोर शक्यिनी घोर सुपाय के अटन बुल के ही इतिहास का वर्तन विषय गया है। इनमें समय-समय का शक्य के जीवन की विवेचना किसी में समय-समय से नहीं की। विष्णु प्रस्तुत पुस्तक के अन्त में शकों के जीवन की समय-समय से विवेचना प्रस्तुत करने की चेष्टा सभी जगह शक्यियों के साधारण पर किया है जो प्रोत्साहनीय है।

अक्षय फिरोर मारायन
प्रथम

प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं कुशल विभाग
राजी हिन्दू विरचिचामय बापसुनी

विवरण सूची

| विवरण | पृष्ठ |
|---|----------------|
| संकेत सूची | i—xvi |
| शुद्धकालीन भारत (मानचित्र) | (प्रारम्भ में) |
| १-जातीय परिचय और भौगोलिक स्थिति | ११३ |
| स्रोत | १ |
| (१) शक नाम पढ़ने का कारण | १ |
| (२) शकों का आदि देश | ४ |
| (३) भारत की ओर प्रस्थान | ८ |
| (४) भारतीय शक कौन थे ? | ११ |
| (५) शक स्थान की भौगोलिक स्थिति | १३ |
| २-शकों का राजनीतिक उदयान | १४-६४ |
| (१) शक के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति | १४ |
| (२) शकों का भारत आगमन | १८ |
| (३) मिन्त-वीबाप का शक कुल | २८ |
| अ मोग | २१ |
| आ शासक की सीमा | २३ |
| इ अय | २६ |
| ई विजय और राज्य-सीमा | २६ |
| (४) कुष और घट्टर का अय कुल | ३१ |
| (५) मयुरा के अय | ३३ |
| (६) मयुरा निह शोक लेख | ३४ |
| अ रामूल | ३४ |
| आ शोबान | ३४ |

| विषय | | | पृष्ठ |
|-------------------|------|------|-------|
| इ राज्य विस्तार | --- | ---- | ३५ |
| ई स्वरूपस्थान | | -- | ३५ |
| उ घहरात कौन थे ? | | --- | ३६ |
| ऊ कहर की अवस्थिति | -- | .. | ४० |
| ए. भूमक | ---- | ---- | ४१ |
| ए. नरपान | ---- | ---- | ४२ |
| ओ उपशशात | -- | | ४४ |
| ओ. अयम | | .. | ४५ |

३-उज्जयिनी और सुराष्ट्र क महाघत्रप

| | | | |
|-------------------------|------|------|----|
| अ अयन | -- | ---- | ४५ |
| आ अययामन | -- | --- | ४६ |
| इ अययामन | | .. | ४७ |
| ई यामपतद | ---- | | ५१ |
| उ अययामन और अययिह प्रथम | | .. | ५२ |
| ऊ अयसेन प्रथम | | | ५३ |
| ए उचरकालीन शक रूप थे | .. | --- | ५४ |
| ए. शक महाघत्रपों का वनम | | .. | ५६ |

४-राजनीतिक विचार और शासन-पद्धति

| | | | |
|--------------------------|------|------|----|
| (१) राज्य का स्वरूप | -- | | ६५ |
| (२) प्रजा का महत्त्व | --- | | ६६ |
| (३) मंत्रिमण्डल | .. | ---- | ६८ |
| (४) गौर जानपद | | --- | ७१ |
| (५) गौर जानपद का महत्त्व | --- | --- | ७३ |
| (६) मंत्रि विभाग | ---- | --- | ७४ |

| विषय | | पृष्ठ |
|--|-----|---------------|
| (७) युद्ध में नैतिक परम्पराओं का पाठन | .. | ७५ |
| (८) राजस्व-व्यवस्था | | ७६ |
| (९) कर्तों पर मंत्रिपरिषद् का अधिकार | | ७७ |
| (१०) 'कर' राजा का वेतन होता था | | ७८ |
| (११) राजकर संघर्षी सिद्धान्त | | ७९ |
| (१२) राजस्व के स्रोत | .. | ८० |
| (१३) न्याय व्यवस्था | .. | ८२ |
| (१४) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एवं व्यवहार | .. | ८२ |
| (१५) वैराग्य-शासन-प्रणाली | | ८३ |
| (१६) शासन पद्धति | .. | ८५ |
| अ केन्द्रीय शासन | --- | ८५ |
| आ मंत्रिपरिषद् | - | ८६ |
| इ कोषाध्यक्ष | | ८७ |
| ई युवराज | --- | ८८ |
| उ प्रान्तीय शासन | .. | ८९ |
| ख स्थानीय शासन | --- | ९० |
| (१) जनपद | - | ९० |
| (२) पौर | --- | ९१ |
| ध-सामाजिक जीवन | | ९१ १०१ |
| (१) ब्रह्म व्यवस्था | --- | ९१ |
| (२) विवाह | - | ९५ |
| (३) बहुव्रतनी प्रथा | - | ९७ |
| (४) अन्तर्जातीय विवाह | - | ९८ |
| (५) स्त्रियों की रक्षा | --- | ९८ |

शक-अभिलेख सूची

पृष्ठ

- १ सिध—पंजाब के लेख ----- प
- (क) मेरा अभिलेख
 (ल) शहीद अभिलेख
 (ग) वल्लभिका साम्राज्य लेख
- २ मथुरा क चतुर्षो के लेख ----- पा
- (क) मथुरा तह शर्म लेख
 (ल) मारा कृत लेख
 (ग) मथुरा अयागपट्ट लेख
 (घ) शोकास के कास का मथुरा प्रस्तर लेख
 (ङ) " " " " "
 (च) जैन मूर्ति पर लेख
 (छ) महाराज महाबल म ... का लेख
 (ज) कनिष्क का बौद्ध मूर्ति पर अंकित लेख
- ३ महाराष्ट्र के चहरातों के लेख ----- धी
- (क) माणिक गुहामिलन (घ, ङ, च, ष, ष)
 (ल) काले गुहामिलेख (घ, ष)
 (ग) बुधर गुहामिलन
- ४ अश्वमेधिनी और मुराष्ट्र क महाचतुर्षो क लेख ----- ल
- (क) अश्वमेध प्रस्तर लेख
 (ग) अश्वमेध प्रथम का अनागद लेख
 (ग) अश्वमेध प्रथम—अनागद लेख
 (घ) अश्वमेध प्रथम—गुणदा लेख
 (ङ) अश्वमेध-यात्र अनागद लेख
 (च) अश्वमेध प्रथम—गरहा लेख
 (छ) अश्वमेध—अनागद लेख
 (ज) अश्वमेध—मूलवानार लेख
 (झ) अनागद—मिठी की मुद्रा
 (ञ) अश्वमेध—प्रस्तर लेख

संकेत सूची

- म० मा०—महामारत
 कू० पु०—कूर्म पुराण
 मनु० स्मृ०—मनु स्मृति
 कै० हि० इ०—कैत्रिक हिस्ट्री आफ इंडिया
 ब्रली हि० इ०—ब्रली हिस्ट्री आफ इंडिया
 ग्री० कै० इ०—ग्रीक इन बकिट्टिया एबड इण्डिया
 का ई इ०—कापम इन्क्रिप्टानम इंडिकेरम
 सी० पी० इ० हि०—सीथियन पारियड आफ इंडियन हिस्ट्री
 सं० इ०—संश्लेष्य इतिहास्य विवरिग अान इंडियन सिविलाइजेशन
 पी० हि० ए० इ०—पैलिटिकल हिस्ट्री आफ एनेट इंडिया
 हि० इ० एबड० आर्ट—हिस्ट्री आफ इंडियन एबड इण्डियनेशियन आर्ट
 ए म्यू हि० इ० ए०—ए म्यू हिस्ट्री आफ इंडियन गणुल
 म० म्यू० कै०—मधुय म्यूजियम कैटलाग
 ई० ऐ०—इंडियन ऐंटिक्वटी
 एरि० इ०—एरिमाफिया डिक्का
 ज० रा० ए० सा०—जनल रावल एरिमाफिक सोसाइटी
 ज० बी० ब्रा० रा० ए० सो०—जनल बीके ब्राय रावल एरिमाफिक
 सोसाइटी
 म० आर्के० सर्वे इ०—मेमबर आफ दि आर्केलाजिकल सर्वे इंडिया
 ज० रि० उ० रि० सी०—जनल रिहर ठडीसा रिचर सोसाइटी
 ज० उ० प्र० हि० मो—जनल उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसाइटी
 आर्के० सर्वे० ब० इ०—आर्केलाजिकल सर्वे वर्धन इंडिया
 बि० रम० प्र०—बिहम स्मृति ग्रन्थ
 ना० प्र० प०—नागरीमन्थारशा पत्रिका
 भा० इ० मी०—भारतय इतिहास की मामाता
 दि० सा० इ० इ०—दिली मादिसर का इस्त इतिहास
 पी० म्यू० कै०—आय म्यूजियम कैटलाग

- इ० म्यू० फे०—केटलाग आफ दि कनामथ आफ इंडियन म्यूजियम
 वि० पु०—विष्णु पुराण
 श्रु०—श्रुतग्रन्थ
 म्या० ए०—म्याय एन
 ज० इ० सी० प्रो० प्रो०—जनरल आफ दि इंडियन, सेलाइटी आफ
 थोरियडस प्रान्त
 पी० हि० पा०—ए पीकितिकल हिस्ट्री आफ पार्थिया
 इ० हि० क्वा०—इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली
 बी० एस० प्रो० ए० एच०—युनेस्को आफ दि स्कूल आफ आरि
 बंरल एंड प्रोसीकन एड्युम
 ज० इ० दि०—जनरल इंडियन हिस्ट्री
 मि० म्यू० फे०—मि टेश म्यूजियम केटलाग
 ए दि० लं० लि०—ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर
 मा० मा० इ०—प्राचीन भारत का इतिहास
 हि० ए० इ०—हिस्ट्री आफ्ट पेंसेट इंडिया
 ज० ए०—जनरल एशियाटिक
 ए० दि० बकन—एमेरि हिस्ट्री आफ्ट बकन
 आर्के० सर्वे रि० वे० इ०—आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट वेस्टन इंडिया
 मा० मा० या० प०—प्राचीन भारतीय शासन-प्रणालि
 रि० श० इ०—रि शकल इन इंडिया
 वा० पु०—वापु पुराण
 ज० व० दि० वू०—जनरल, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी
 इ० क०—इंडियन कम्पन
 आर्हि० सं०—आर्हिबुज्य संहिता
 मे० आर्के० सर्वे० ए० रि०—मेमोयर्थ आर्केलाजिकल सर्वे एम्पुअरल
 रिपोर्ट
 बी० व० ए०—बीबापन घर्म एन
 ए० मा०—एतनय ब्राह्मण

प्रथम अध्याय

जातीय परिचय और भौगोलिक स्थिति

भारत भूमि प्राचीन काल से ही अनेक जातियों के आगमन का साक्ष्य रखी है। अनेक जातियाँ इस देश में संक्रमण प्रणवा आक्रामक के रूप में आईं। पर इस मिट्टी में अपनी एक विशेषता भी रखी है जो यी सबकी आत्मगतत् कर लेने की प्रवृत्ति। सब आकर यहाँ एक ही रंग में रंग गए और पृथक्त्व में एकत्व का अपना ऐसा प्रबुध उदाहरण बना मये जो विश्व के इतिहास में अद्वितीय है। यह आज के समाज में शकों की हृदय निकालना कठिन है।

स्रोत — भारत में बाहर से आने वाली जातियों में एक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में और अभिलेखों में इनका बचन मिलता है। शकों का उल्लेख अधिकतर यवनो के साथ हुआ है। भारतीय साहित्य में शकों के निम्नांकित उल्लेख पाये जाते हैं; ब्राह्मीक रामायण में शकों का उल्लेख तथा प्राचीन भारतीय भाषों के साथ बुद्ध करत हुए, हुआ है। बालकाण्ड में एक जगह उल्लेख आता है—“युन धोर शको का पैदा किया उनमें यवन भी मिले हुए य। एक और यवनो से मिली हुई जाति से भूमि आप्लावित हा गयी।” महाभारत में शकों का उल्लेख यवन, तुषार, कश्यप आदि जातियों के साथ हुआ है। महाभारत में ऐसा बर्णन मिलता है कि ये जातियाँ भारत बुद्ध—में कुश्यों की ओर से लड़ी

१. भूय एवास्तबद्धोरान् शकान् यवनमिभितान् ।

वैशम्पैयण्ये महाभारतम् ॥ १११ ॥ १११ ।

यी—शुक्र तुषार और बबन चाय-चाय काम्भीत्र सहने की इच्छा वाले ...^१ मानव धम शम्भ के मगु संहिता में भी इन शकों का उल्लेख बबन, पहलव और पोपह, द्रविड, किरात, दरद, गरा पारद आदि जातियों के साथ हुआ है तथा इनको ब्राह्मणों से समक न रहने के कारण बर्णन बतलाया गया है।^२ पुराणों में भी इनका बर्णन मिलता है।^३ पाण्डिनि^४, फलवाचन^५, पर्लबलि^६ आदि में भी इनका बर्णन किया है। अमिलगणों में इनका बर्णन वाकिष्णपुत्र भी पुलोमात्री^७, समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति^८, मगुरा मिह शीप सोम^९ एवं मयूरशमस्य क बर्णवल्ली प्रस्तर लम्ब^{१०} आदि में हुआ है।

मध्य एशिया में निवास करने वाली स्कीथियन जाति की शाखा-

१ शुक्रालुषारा यबनगिभिदान्

नहेव काम्भीत्रवरीत्रिपातवः ॥ कर्त्त पत्र ६४।१६ ।

२ बर्णलक्ष्य गता लोके ब्राह्मणादराजेन् य ॥

पौण्ड्रकालबौद्धविद्या काम्भीत्रा यबना शुक्राः ।

पारवाः पहलवाश्चभिना किराता दरदाः गराः ॥

मनु० १०।४३, ४४

३ बा० पु ब० इरनेस्टीत्र अगत दि कलि एत्र पृ० ४७ ७० ।

४ अष्टाध्यायी ४।१।१७५; ८।३।६० ५।८।३८ ।

५ अष्टाध्यायी के १।१।६५ पर बार्तिक—शुक्रव्याकित्यु पर

रूपो वाच्यम् ।

६ पर्लबलि द्वारा व्यवहृत शुक्र-यान नामक अष्टाध्यायी सूत्र

संग्रह २।४।३ ।

७ एषि ई ८।२।९० ।

८ बही ८२।३५ ।

९ १ ६।१३५ ।

१० म आर्के० गर्वे ७० दि० १६०६ पृ० ५ ।

कर के विद्यमान शकों का उत्सोस बेहिसुन, हासामनी साम्राज्य के अधिलेखों में मिलता है।^१ इतिहासकार हेरोडोटस का इस उष्य की ओर स्पष्ट संकेत है कि स्काथियन लोग द्वारा क साम्राज्य के पूर ही विहस की जीत कर एशिया के स्वामी हो गये थे।^२ उनक द्वारा वहाँ पर निश्चित प्राप्त सूचना का भी उत्सोस किया गया है। स्कीथियनों में काल—गणना की परंपरा विद्यमान थी। उनक प्रथम सम्राट से लेकर ईरानी सम्राट द्वारा के आक्रमण तक का समय पूर्ण रूपण १००० वष का था।^३ द्वारा के संबंध में निर्धारित तिथि ५२६ ई० पू० मानी जाती है। इस प्रकार यदि हेरोडोटस को प्राप्त तथा उसके द्वारा उल्लिखित उपयुक्त सूचना पर विचार किया जाव तो इतिहास के रंगमंच पर शकों का उदय १५०० ई० पू० से भी पहले हो जाता है।^४

शक नाम पड़ने का कारण

शक 'शक' क्यों कहलाये यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। किन्तु इसका समाधान केवल भारतीय साहित्य ही से हो सका है। ग्रीक लेखकों ने इस प्रकार का समाधान किया ही नहीं है। पुराणों में ऐसा बखर्न मिलता है कि शकों का निवास स्पान नदियों में पिरा हुआ था जिनकी शाखाओं की आकृति शक शब्द का लक्ष् के बृह-शब्द थी।^५ भारत में शकों के शिष्य 'सामाधान' शब्द व्यवहृत होता है और हम स्पष्टता केनत हैं कि इसकी व्युत्पत्ति मूल संस्कृत के 'शक' शब्द में ही है।^६ मत्स्यपुराण में इस विवरण का उत्सोस है कि

१ वि० ई १, ५—११।

२ हेरोडोटस १। १५।

३ " २। ११०।

४ उत्सोस, रि शकास इन इंडिया, पृ २।

५ वा० पु० ५६। ८८ एवं ८६।

६ उत्सोस, रि शकास इन इंडिया, पृ ५।

“शकों के निबाल-स्वल्प में शक नामक एक पर्वत विद्यमान था अत एव उनका नामकरण शक हुआ।”^१ ऐसी भी संभावना हो सकती है कि इस पर्वत पर शक नामक वृक्ष रहे हों जिससे यह पर्वत शक संज्ञक हुआ हो। विभिन्न संस्कृत कोशों में ‘शक’ शब्द का अर्थ विभिन्न दिया हुआ मिलता है।^२ प्रसिद्ध कोशकार मोनियर विलियम्स ने इसका अर्थ एक पशु विशेष बताया है तथा इसके क्रीलिंग का अर्थ एक पक्षी, मयिका अथवा लम्बे कान वाला पशु दिया है।^३ इसके एक निष्पन्न यह भी निकाला जा सकता है कि कान लम्बे होने के कारण संभवतः उनका नामकरण ‘शक’ हुआ। चीनी बुताम्तों में इनके ‘शक’ नाम पढ़ने के कारण पर तो नहीं पर ‘शक’ नाम की ही मूर्ति इनको ‘सस’ अथवा ‘सेक’ कहा गया है जिनका समीकरण इतिहासकार रेण्टन ने सीरबेरिया के काठे में निबाल करने वाले स्त्री यियनो अथवा शकों से किया है।^४

शकों का आदि देश

शकों के आदि देश स्कीथिया के सर्वथ से हेरोडोटस^५ द्वारा दिया हुआ विवरण विशेष उल्लेखनीय है। इसके अनुसार स्कीथिया आकार में बर्गाकार है और इसके दोनों किनारे समुद्र का स्पर्श करते हैं।^६

दिल्ली के डायडोरल के अनुसार शकों के पास पहले एक छोटा ही प्रदेश था, किन्तु धीरे-धीरे जैसे-जैसे इनकी संख्या में वृद्धि होती

१. भास्व पुराण ११३। ६६।

२. इन्द्रम्, विश्व प्रकाश कोश, नानार्थ शब्द कोश एवं नानाथ संग्रह मद्रास संस्करण।

३. ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पृ० ६५५।

४. के दि० हं पृ ५६५।

५. भाग ४।

६. वही ४। ५०१।

गयी इन लोगों ने अन्व प्रदेशों पर भी प्रमुख अमाना प्रारम्भ किया और अत्र (सीरवरिया के काठे से) नदी प्रदेश से, जहाँ के वे निवासी थे, आगे बढ़ते हुए काकेशस पर्वत तक पहुँच गए और उसके पास (५७ ई० पू०) तक तो वे भारत के सीमांत प्रदेश तक चले गए।^१ खासो बरा स्पष्ट हो कहता है—कास्पियन सागर के पूरव में स्काथियन जाति के लोग बसते हैं और दक्षिण के पूरव शकों का निवास है।^२

शकों के आदि देश के संबंध की चर्चा करते हुए भारतीय साहित्य उस स्थल को 'शकद्वीप' नाम से अभिहित करते हैं। महाभारत में शकद्वीप का उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार क्षीरोत्सागर (कास्पियन सागर) का कुछ भाग शकद्वीप से भिन्न हुआ था।^३ वासुपुराण के अनुसार क्षीरोत्सागर का कुछ भाग शकद्वीप से भिन्न हुआ था तथा दक्षिण एवं मध्योत्तर सागरों का स्पर्श करता था।^४ मत्स्यपुराण में एसा उल्लेख मिलता है कि लक्ष्योदधि शकद्वीप से भिन्न था।^५ महाभारत में एसा बयान है कि शकद्वीप के एक भाग अथवा मर्गिबाना के लोग ब्राह्मण थे और मरु के निवासी क्षत्रिय तथा इसके अन्य भागों में बैरव एवं शुद्र भी निवास करते थे।^६ महाभारत का यह कथन हेरोडोटस के उस बयान से भी मेल खाता है जिसमें यह कहा गया है कि स्काथिया के बीच के प्रदेश में पशुप्राणक तथा

१ डाबहारस आफ सिन्सी, २, ४१।

२ खासो ११, २५४।

३ मीप्स पर्व ११। ६। १०।

४ क्षीरोदेम समुद्रेण सप्तः परिवारितः।

शकद्वीपस्तु विस्तारास्तमेन तु समन्वतः। वा पु ४६। ६६।

परिबाप समुद्रं स दक्षिणमरुद्वीपं सिषतः। वा पु ४६। ७५।

५ तेना वृतः समुद्रा प क्षीपेन लक्ष्योदधिः। मत्स्य १२२। ३।

६ मीप्सपर्व, ११। १६—३७।

सुपक स्वीयवन निवास करते थे ।^१

शकों के मूल निवास के संबंध में ताहिस्त्विक प्रमायों के अतिरिक्त पुरातात्विक प्रमाय भी उपलब्ध हैं। हाकामनी लप्राओं के वृत्तांतों से विदित होता है कि शक तीन खानों पर बसे थे और वे उनकी प्रजा थे ।^२ इस वंश के अभिलेख शकों के वातस्या की धार भी संकेत करते हैं। उनका संकेत 'पर-सुग्द' की ओर है। 'पर-सुग्द' का ग्रीक अनुवात इथियोपिस्थाना किया जा सकता है जो सीरदरिया (Syr Darya) के विशाल मैदान की ओर संकेत करते हैं ।^३ शक की राजधानी हमेशा से समरकन्द रही है।

द्वितीय अध्याय पहली शती ईसवी पूर्व में इन शकों को खान छोड़ना पड़ा होगा। उनके मूलभूमि छोड़कर तथा वृत्तर खान पर बसने के संबंध खीनी की महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

खीनी निचरण 'खी-खी' तथा 'खान-खान-ख' से उत्पन्न होता है कि इनको ने काशगरिया के सुदूर पूर्व तथा उत्तर-पूर्व में बसने वाली गृहणी जाति को घुरी तरह से परास्त किया। खान के अनुसार पद सिमि १०६ ई० पू०—७४ ई० पू० तक रही होगी।^४ क्लॉपट से इस घटना का काल-निर्धारण लगभग १६५ ई० पू० किया है जो कि सिमि को भी मान्य है।^५ किन्तु खीना की जाति के संबंध में कोई निचरण नहीं देते हैं। यहाँ केवल यही कहा गया है कि खि-सू के राज-काल में यह घटना घटी।

इस युद्ध में गृहणी राजा मारा गया। गृहणी लोगों के सामने विक्रम शक। परिषद की ओर भागे। रागल में उनकी मुठभेड़ सुमुन से

१. भाग ४। १८।

२. य. आर्से. सर्वे ई. १४। १—८।

३. यही।

४. ग्रीक से ई. पू. १०६।

५. डा. अहीराप्पाय दि. शकाल इन इंडिया, पृ. १।

हुई। किन्तु यूहन्नी बके नहीं आगे बढ़ते ही गए और इसम्बल भीत पर ही जाकर दम लिया। यहाँ दो शालाओं में विमस्त हो गए—
 पुत्र यूहन्नी और ता-यूहन्नी उनकी दो शालाएँ हुई। पुत्र दक्षिण की ओर चल गए और तिब्बत के सीमान्त प्रदेश में जाकर बस गए। ता-यूहन्नी पश्चिम की ओर बढ़ते ही गए और अरब इला की घाटी में ससे, सार्ई अथवा सैक लोगों से जा टकराये। किन्तु कुछ चीनी बुद्धान्त यूहन्नी तथा पुमुन के इस मुठमँड़ के संबंध में सर्वथा मूक हैं। उनका अनुसार हिगनू से पराजित हमें के बाद यूहन्नी सीधे सीरदरिया के कठि में चले गए।^१

इस प्रकार हिगनू जाति से मुठमँड़ हमें के बाद यूहन्नी पश्चिमी का ओर भाग और उनकी मिश्रित जाइ अथवा एक लोगों से हुई। परिश्रामस्वस्म सार्ई-बाग अथवा एक लोग दक्षिण की ओर भागे और की-पिन^२ में जा बसे और अनेक राज्यों की स्थापना की।^३ सार्ई

१ वही पृ २।

२ 'की पिन' विद्वानों में बड़े विवाद का विषय बना हुआ है। 'हान-कुल' के बुद्धान्त 'की-पिन' का बर्णन करते हुए कहते हैं— यह म्यान का गरम हो तथा जो दक्षिण-पश्चिम में कु-ह-शन लि (आकाशिया) द्वारा पिरा हो और उत्तर-पश्चिम में ताहिवा (पल्लव) द्वारा। स्तन कौनो इतकी कारिण से म्यान्मा कर इतकी भौगोलिक स्थिति को बर्णन में कही स्थापित करते हैं। परंतु यह प्रदेश हिमालय है, यह गम नहीं हो सकता। हबनलाग के क अनुसार कारिण तब प्रदेश है। बहुत से विद्वानों ने की-पिन को करमीर से भी मिलाया है जिसको आज की विद्वान् मयटली में मान भी लिया है। तर आरेख स्तन न बनना 'सेंट स्तान' १। ५३ और स्थान न बनना 'अर्बी हिस्ट्री ऑफ इंडिया' पृ २५२ में इस विद्वान्त को मान्यता प्रदान किया है।

३ म्यूजिकमेटिक-कानिकल १८८८—६२ पृ २२६।

वांग को हम शकों के अग्र में निहम्न रूप से ले सकते हैं अथवा नहीं इस पर भी विचारकों ने मिन मिन मत व्यक्त किए हैं । डा० अहोराप्पाय ने इस पर प्रकाश डाला है तथा इस निष्पत्ति पर पहुँच है कि यह शम्भ शकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है ।^१

भारत की ओर प्रस्थान :

अब प्रश्न उठता है कि-वांग की-दिन किस मार्ग का अनुगमन कर पहुँच । हान-शू से ज्ञात होता है कि नार्ड-वांग दक्षिण की ओर मुड़कर 'हीन-त्' अथवा हिन्दुकुश के रास्ते से 'की-दिन' पहुँचे । नाहवान ने 'हीन-त्' को रक्ष से थोड़ा पश्चिम काशगर से दक्षिण पश्चिम दिशा में तिबु-नदी के पास अवस्थित बतसाया है । किन्तु यन्नी बृहन्त इस संबंध में सर्वथा मौन हैं—उन्होंने इस बौद्ध तथा बुद्ध मार्ग को ही क्यों चुना ? इस विषय पर डॉलमी थोड़ा प्रकाश डालता है । उसके अनुसार शकों का विस्तार दक्षिण में साकिस्तान तक ही गया था । अतएव इस प्रदेश की जातियों के लिए इस बौद्ध मार्ग से भारत में प्रवेश करना कोई सुन्दर कार्य नहीं था ।^२

इस प्रकार शकों की एक शाखा न, सूदचियों से मिश्रित क बाद, कश्मीर के मार्ग से भारत में प्रवेश किया और कश्मीर-द्वारा में आकर बस गयी ।^३

१ दि शकाल इन इंडिया पृ ३ ।

२ डा अहोराप्पाय, दि शकाल इन इंडिया, पृ ४ ।

३ सी पी ई दि पृ १५७—वदति यह संभव है कि सीस्तान के शकों ने प्राचीन काल में भारत पर आक्रमण किया किन्तु संभावना यही है कि पश्चिमोत्तर भारत के गरीप्ती समिलेणो क रक्षिता पश्चिम से न आकर उत्तर ही से आये थे—किन्तु नी हेबिजोई और बनबी शास्त्री ने क्रमशः पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ पार्थिया पृ १८५३ में एवं ई दि क्वा ११।१२३ के आने लेख में शकों क दोनों मार्गों से आने की संभावना व्यक्त किया है ।

उपरोक्त धारणा के अतिरिक्त हमारे पास अन्य प्रमाण भी विद्यमान हैं जो शकों के आगमन स्थान की पूर्वी ईरान के मूमिप्रदेश में अवस्थित करती हैं। ऊपर हम इस तथ्य की ओर संकेत कर चुके हैं कि बूहणियों के मुठमेड़ के कारण शकों की कई शाखाएँ हुए तथा उनके अनेक राज्यों की आगे बलकर स्थापना हुई। जो लोग 'की दिन' में का बसे थे उनके अतिरिक्त कुछ और कभील आकाशिया और डूबिबाना की ओर बढ़े। संभवतः उन्हीं को अन्तिम ने स्कीषवन की संज्ञा दी है।^१ उनको जेपेट में पाषव एवं बाहरी राजकुल भाए और इस प्रकार संपूर्ण हेमियास्लीम परिवार शकों की जेपेट में आ गया। यूकेतिय का प्रीक राजकुल अपनी पहकलह के कारण स्वयं क्षय तथा पुर्बल हो गया था। वह एक आक्रमणकारियों का सामना न कर सका।^२ बाहरी पर अपना प्रमुख स्थापित कर एक ओर आगे बढ़ा। रास्त में पार्यव पड़त म। ई० पू० २६८ में पाषव राजा प्रात द्वितीय पाराशामी हुआ। उसके उत्तराधिकारी प्रातवानत द्वितीय (१९८-१२३ ई० पू.) न उनका कुछ 'कर' आदि देकर एक अस्थायी शांति की व्यवस्था की। किन्तु यह व्यवस्था अधिक दिनों तक म चल सकी। वह भी पाँच वर्ष बाद शकों द्वारा मुद्र में मार डाला गया।^३ परन्तु उसका उत्तराधिकारी मन्नात द्वितीय (१२३-८६ ई० पू.) शक्तिशाली राजा हुआ। उसने उक्त संपूर्ण क्षेत्र में अपना प्रमुख स्थापित करके शकों को आगे बढ़ने से रोक दिया। उसके राज्यकाल में उसका इतना हबहबा रहा कि एक जरा भी आगे नहीं बढ़ सके।

विद्वानों की ऐसी धारणा है कि उपरोक्त राजा के राज्यकाल में अपना उसका पक्षान् शक भारतीय साम्राज्य का ओर बढ़ा। रास्त में

- १ एपिटोम हिन्दोरिकेरम प्रिसिपियकरम पाम्पेई ट्रोमि १६।१।२।
- २ डा० मगबतशरण उपपाय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ २४।
- ३ पो० दि० पा० पू० ३१, ३२, ३६, ५८।

भाग को हम शकों के समय में निरन्तर रूप से ले सकते हैं अथवा नहीं इस पर भी विचारकों में भिन्न भिन्न मत व्यक्त किए हैं । डा० बहोराप्पाव ने इस पर प्रकाश डाला है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह शब्द शकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है ।^१

भारत की ओर प्रस्थान

अब प्रश्न उठता है चाई-बांग की-विन किस मार्ग का अनुयमन कर पहुँचे । हान-यू से ज्ञात जाता है कि चाई-बांग दक्षिण की ओर मुड़कर 'हीन-त्' अथवा हिन्दुकुश के रास्ते से 'की-मिन' पहुँचे । पाहयान ने 'हीन-त्' को स्कन्द से चौड़ा पश्चिम कायमर से दक्षिण पश्चिम दिशा में सिन्धु-नदी के पास अबस्थित बताया है । किन्तु चीनी पञ्चान्त इस संबंध में ठरवा मौन है—उन्होंने इस बीहड़ तथा दुर्गम मार्ग को ही क्यों चुना ? इस विषय पर डॉलामी चौड़ा प्रकाश डालता है । उसके अनुसार शकों का विस्तार दक्षिण में बासिलियान तक हो गया था । अतएव इस प्रवेश की आविष्यो के लिए इस बीहड़ भाग से मार्ग में प्रवेश करना कोई दुष्कर कार्य नहीं था ।^२

इस प्रकार शकों की एक शान्ता ने, सूहचियों से मिहस्त के पास, कश्मीर के मार्ग से भारत में प्रवेश किया और कश्मीर-दशाव न आकर बस गयी ।^३

१. वि शकाल इन इंडिया पृ. १ ।

२. डा. बहोराप्पाव, वि शकाल इन इंडिया, पृ. ४ ।

३. सी पी इ हि पृ. १५७—यद्यपि वह संभव है कि सीरतान के शकों ने प्राचीन काल में भारत पर आक्रमण किया किन्तु संभावना नहीं है कि पश्चिमोत्तर भारत के गंगुली अभिलेखों के स्थापिता पश्चिम में न आकर उत्तर ही से आय वे—किन्तु ना हेरिबोर्ड और बनबी शारकी ने अमर वीलिचिकल दिल्ली आद पार्शिया पृ १८-५६ में एवं इ दि क्या ११। १०६ के अमर लोग में शकों के दोनो मार्गों से आने की संभावना व्यक्त किया है ।

उपरोक्त धारणा के अतिरिक्त हमारे पास अन्य प्रमाण भी विद्यमान हैं जो शकों के आगमन स्थान को पूर्वी ईरान के मूमिप्रदेश में अवस्थित करती हैं। अगर हम इस तथ्य की ओर संकेत कर चुके हैं कि प्राचिनों के मुठभेड़ के कारण शकों की कई शाखाएँ हुई तथा उनके अनेक शाखाओं की आग चलकर स्थापना हुई। जो लोग 'की-मिन' में या वैसे वे उनके अतिरिक्त कुइल और कबीले आकाशिया और हूँबिबाना की ओर बढ़े। संभवतः उन्हीं को जस्टिन ने स्कीथियन की संज्ञा दी है।^१ उनको अपट में पायव एवं बाल्मी राजकुल भाए और इस प्रकार संपूर्ण हेक्लिबाक्लीज सपरिवार शकों की अपट में आया। यूकेटिव का प्रीक राजकुल अपनी यहकसह के कारण स्वयं बाल्य तथा युवक हो गया था। वह शक आक्रमणकारियों का सामना न कर सका।^२ बाल्मी पर अपना प्रमुख स्थापित कर शक और आगे बढ़े। रास्त में पायव पड़त था। ई० पू० १५८ में पायव राजा प्रायः शिथिल भावस्थायी हुआ। उसके उत्तराधिकारी आतबानत द्वितीय (११८-१२३ ई० पू०) ने उनका कुछ 'कर' आदि देकर एक अस्थायी शांति की व्यवस्था की। किन्तु यह व्यवस्था अनेक दिनों तक न चल सकी। वह भी पाँच वर्ष बाद शकों द्वारा कुछ में मार डाला गया।^३ परन्तु उसका उत्तराधिकारी मन्दात द्वितीय (१२३-१२८ ई० पू०) शक्तिशाली राजा हुआ। उसने उस संपूर्ण क्षेत्र में अपना प्रमुख स्थापित करके शकों को आग बढ़ने से रोक दिया। उसके राज्यकाल में उसका इतना खबर्खा रहा कि शक अग भी आगे नहीं बढ़ सके।

विद्वानों की ऐसी धारणा है कि उपरोक्त राजा के राज्यकाल में अपना उसके परभाव शक भारतीय सीमा का ओर बढ़े। ११५

१ एरिटीम हिस्त्रीरिकेरम क्रिसिपिकेरम पापेई डीमि १६ ११।

२ डा० मगबतसरथ उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, १०३

३ पी० डि० पा० १० ३१, ३२, ३३, ५८।

काबुल का राज्य पड़ता था जो बाबनी राजकुल की ही एक शाखा द्वारा शासित होता था। वे आगे नहीं बढ़ सके थे। अतएव वहाँ से वहीं कुछ काल के लिए उन्होंने डेरा डाला। उनकी यह निवास स्थिति सामान्य कहलार्थ है।^१ कुछ काजोरगन्ध कबार और पलोधिस्तान (पाञ्चन दर) के रास्त से वे भारत पहुँचे और तिपु-नदी के निचले काठ में जा बसे। उनके इस महीन स्थान को दिग्विजेयों ने 'शक-घोर' और प्रोक भूगोलविदों ने 'इपिस्टोमिया' कह कर पुकारा है।

पाणिनि के ग्रन्थ अष्टाध्यायी पर अपना वार्तिक ग्रन्थ प्रस्तुत करते हुए कात्यायन ने 'शकन्धु' तथा 'ककन्धु' शब्दों का उल्लेख किया है।^२ ऐसा लगता है कि कात्यायन द्वारा वर्णित शक शकस्थान में आकर बसने वाले शकों के पूर्वज थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जब शक लोगों का निवास स्थान अभी मध्यप्रदेश का था तभी ई. पू. चौथी या तीसरी शताब्दी में 'शकन्धु' शब्द का प्रचलन हो गया था। शकन्धु का अर्थ शक लोगों का कुर्छा होता है। यह शब्द संस्कृत भाषा के व्याकरण में अपना बिरलोग्य रूप धुएँ यह सिद्ध करता है कि भारत के ज्ञान शकों के वहाँ आगमन से पूर्व से ही उनसे परचित थे और पाणिनि-कात्यायन परचित शक ईसवी पूर्व प्रथम शती

१. स्पृमितमेट्रिक क्रानिकल १७००-६२ पृ० १२६ १ ।

भारत के आइसेडॉर ने इतका स्वीकिया कहा है और इतमें निम्नलिखित नगरों के नाम बतलाया है—(१) बर (२) मिन (३) पलकैति (४) वाहगल (५) अलेक्जेंड्रिया और (६) अलेक्जेंड्रीपोलिस। काबुल को कनिपम में शकों की राजधानी बतलाया है तथा 'बाल' से उसका मिलान किया है। बाल अथवा कोट (कवेरा युग) जा कि हमेशा से नैतिक महत्त्व का स्थान रहा है। कपहार और निचले तिपु-काठे के बीच यह पड़ता है। तोलेमी का 'कोटोबर' संभवतः यही था।

में वहाँ आकर बसने वाले शकों के पूज्य थे। पाणिनि ने 'क्या' शब्द का भी उल्लेख किया है। मूल में यह शक भाषा का शब्द था जिसमें 'क्य' का अर्थ नगर होता है। ऐसा माना जाता है कि उस समय भी मध्यप्रदेश में 'क्यात' नामों का एक ठाटा था जो अर्थात् तक विद्यमान है। जमा—समरकंद पायकन्द आदि। 'क्य' शब्द का परिवर्तन सुग्री में 'क्य' हो जाता है। इससे भा बहा संकेत मिलता है कि पाणिनि सं भी पूर्व किसी समय शक जाति का प्रचार और संभव गङ्गानी-कंधार की उत्पत्तिका से उत्तर कर तोचीगोमल नदियों के माग से रावी और खनास के कोठे तक पहुँचा था।^१

भारतीय शकों के नामकरण में स्कीथियन, पायक और ईरानी तत्वों का सम्मिश्रण है। इससे आसानी से यह परिष्कार निकाला जा सकता है भारत में प्रवेश करने से पूर्व शक ईरानी पायक प्रभाव में रह चुके होंगे। वही उनका रूप सम्मिश्रण भी हुआ होगा। उसी प्रकार भारत में आने पर उन पर भारतीय प्रभाव पड़ा। उन्होंने भारतीय नामों को एवं भारतीय धर्म को अपनाया, भारतीय परिवारों से विवाह संबंध स्थापित किये। इस संबंध में ब्रह्मरामन का जनमद लेख^२ और वासिष्ठपुत्र भी शातकर्ण्य का कन्देरी लेख^३ उद्धृत किया जा सकता है। कालान्तर में शकों ने भारत में कई राज-कुलों की स्थापना की।

भारतीय शक कौन थे ?

भारतीय शक कौन थे इस प्रश्न का समाधान प्रसुरा सिंह का शोध लेख करता है। इस शोध को स्थापना करने वाली "महासम्राट् राजवंश की अग्रमहिषी... अश्विनी कन्दुका" ने शाक्यमुनि बुद्ध

^१ बाबुदेवचरण अग्रवाल, पाणिनिकालान् भारतवर्ष, पृ० ८१९।

^२ परि० इ० ८। ४२।

^३ आर्के० सर्वे वे० इ० ५। ११, ७८।

का शरीरबाहु प्रतिष्ठापित करत हुए वह कामना की थी कि उसका वह दान "महाद्वयप कुसुलुक पतिक की पूजा के लिए, छप बुद्धों, भम और छप की पूजा के लिए और समूचे शकस्थान की पूजा के लिए हो।"^१ 'सबस शकस्तनस पुयए' यह प्रमासुत्र करता है कि मथुरा क्षेत्र के 'शकस्थान' या मीस्तान से आये व सो अपना मूलभूमि को अब तक मुना नहीं सके व।

उनी प्रकार कन्देरा क्षेत्र में महाद्वयप बुद्ध की पुत्री अवन का काश्मक वंशज कहती है। काश्मक काश्म स बना है। काश्म एक नदी है जो कारल (जल्परान) में बहती है।^२

किन्तु 'काश्म की स्थिति गुजरात प्रान्त में भी बतलाई गया है। गुजरात प्रान्त के वर्तमान सिद्धपुर में जो कि बड़ीदा खण्ड में पड़ता है और जो शको के अधिकार में था 'काश्म' को यतसाधा गया है। एका कहा जाता है कि काश्म नामक कोई स्थायी बर्ही कुटिया बनाकर रहता था। उनी स उस जगह का नाम काश्म पड़ गया।^३ शक वर्ष ६२२ ईसवी के मेजर तास्रपप में काश्म नाम का उल्लेख हुआ है।^४

गुजरात प्रान्त के इन काश्म नाम में प्रकट होता है कि कारल के काश्म नदी के किनारे पर रहने वाले वे शक अपनी मूलभूमि को मूल नहीं सके वे और उस पवित्र स्मृति को बनाये रखने के लिए ही उगड़ने गुजरात में एक नाम का नाम काश्म रख दिया होगा। लमी विश्वी जानिषी अपनी मूलभूमि की स्मृति अपने मानस-वट पर बनाए रहती है। व शताब्दियों तक उतका नहीं भूलती। भारत में पारसी अपनी मूलभूमि की स्मृति लगभग आठ शताब्दियों तक

१ एरि० इ० ए। १४१।

२ पो० डि० ए० इ० पु० ४१७।

३ तस्यभद, दि शकाल इन इंडिया, पृ० ६४।

४ गीटीसकर हीराचंद ओझा, सिन्धी आरु सोलंकीत।

बनाये रहे। प्राचीन इजिप्शियन और फ़ोनेशियन अपनी मूलभूमि की अब तक यादगार बनाये हुये हैं मगरि वे उठ स्थान को जहाँ पर वे बस्तुतः रहते थे मूल गये हैं।^१

भारत में बसने वाली सभी शक-कुलों के साथ वह बात लागू होती थी। वे शक ही वे किन्तु विभिन्न प्रदेशों से आकर यहाँ बसे थे। कोई 'कार्'म पाटी' से आया या तो कोई 'सहर'^२ से और कोई 'शकस्थान' से।

शक स्थान को भौगोलिक स्थिति

बहि नकशे पर दृष्टिपात किया जाय तो शकस्थान की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट हो जायगी। दक्षिण में समुद्र तथा उत्तर में हेरात से शिकारपुर किंग होते हुए सोलन इर्रे तक की सोमा के बीच की भूमि शकस्थान थी। इसमें बतमान कर्मान, सीस्थान, ईरानी बसुन्दिस्तान, फेथान आदि जिले थे। कोई बड़ा नगर नहीं था। इसके मुख्य नगरों में कर्मान, गुआवर बहर, साठ, बेपुरी मिरि, इका, तप्य आदि मुख्य थे।^३

१ दि वेदिक एज, पृ० २१६।

२- चागे वेदिये, सहरात कौन थे।

३ सी० एल० शाह, एन्सेट इंडिया ३। ६८।

सब बर्ग के बरभ पारय कर निरीह प्रजा की क्लेश देगा । पूर्वस्थिति को अप्रीयामी कर यह बह बहूबर्गों को नष्ट कर देगा ।'

(२) शकों का भारत आगमन

शकों के भारत आगमन का बर्णन जैन-ग्रन्थ 'कालकावय कथानक' में बड़ मनोरञ्जक ढङ्क से मिलता है । उसके अनुसार आषाढ कालक 'सगकुल' आकर उन्हें 'हिन्दुमदेश' (भारत) ल आए । शक उनके पीछे चलते हुए सिंध के तट पर पहुँच । फिर सिंधुनद को पार कर बढ़ते हुए मुद्ग (सीराप्ट) देश में प्रविष्ट हुए । 'सगकुल' का एक अभिपति होता था 'साहानुनाहि' । स्वयं 'सगकुल' अनेक साहिबों में विभक्त था जब महाशत द्वितीय शक्तिमान हुआ तब उसने अपने आतबानत की मृत्यु का शकों से बदला लेना चाहा । उसने साहिबों या 'सगकुल' के पाठ अपने दूत द्वारा आशा मेत्री की शकों के तारे सामंत यदि अपने कुल और बंजु-साँपबों का विनाश न चाहत हो तो अपने शिर फटवा कर उसके पाठ भिजवा दें नहीं तो उसत उन्हें बुद करना पड़ेगा और हारने पर उनका बह लपनाय कर देगा । 'सगकुल' इत पर बहुत मयमीत हुआ । इसी समय आन्तर्म कालक उनमें उदरे हुए थे । उन्होंने उनका तास्तान छोड़ 'हिन्दुमदेश' चलन की लसाह की । इस पर ६५ साहिबों में अस्मी सेनाओं के साथ भारत में प्रवेश किया । उनमें से एक 'साही' उनका अभिपति बना और उरबपिनी की राजधानी बना शासन करने लगा । संस्कृत अनुभूति के अनुसार ६५ साही मालवा की भूमि में आ बस और इनमें से एक रोप साहिबों का अभिपति अथवा शासक बना । उसकी राजधानी उरबपिनी हुई ।

'कालकावय कथानक' के अनुसार शक लीम सिंधुनद पार करत ही मुद्राष्ट्र के स्वामी ही गण^१ । इससे ताप्य यह है कि गुजरात की और म पसकर सिंधुपार जाने ही 'सगकुल' मिलता था । अगत

१. बृहत्पुराण, ६१—६७ ।

२. विक्रमादित्य आठ उरबपिनी, डा० पारदेव, पृ ५० ।

उनके काठियावाड़ में सीपा पहुँचने से सिद्ध होता है कि जिस स्थान से वे यहाँ आए वह सीस्तान के अतिरिक्त अन्य देश न था।

साइड इत कथा की ऐतिहासिकता पर विचार कर लेना चाहिए। प्रो० रैक्सन^१ के मतानुसार इस कथा को न हम सिद्ध और न अस्िद्ध ही कर सकते हैं, अपितु इसके पक्ष ही। मैं कहूँगे, क्योंकि इसकी ऐतिहासिकता जिस राजनीतिक श्रृंखला पर आधारित है, वह तत्कालिक उपजयिनी की परिस्थिति से मेला खाती है। स्तन कोनो^२ भी इसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि यह इसकी ऐतिहासिकता से मुकर नहीं सकता। बिसेट स्मिथ^३ भी इसका समर्थन करने से पीछे नहीं हूँ। पहले सा विन्डमार्श्व की ऐतिहासिकता में विश्वास नहीं किया। किन्तु बाद में लेन्को की इस परंपरा को मान लिया जा इसकी ऐतिहासिकता में विश्वास करते हैं।

साकः सभी प्रमाणों से उपजयिनी की शकों द्वारा विजय लगभग १०० ई० पू० तथा ५७ ई० पू० के मध्य हुई जाती है। और वे प्रथम गुर्गीय शक ही प्रमाणतः मासवा से मयुरा की ओर बढ़ गये। इस प्रकार शक संभवतः मासवा से बढ़कर मयुरा के शुंगों के उत्तर पिकारा हुए। मुगपुराण जो की उपजयिनी-विजय से कुछ ही बाद प्रायः प्रथम शती ई० पू० के उत्तरार्ध में लिखा गया था, इस रूप में शकों की हम विजय घटना का एक समकालिक प्रमाण सा है।^४ मुगपुराण का यह शक आक्रमण १०० ई० पू० के लगभग शुंग-शासन में ही हुआ। इसकी पुष्टि रैक्सन का यह कथन कर देता है जिसमें उन्होंने कहा है कि शक रंजुबुल कुल के मापुरी शकक अग्नी शकस

१ सैक्सन हिस्ट्री ऑफ इंडिया १। ४७६—८०।

२ का ई ई १। १। २७।

३ आन्सलैड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, १६१६, १५१।

४ बि० स्मू० प्र०, सं० १००१, पृ० ८।

५ वही।

तब बग के बखर पारस्य कर निरीह प्रजा की स्तेश्य होगा । पूर्वस्थिति को अपोगामी कर वह धनुर्बर्गों को नष्ट कर देगा ।'

(२) शकों का भारत आगमन

शकों के भारत आगमन का बखर न जैन-ग्रन्थ 'कालकाण्य कथा-मक' में बड़े मनोरंजक ढंग से मिलता है । उसके अनुसार आचार्य कालक 'सगकुल' जाकर उन्हें 'हिन्दुगदेश' (भारत) लौ आया । एक उनके पीछे चलते हुए तिष क तट पर पहुँचे । फिर सिधुनद को पार कर बढ़ते हुए सुवह (सीरान्द्र) देश में प्रविष्ट हुए । 'सगकुल' का एक अधिपति होता था 'साहानुसादि' । स्वयं 'सगकुल' अनेक साक्षियों में विभक्त था जम मज्जल द्विर्वस्य शक्तिमान हुआ तब उसने अपने राजधानी की मृत्यु का शकों से बचका जना चाहा । उसने साक्षियों या 'सगकुल' के पास आन दूत द्वारा आशा भेजी की शकों के सारे सामंत यदि अपने कुल और बंधु-बाबुओं का विनाश न चाहते हों तो अपने शिर कटवा कर उसके पास भिजवा दें नहीं ता उसमें उन्हें युद्ध करना पड़ेगा और हारने पर उनका बह तर्जनाथ कर देगा । 'सगकुल' इस पर बहुत मयमीत हुआ । इती समय आचार्य कालक उनसे उहरे हुए थे । उन्होंने उनकी रीस्तान लौह हिन्दुगदेश' चलने की तलाश की । इस पर ६३ साक्षियों ने अपनी सेनाओं के साथ भारत में प्रवेश किया । उनमें से एक 'साहो' उमका अधिपति बना और उज्जयिनी का राजधानी बना शासन करने लगा । संतुल्य अनुभूति के अनुसार ६३ साही मातंगी की मूर्ति में आ बस और इनमें से एक रोप साक्षियों का अधिपति अथवा शासक बना । उसकी राजधानी उज्जयिनी हुई ।

'कालकाण्य कथात्मक' के अनुसार एक लोग सिधुनद पार करत ही सुराष्ट्र के स्वामी ही गए । इतसे ताण्य बह है कि गुजरात की ओर न चलकर तिष पार जाते ही 'सगकुल' मिलता था । अर्थात्

१. सुवपुराण, ६१—६० ।

२. विहमार्शिव आद्य उज्जयिनी, डा० पाण्डव, पृ ३० ।

उनके काठियावाड़ में सीषा पहुँचने में सिद्ध होता है कि जिस स्थान से वे यहाँ आए वह सीस्थान के अतिरिक्त अन्य वेष्ट न था।

चौथा इस कथा की ऐतिहासिकता पर विचार कर लेना चाहिए। प्रो० रैप्सन^१ के मतानुसार इस कथा को न हम सिद्ध और न अस्मिद्ध ही कर सकते हैं, अस्तित्व इसके पक्ष ही। मैं कहूँगे, क्योंकि इसकी ऐतिहासिकता जिस राजनीतिक दृष्टमूमि पर आधारित है, वह तत्कालिक उद्यमिनी की परिस्थिति से मेल खाती है। स्टेन कोनो^२ भी इसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि वह इसकी ऐतिहासिकता से मुकर नहीं सकते। बिसेट रिमव^३ भी इसका समर्थन करने से पीछे नहीं हूँगे। पहले तो विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता में विश्वास नहीं किया। किन्तु बाद में लेखकों की इस परंपरा को मान लिया जो इसकी ऐतिहासिकता में विश्वास करते हैं।

प्रायः सभी प्रमाणों से उद्यमिनी की शकों द्वारा विजय लगभग १०० ई० पू० तथा ५७ ई० पू० के मध्य हुई जाती है^४। और ये प्रथम गुगीय शक जो प्रमाणित मासवा से मयुरा की ओर बढ़ गये। इस प्रकार शक संभवतः मासवा से बढ़कर मयुरा के गुंगों के उत्तर विचारा हुए। गुगपुराज जो जो उद्यमिनी-विजय से कुछ ही बाद प्रायः प्रथम शता ई० पू० के उत्तरार्द्ध में लिखा गया था, इस रूप में शकों की इन विजय घटना का एक समसामयिक प्रमाण सा है।^५ गुगपुराज का यह शक आक्रमण १०० ई० पू० के लगभग शुभ-शामन में ही हुआ। इनका पुष्टि रैप्सन का वह कथन कर देता है जिसमें उन्होंने कहा है कि शक रंजुजुल कुला के मायुरी सिद्ध अग्नी शकल

१. अंत्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया ?। ४७२—८०।

२. या ई ई २। १। २७।

३. चास्कोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, १९१६, १२१।

४. बि० स्मू० प्र०, सं० २००१, पृ० ८।

५. वही।

और बाहु दोनों में पंचाल (शु गो) और मयुरा के हिन्दू राजाओं के शिकनों से मिलत हैं^१। उज्जयिनी और मयुरा-विजय के कुछ ही वर्ष बाद संभवतः पाटलिपुत्र का शु ग-कुल शक-स्पृह कर दिया गया। काश्यप्यन मंत्री बामुदेव ने अंतिम शु गराजा विपरी देवमूर्ति को बामी से उत्पन्न अपनी मुहिता द्वारा मरवा डाला^२। इसपर शक अपने उज्जयिनी कन्द्र से भारत के अनेक प्रान्तों में फैल गए, जहाँ उनकी शक्ति का ताका कुछ काल तक चलता रहा।

शकों के उत्थान के पक्ष में एक तो राजनैतिक परिस्थिति थी दूसरे उनके राजकुलों में ऐसे अनेक प्रतापी गुणधर हुए, जिन्होंने अपनी नीति तथा बल पर भारत पर काफी दिनों तक शासन किया। ये शक-कुल अपनी भौगोलिक स्थिति के अनुसार अनेक मामों में बंट गए थे।

(३) सिंध पञ्चाय का शक कुल

(अ)भाग—शकों के प्रारम्भिक भारतीय शासन के संबंध में हमारा ज्ञान तब तक ही अपूर्ण और संदेहात्मक है। शक कुल का भारत में पहला राजा बैठा कि शहरीर का मलय १० से शत इलाक़ है 'बमिजद' या। परन्तु बमिजद के बारे में हम पतावा नहीं जान सक हैं। उसका बाद ही दूसरा शासक, जिसको हम जानत हैं, तक्षशिला साम्राज्य पर भोग है। इस भोग को डा० रायबोथरी^३ ने पञ्चाय की नमक का पहलकियों वाले मरा-कुलोत्तर के 'मोघ' में पहिनाया है जिसकी तिथि ५८८ बनलायी गयी है। किन्तु उसकी तिथि के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। यदि ५८८ शक काल मान लिया जाय तो शकों का भारत में यह समय प्राचीन लग्न होगा^४।

१ इंडियन क्वार्टर, पृ० १, १३।

२ 'दर खरित,' अनु० काबल और यामन, पृ० ११३।

३ पी० हि० ए० ई० पृ० १२०।

४ का० ई० ६०, कानो, पृ० ११।

अब हमें दमिअद और मोग पर विचार कर लेना चाहिए। दमिअद का मोग कहा गया है या मोग को दमिअद। यह प्रश्न उठता है। मोग को माउस भी कहा गया है। यदि मोग के सिक्कों को प्लान से देना जाय तो यह अम मिट जायगा। पंजाब म्यूजियम कैटलाग और मिटिश म्यूजियम कैटलाग में संश्लिष्ट इसक सिक्कों पर एरोप्टी में 'दमि' शब्द पाया जाता है। पुराबिदों क मतानुसार 'दमि' दमिअद का ही छाटा रूप है। यह दमिअद मोग का अमितार क्षेत्र का उत्थप था।

महादानपति पतिक के तक्षशिला वाङ्मय लेख से भी मोग के नाम का पता चलता है, जो संभवतः मोग के जीवन क अंतिम काल में बना होगा। यदि संदेहास्पद मुचई अमिलेल का भी देखा जाय तो मोग क शासन काल का अंतिम वर्ष ७६ ई० पू० ही ठहरता है^१।

शहबीर अमिलेल का दमिअद और मोग के सिक्कों का 'दमि' ६५ ई० पू० में (१५५ ई० पू० यवन संवत् क अनुसार) हजाय क्षेत्र का शासक था^२। मोग इस तिथि से कुछ पहले अपने जीवन के कार्य-क्षेत्र में प्रवेश कर चुका होगा। उसके सिक्कों के प्रकार से पता चलता है कि उसने लगभग २० वर्ष शासन किया होगा^३।

रैप्लन क मतानुसार अतिभिक्रितस के बाद तक्षशिला में उसका उत्तराधिकारी आर्केवियस था और उसके बाद मोग हुआ^४। युग पुराण^५ स भी पता लगता है कि यवन शासन के ठीक बाद शकों

१ दि इण्टोमोक, डा० नरायन, पृ० १४४।

२ वही, पृ १४५।

३ वही।

४ कें० दि० ई० १। ५५६।

५ मध्यदेश न स्यात्पत्ति यवना युद्धदुमरा। ८२।

रक्षरतं तथा युद्धं मक्षिष्यति तु परिवर्तम्।

आग्निवेशपास्तु ते शर्षे राजानो मः कृतविप्रहाः।

का आक्रमण हुआ। १०० ई० पू० के आसपास भोग ने स्वातपारी व गंधार क्षेत्र के यवनों का हराकर उस क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया। चीनी स्रोतों से भी पता चलता है कि १०२ ई० पू० के लगभग परगना क्षेत्र के किसी सु-कु-अ पर चीनी सेना ने आक्रमण किया। इनके नामों की एकरूपता सिद्ध करती है कि वे शक थे^१। मोग किस वंश का था, इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। विमेट रिमप के अनुसार वह हिन्दू-याचक राजा था^२।

एक बात जो इतिहासकारों को उत्तमन्न में बाल देती है वह शक और पहलवों (पायवों) का पारस्परिक संबंध है। भारतीय साहित्य और शिलालेख अथवा अन्य लेखों में प्रायः दोनों का साथ-साथ या एक के लिए दूसरे का उल्लेख हुआ है। कभी-कभी उन्हें एक दूसरे से अलग करना मुश्किल हो जाता है। इनके शासन और विषयों में अनेक समानताएँ हैं और कितनी ही बार तो शक और पहलव दोनों नाम एक ही शासक-कुल में उपलब्ध होठ हैं।

स्वातपारी और गंधार (हजारा) को अपने अधिकार में कर लेने के पश्चात् मोग न तक्षशिला को भी अपने अधिकार में किया। तक्षशिला साम्रज्य क्षेत्र से लिचक कुमुलक और उसके पुत्र महादान पति पति के नामों का पता चलता है जिसमें मोग को 'महूरयस महतस मोगस' कहा गया है। शहबीर अमिलान का इमिअब और माउल के विषयों का 'बमि बरि एक ही व्यक्ति हैं तो इस प्रकार एक दूसरे क्षेत्र का भी उल्लेख मिलता है। लिचक कुमुलक पुत्र का

धुवं मास्यन्ति सुदेन यथेयामाभिता जना ।

शकाना च तयो राजा अपहृत्पी महावता । ५०-५३ ।

१ वि० इण्डामीक डा० नरायन ।

२ अली दि० इ०, विमेट रिमप, पशुप सरकरण, पृ० २४२ ।

३ तक्षशिला, मासल, २ । ४५ ।

राज^१ का और इमिजद अमिठार (इबाग) का^२ । इमिजद ने मोग के सिक्कों पर अपना नाम खुदवाया और सिपक कुतुलक ने अपने सिक्के टकवाये^३ । यह इस बात को सिद्ध करता है कि इन दोनों राज्यों का प्रशासकीय और राजनीतिक उदय ही महत्व था, जितना सूनाता काल में उनके महाहत राजाओं का^४ ।

साक्षात्स्य का साम्राज्य मोग शक्तिमान राजा था । तदुपिला का साम्राज्य उस 'महदवस महदस मोगस' उपाधि में विमूर्णित करता है । मोग के कुछ खाँसी के सिक्कों पर भी इस तरह का विन्दु मिलता है वहाँ उसे 'रजदिरजम महदस मादस' कहा गया है^५ । तदुपिला गंधार देश को राजधाना थी, किन्तु मोग पूरे गंधार-प्रांत का स्वामी नहीं था । तदुपिला पर अधिकार कर लेने के बाद अपोलोशोतस के उत्तराधिकारियों में राज्य का बँटवारा हो गया । एक भूम में नदी के पूरब बन गया और दूसरा तिजु-नद के पश्चिम । भूम में बोघाय मोग के अधिकार में था । अथ प्रश्न उठता है, उसने किस तरह अपने राज्य का विस्तार किया । उसके सिक्कों के प्रसार व प्रचार से मालूम पड़ता है कि वह पश्चिम की ओर बढ़ा था, जहाँ निवासित और पदबद्धित राजा स्ट्रेठी की वह उसकी सत्ता विनाश में लयायता में करता है । इस प्रकार लयायता कर मोग तिजु के पश्चिम और आग बढ़ गया होगा और पश्चिमी गंधार के कुछ भाग को अधिकार में कर लिया होगा । सिपक कुतुलक खुद में उसका समर था और खुद में पश्चिमी गंधार का कुछ भाग रहा ही होगा—मारात का ऐसा विश्वास है ।

१ का० इ० ई०, कोन्ने, पृ० १३ ।

२ इमिजद, जि म्यू ई० पृ० १८-१९, ०१ प्लेट १६ । ३ । ६, प्लेट १० । ३; प० म्यू० ई० पृ० १०२ नं० २८ । सिपक कुतुलक ई० दि० ३ प्लेट० ८ । ४२ ।

३ दि० इण्डोलोगी, डा० नरयण, पृ० १६७ ।

४ क्रेटलाग, सिम, पृ० ३६ ।

का आक्रमण हुआ। १०० ई० पू० के आसपास मोग ने स्वातपाटी व गंधार क्षेत्र के बबनों को हराकर उस क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया। चीनी स्रोतों से भी पता चलता है कि १२ ई० पू० के लगभग फरगना क्षेत्र के किसी मुकुन्द पर चीनी सेना ने आक्रमण किया। इनके नामों को एकत्रित करती है कि वे शक थे^१। मोग किस वंश का था, इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। विमेंट स्मिथ के अनुसार वह हिन्दू-पार्थव राजा था^२।

एक बात जो इतिहासकारों की ठकभन में बाल देती है, वह शक और पहलवों (पाथवों) का पारस्परिक संबंध है। भारतीय साहित्य और शिलालेख अथवा अन्य श्रेणियों में प्रायः दोनों का साथ-साथ या एक के लिए दूसरे का उल्लेख हुआ है। कभी-कभी उन्हें एक दूसरे से अलग करना मुश्किल हो जाता है। इनके शासन और सिक्कों में अनेक समानताएँ हैं और कितनी ही बार तो शक और पहलव दोनों नाम एक ही शासक-कुल में उपलब्ध होते हैं।

स्वातपाटी और गंधार (हजारा) का अपने अधिकार में कर लेने के पश्चात् मोग ने तक्षशिला को भी अपने अधिकार में किया। तक्षशिला साम्रज्य क्षेत्र से लिये हुए कुमुलक और उसके पुत्र महादान पति पतिक के नामों का पता चलता है जिसमें मोग को 'महूरयस महूरस मोगस' कहा गया है। उद्दीर अभिलेख का दमिजध और मांडव के सिक्कों का 'दमि' यह एक ही व्यक्ति हैं तो इन प्रकार एक दूसरे लक्ष्य का भी उल्लेख मिलता है। लिये हुए कुमुलक पुत्र का

सर्व मास्यस्ति मुदेन यथैशमाधिता जनाः ।

शकाना च ततो राजाः। अथलुम्पी महायज्ञाः । ५०-५३ ।

१ हि० इप्टोप्रीक डा० मययन ।

२ अर्ली हि० इ , विमेंट स्मिथ, बगुय करकरण, पृ० २४२ ।

३ तक्षशिला, मायल, १ । ४८ ।

सुत्र^१ या और हमिजद अमिसा (इयाग) का^२ । हमिजद ने मोग के सिक्कों पर अपना नाम खुदबाया और लियक कुमुलक ने अपने सिक्के डलवाये^३ । यह इत बात को सिद्ध करता है कि इन दोनों सुत्रों का प्रचामकीय और राजनीतिक ठठना ही महत्त्व था, जितना यूनानी काल में उनका मातहत राजाओं का^४ ।

साध्याय का मामा मोग शक्तिमान राजा था । तठशिला का साध्याय तस 'महरबस महत्तस मोगस' उपाधि में विभूषित करता है । मोग के कुछ खोबी के सिक्कों पर भी इत तरह का चिह्न मिलता है वहाँ उसे 'रजदिरजम महत्तस मोअस' कहा गया है^५ । तदशिला गंधार देश को राजपाना थी, किन्तु मोग पूरे गंधार-प्रान्त का स्वामी नहीं था । तदशिला पर अधिकार कर लेने के बाद अरीतोदोतस के उधरा अधिकारियों में राज्य का बँटवारा हो गया । एक अजम मदी के पूरव नम मया और दूसरा सिजुनद के पश्चिम । मेजम होआय मोग के अधिकार में था । अय प्रश्न उठता है, उसने किस तरह अपने राज्य का विस्तार किया । उसके सिक्कों के प्रसार प प्रचार से मालूम पड़ता है कि वह पश्चिम का और बढ़ा था, वहाँ निर्गमित और पदस्थित राजा स्ट्रेटो की वह उसकी उता दिलास में सहायता भी करता है । इस प्रकार सहायता कर मोग सिजु के पश्चिम और आगे बढ़ गया होगा और पश्चिमी गंधार के कुछ भाग का अधिकार में कर लिया होगा । लियक कुमुलक खुस में उतका सुत्र का और खुस में पश्चिमी गंधार का कुछ भाग रहा ही हागा—माशत का ऐसा विचार है ।

१ का० इ० इ०, फोनी, पृ० ११ ।

२ हमिजद, जि म्यू कै० पृ० १०-१६, ७१ प्लेट १६ । ३ । ६, प्लेट १७ । १ पं म्यू० कै० पृ० २०२ नं० २८ । सिद्धक क.म स.क कै० हि इ० प्लेट० ८ । ४२ ।

३ वि० इबदोवीक, डा० नरापन, पृ० १४७ ।

४ कैटसाग, सिमप, पृ० १६ ।

इस प्रकार त्रिपु के निचले कठि, गंभार का पश्चिमी प्रदेश तथा पश्चिमी पंजाब पर भोग का अधिकार था। यदि मानसेरा अभिलेख ६८ का सिक्क तक्षशिला सेल का ही सिक्क कुमुलक है तो भोग के राज्य की सीमा कश्मीर तक चली जाती है^१।

इस प्रकार हम भोग के राज्य की सीमा तो निर्धारित कर देते हैं किन्तु उत्तरे के राज्य की पूर्वी सीमा का निर्धारण करना थोड़ा कठिन है। यह जाना जा चुका है कि मिस्रिन्द के सिक्कों के 'एयेना आल्फिस्ट' प्रकार का भोग ने अनुकरण नहीं किया अतएव मिस्रिन्द के राज्य पूर्वी केरलम-प्रदेश, पर कमी शासन नहीं किया^२। इस सिद्धान्त का मुख्य आधार मिस्रिन्द की सत्ता का मुख्य केन्द्र पूर्वी पंजाब का प्रदेश था। परन्तु मिस्रिन्द के सिक्के मुख्यतः काबुल में मिले हैं। पूर्वी पंजाब में बहुत कम प्राप्त हुए हैं। मिस्रिन्द प्रश्न में स्पालकोट को मिस्रिन्द की राजधानी बतलाया गया है।^३ किन्तु हारट्ट हट्ट ने काबुल का उत्तरी राजधानी बतलाया है^४। कोनी ने मथुरा सिद्ध शीवक सेल के 'मुक्ती को तक्षशिला तादप्रथम हल के भोग से मिलान कर पूर्व में भोग के राज्य-सीमा को मथुरा तक लीचने का प्रयास किया^५ है। किन्तु सेल का पाठ भ्रमभ्रमक है। अतएव उत्तरे बारे में कुछ कहा

१ दि० शकाल इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ० १६।

२ प्री० पै० ३०, पृ० ३२२ ३०।

३ वर्षयानुत्पत्तं। अरिथ योनकानं नानापुटमेधनं सागसनाम मगरं महीयमतनोमिर्नं रमणीयमभिभ्रदेशमार्तं...

क्लीट ने तागस्त का स्पालकोट से समीकरण किया है।

किन्तु विपरीत मत के लिए इस्तिह—दि इरहोमीयत (डा० मरायन) पृ० १७२ ३।

४ तक्षशिला, भारत, २। ८६३।

५ कापल ५० ५० २। १। ३६।

नहीं था सकता।

अथ : मोग का उत्तराधिकारी कौन हुआ यह प्रश्न उठता है। साधारणतः पुराविद् तद्विशिष्टा में मोग का उत्तराधिकारी 'अथ' को मानते हैं। किन्तु यहाँ एक मूल प्रश्न उठता है और वह यह कि अथ कौन था? शक अथवा पहलव। विद्वानों में इस पर मतभेद है। विद्वानों के एक मत के अनुसार अथ इरडो-पहलव कुल का पहला राजा बोनान का वंशज था। अतएव वह भी पहलव था। विद्वानों के दूसरे मत के अनुसार अथ पहलव और बोनान के बर्ग का नहीं बल्कि मोग के बर्ग का और शक था। अथ किस बर्ग के राजाओं में आता है यह तो विवादास्पद है किन्तु इतना कहा जा सकता है कि वह शक या क्योंकि उसके नाम के अक्षर उसको शक ही यत्साते हैं। उसके शक होने के संबंध में प्रायः सभी विद्वान एक मत हैं।^१ नामकरण के उस विद्वान्त ने विद्वानों में यह सोचन की प्रवृत्ति पैदा कर दी कि बोनान और मोग दोनों एक ही वंश के थे। रैमन, विसेंट स्मिथ, आदि मुद्रातत्त्वविदों ने बोनान का भीय के ही वंश का बतलाया है।^२ इस प्रकार बोनान भी कि अथ बर्ग के राजाओं में पहला राजा था पूर्वी ईरान में शक हुआ और पहलव नाम धारण किया। वह शकरयान के साइमल प्रदेश का, जहाँ शक मग्दात द्वितीय के मंत्र से आ बसे थे, शक था। तममें पहलव नाम संभवतः मग्दात द्वितीय के शीव को ठहरा करने के लिए धारण किया होगा। मोग संभवतः यहाँ से माग आया होगा और तद्विशिष्टा में नए राज्य की स्थापना की होगी। अथ, मोग, एवं बोनान सब एक ही वंश के

१ दि शकाल इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ २०।

२ नामकरण के आधार पर इस विद्वान्त का प्रतिपादन किया गया है—मल्लत भी हो सकता है।

३ इंडियन क्वार्टर्स, पृ० ५।

ये, इतका समर्पण कनिषम से भी किया है। उनके अनुसार^१ पुष्यवार प्रकार सर्वप्रथम मोग द्वारा प्रयुक्त किया गया, बाद में यह शानों शाल्वाओं में प्रयुक्त किया जाने लगा। इतसे विदित होता है कि सब एक ही जाति के थे।

रेफ्तन, रिमथ आदि विद्वानों के अनुसार बोनोन के बाद अथ हुआ।^२ किन्तु हाइडबेड इसके विलकुल विपरीत करते हैं।^३ उनके अनुसार-मुद्रातस्वविद साधारणतया अनुमान करते हैं कि मोग के बाद अथ हुआ। मोग के उपरान्त बोनोन कंधार और सीस्तान का शासक हुआ और अथ ने पंजाब पर अधिकार किया।^४ माइनर^५ और बान जैसे इस मत के प्रवक्तक हैं। परंतु यह मत साधारणतः सब श्रेय स्वीकार नहीं करते।^६ अतः दूसरे प्रमाशों के अभाव में हमें रेफ्तन और रिमथ के ही मत को ग्रहण करना चाहिए।^७ सामान की कोई स्वतंत्र मुद्रा अब तक नहीं मिली है, जिन मुद्राओं पर उत्तका नाम है उनमें से कई मुद्राओं पर एक और उत्तका नाम और दूसरी और उत्तक मारै सलहोर का नाम है। एक और यूनाना अक्षरों में बोनान का नाम और दूसरा और स्वरोष्ठी अक्षरों में सलहोर का नाम मिलता है। कई मुद्राओं में एक ओर बोनोन का नाम और दूसरी ओर सलहोर का पुत्र सलगरम का भी नाम मिलता है। कुछ सिक्कों पर स्वलिरिय नामक शासक का भी नाम अंकित मिलता है। उन सिक्कों पर एक और यूनानी अक्षरों में स्वलिरिय का नाम और उगाधि और

१ म्यूजिगमेडिक कनिफल, १८८८-९२, पृ ११०।

२ इ. म्यू. के, पृ १ पृ ४०—४१।

३ व. म्यू. के, पृ १ पृ ११—४।

४ वही पृ १२।

५ रि. म्यू. के पृ ४१।

६ प्राचीन मुद्रा पृ २।

७ वही।

दूतरी और—महराज अथ प्रमियस स्वकिरियस—खिला हुआ है। ऐसे सिक्के छप प्रकार से बोनोन और स्वराहोर के नामों वाले चाँदी के सिक्कों के समान हैं। स्वकिरिय के कुछ सिक्कों पर एक और स्वकिरिय और दूतरी अथ अय का भी नाम मिलता है। एक प्रकार के सिक्कों में एक और मोग और दूतरी अथ अय का भी नाम है। इससे मुद्रातत्त्वविद् ब्राइटहेड अनुमान करते हैं कि बोनोन का अय के साथ कोई संबंध नहीं था। किन्तु हम दम पुक हैं कि एक ही सिक्के पर अय के साथ स्वकिरिय का नाम भी मिलता है।^१ स्वकिरिय का सिक्का दलमे से स्पष्ट है कि उसके साथ बोनोन का निश्चय संबंध था। ऐसी वस्तु में यह नहीं माना जा सकता कि बोनोन के साथ अय का कोई संबंध नहीं था।^२

अय प्रश्न उठता है कि पूर्वी ईरान के शकरधान का अय तब खिला कैम पहुँचा और तक्षशिला और पूर्वी ईरान के अय क्या एक ही व्यक्ति थे ?

इस प्रश्न का समाधान डा० दिनेशचंद्र सरकार^३ ने किया है। उनका अनुमान यह अय (भाग का उत्तराधिकारी, तक्षशिला का) और कोई नहीं पूर्वी ईरान के बानानपशी स्वकिरिय का ही सहवागी था जिसके शासन का प्रसार ख़दियी अफगानिस्तान तक हो चुका था।^४ खैनी इतिहास,^५ हाउ डान शु भी इस पर प्रकाश डालता है। उसके अनुसार काबुल के एक राजकुल का अथ सुपाशों ने नहीं बल्कि पहलवों ने किया। अय प्रथम के काबुल-पाटी में सिक्के पाये गए हैं।^६ डा० मुषाकर ख़दोनाप्याय ने भी ब्रिटन का इशाला बते

१ पं म्यू के, पं १, पृ १४३ नं० ३६४।

२ माथीम मुद्रा, पृ० ८३।

३ दि एज आफ़ इंडीरियाल यूनिटो, पृ० १६।

४ भाग ८८।

५ के० हि० इ० पं १ पृ० ५७३ ८।

हुए लिसा है कि पार्थवों द्वारा शोक विहित किए गए बिलके चौदे ही दिनों बाद शोक प्रतिक्रिया भी काबुल में हुई।^१ इस प्रकार इन प्रश्न का समाधान हो जाता है कि पूर्वी ईरान का अथ वक्षशिला काबुल-विजय करके पहुँचा या और वक्षशिला एवं पूर्वी ईरान के अथ एक ही व्यक्ति थे।

विजय और राज्य-सीमा जिन प्रदेशों को मोग जीत नहीं सका या उनको अथ' म अपने शासनाधीन कर लिया। पश्चिमी गंधार प्रदेश में उस समय बबन राजा द्विपौत्राठ शासन करता था। वह शक्तिशाली था। सम्भवतः इसीलिए मोग पूरे पश्चिमी गंधार प्रदेश को अपने शासनाधान न ला सका होगा। किन्तु अथ ने उत्तरी हराया और उसके सिक्कों पर अपना ठप्पा लगा कर चलाया।^२ पश्चिमी-गंधार प्रदेश का सीकों के हाथ से निकल जाने का प्रभाव सीकों के पूर्वी काबुल के इलाकों पर यह बिना न रह सका। उनका यह परामर्श उनक पतन का कारण बना। परंतु काबुल घाटी में अथ के उत्तम अधिक मिस्र नहीं मिल सके हैं जितना कि आर्कोशिया और गंधार में मिल हैं। इसमें प्रमाणित होता है कि अथ उस प्रदेश में उतना अधिक शासन नहीं कर सका जैसा जितना अपने गंधार और आर्कोशिया में किया। उसमें मोग के राज्य को अधिकार में रक्खा।

अथ का न तो कोई गुदा हुआ लेन मिलता है और न किनी पश्चिमी अथवा पूर्वी ऐतिहासिक ग्रन्थ में उसका कोई उल्लेख ही मिलता है। किन्तु इस राजा के समिलेनों के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। डा० त्रिवाठी ने यह सुझाव दिया है कि सम्भवतः वह कलबान समिलेन का 'अथ' अथवा 'अत्र' है। उन्होंने वक्षशिला के

१ रि शकाल इन इंडिया, पृ० २२ [विद्वान लेगक ने किर्द अरिदन का हवाला दिया है और उनी को प्रमाण मान लिया है। पाठ टिप्पणी में अरिदन से कोई संबंध उदाहरण नहीं किया]

२ प० म्प० कै० सं० १ पृ० १२२१।

राजत-लेख के 'अय' से मी इतका एक्य होने का अनुमान किया है।^१ इनमें से पहला लेख १३८वें साल का और दूसरा १३६वें साल का है। परंतु उनमें संवत् का उल्लेख न होने से इनमें संकृति अथवा तिथि निर्दिष्ट करनी कठिन है। जैसे तछशिला के पाल के कनकान-लाल के १३४ को मृत्यु कोनी ने विक्रम-संवत् में निर्दिष्ट माना है।^२ यदि इस अनुमान का सत्य माना जाय तो अय की (१३४४८) = ७६ ई० में राज्य करना श्रादिष्ट किन्तु इस गणना को मानने से अय मोग से बहुत दूर जा पड़ता है। कुछ विद्वानों ने इस ५८ ई० पू० में आरम्भ होने वाले विक्रम संवत् का प्रवर्तक माना है परंतु इस विद्वान्त्व के पक्ष में विशेष प्रमाण नहीं है।

अब क कई प्रकार के सिक्के मिले हैं। बिठट सिम्य के अनुसार अय नाम के दो राजा हुए थे।^३ परंतु डाइटोड अय नाम के एक से अधिक राजा का अस्तित्व मानने के लिए तैयार नहीं हैं।^४ यदि प्रमाणों की लाज-शीन की भाव तो डाइटोड के विद्वान्त्व का स्वरूप ही जाता है। डा० सिम्य का ही विद्वान्त्व प्रमाणित होता है। डा० सिम्य के मतानुसार मुबार्र में जो सिक्के प्राप्त हुए हैं उनमें से ऊपरी स्तर में पाये गए सिक्के अय द्वितीय के एवं नीचे मिले हुए सिक्के अय प्रथम के हैं। मासल ने मी इत मज का पुष्टि की है और अय प्रथम तथा अय द्वितीय का ही मन्त्र अस्ति माना है।^५ डा० रमाशकर बिपाठी^६ ने भी वही अर्थों की सत्ता में विश्वास करते हुए कहा है—कुछ विद्वान् बीनों अर्थों का एक ही व्यक्ति मानते हैं परंतु

१ हि० ए० ई० पू० १३३ १८ नोट।

२ एरि० ई० २१ पू० १५६, १५६।

३ ई० म्यू० कै० ए० १; पू० ४१, ४२।

४ ए० म्यू० कै० ए० १, ० पू० २३।

५ ए० ए० ए० तो १६१५ ए० ७६।

६ ए० ए० ए० ए० १६३।

दूधरी और लरोष्ठी अक्षरों में गुडुकर के नाम और उपाधि के बाद 'सस' नामक एक राजा का नाम मिलता है। यह 'सस' सेनापति अस्पयमन का महीजा या क्योंकि तक्षशिला के लखडहरों में मिले हुए चाँदी के एक सिक्के पर—महरकस अस्पमत पुत्रस एतरस तसस—लिखा हुआ है।^१

(४) बुध और शहर का छत्रप कुल : बुध तक्षशिला के अंतर्गत आता है। बुध के शासक को 'छत्रप' कहा गया है। बुध का शासक कौन या और उसके बारे में सिखने के पूरे हम 'छत्रप' शब्द पर विचार कर लेना चाहेंगे। प्राचीन काल में कारम में प्रात के शासक को 'छत्रपावन' कहा जाता था^२। इसीसे संस्कृत का 'छत्रप और ग्रीक-रोमकों का 'सैत्रप बना^३। ईरानी पाषणों के राजत्वकाल में प्रान्तीय शासक को 'छत्रपावन' सावधिक संबोधित था। परन्तु शकों ने किस कारण राजा अथवा सामंत के अर्थ में इसको व्यवहृत करना स्वीकार किया, वह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों के अनुसार शकों ने जब ईरानी पाषणों से मुहकरी लाए तो भारत की ओर मुह और तब उनको इस बात में सहूलियत हुई कि वे अपने को उनका प्रतिनिधि घोषित करें। वैसे ता वे भारतीय प्रान्तों के स्वयं विद्वाना थे, फिर भी उन्होंने अपने को उनका प्रान्तीय शासक ही कहा। इससे उनकी स्वतंत्रता में कमी बाधा न पड़ा। इससे वह न समझना चाहिए कि वे भारत में कबया स्वतंत्र न वे अथवा ईरानी-पार्षणों के प्रति उनका किसी प्रकार का उत्तरदायित्व अथवा गरोकार था। बयार्थ में 'छत्रप' पहले माण्डलिक राजा थे बाद में स्वतंत्र राजा 'महाछत्रप' कहलाये। छत्रप और महाछत्रप शिखरों का एक दूसरे प्रकार से भी व्यवहार हुआ है। छत्रपियों में 'महाछत्रप

१ अ. रा. प. भा. १६१४ पृ. ६८०।

२ एज. आ. इ. पी. रि. व. ल. मूनिटी, पृ. ११२।

३ प्राचीन भारत का इतिहास, डा. अनाप्याय, पृ. २०६।

अपने पुत्र की महाव्रता से राज्य करता था, जिसे केवल 'उग्रप' कहते थे। इस अवस्था में उग्रप-यद् भारतीय 'सुवराज' के पद से मिलता-जुलता था। जिस प्रकार सुवराज पिता की मृत्यु के बाद 'राजा' की संज्ञा से विभूषित होता था उसी प्रकार 'उग्रप' भी पिता के पश्चात् शासन का पूरा भार प्रत्यक्ष 'महाउग्रप' की उपाधि धारण करता था^१।

मोग का पुत्र में उग्रप शिबक कुमुत्तक था। यह शिबक मत्तसरा अभिलेख^२ का शिबक ही है^३। इसका एक पुत्र था, जिसका नाम तक्षशिला वाग्रपत्र^४ में मिलता है। ये दोनों पिता-पुत्र श शिबक मोग के पुत्र और उग्र नामक विषयों के मात्रात्मिक और शासक थे। पतिक बाद में महाउग्रप उपाधि धारण कर लेता है। मधुरा सिद्ध शिबक अभिलेख में उग्रक शिबक 'महाउग्रपत्त कुसुमव्रत पतिव्रत' का उल्लेख हुआ है। किन्तु विद्वानों में मधुरा सिद्ध और अभिलेख के पतिक और तक्षशिला वाग्रपत्त लेख के पतिक को लेकर मतभेद है। पत्तिका न^५ का पतिक की प्रामाणिकता का माना है। किन्तु रत्तन कोना और माधल न मधुरा और तक्षशिला के पतिक की एक ही बतलाया, उनमें भिन्नता का सिद्ध एक का रख बतलाया उन दोनों लेखों के पृथक्-पृथक् संदर्भ। दूसरे शब्दों में जहाँ पत्तिका की राजाओं की प्रामाणिकता का सिद्ध करने हैं वहाँ ये दोनों विद्वान मत्तसरा संदर्भ का एक पतिक के हीन के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए यह यह कहा जाय कि मधुरा और तक्षशिला के उग्रप-कुसुमों में संबंध स्थापित हो गया था ता कोई अनुचित न होगा—मधुरा सिद्ध

१ यही पृ० २७।

२ दि शकात् इन इटिया, टा० पट्टावाप्पाय, पृ० १६।

३ एन ई० ४। ५५।

४ अ० ग० ए० सी० १६ ७ पृ १०३५।

५ पी० डि० ई० ३० ५ १३५।

शीर्ष की स्थापना करने वाली 'महासुत्र राजसूय की अग्रमहिषी' ने शाक्यमुनि का शरीरवाह्य प्रतिष्ठापित करते हुए यह कामना की थी कि उसका यह शान "महासुत्रप पुस्तुतुक पतिक की पूजा के लिए, सब सुद्धों, धम और संघ की पूजा के लिए और समूचे शक्यराज्य की पूजा के लिए" हो^१।

(५) मथुरा के शत्रुप—मथुरा के शकों के बारे में लिखन से पूर्व हम यह जान लेना चाहेंगे कि ये कहाँ से और कैसे आए। इनके कहाँ से और कैसे आने का खतान जैन ग्रन्थ 'कालकायाय कथानक' में हुआ है।^२

यह 'कथानक' प्रभावकचरित नामक एक जैन ग्रन्थ का अंग है। इसका लेखक प्रमानंदशरि वे। यह कथानक एक जैन भिक्षु, काशकशरि, के जीवनचरित को बर्णित करता है जिससे पता चलता है कि शकों ने भारत पर आक्रमण किया था और उज्जयिनी का जाल सिया था। इसके बाद विक्रमादित्य ने अपनी शक्ति को संगठित कर, शकों का उच्छेद कर, उज्जयिनी को उनसे लीन सिया और इस विजय के स्मारक-स्वरूप विक्रम संवत् चलाया। इस कथानक के कुछ भाग को यहाँ उद्धृत किया जाता है—

भीषासुवर्ष नामक एक नगरी थी। वहाँ भीरमिह नामक राजा राज्य करता था। वह बड़ा बहादुर था। उसका एक पुत्र चार ण्ड पुत्री था। कालक और सरस्वती उनका नाम था। गुप्तकर नामक जैन भिक्षु से प्रभावित होकर शानों मार्ग-यहन जैन भिक्षु हो गए। मिश्रजन करत-करत उज्जयिनी पहुँचे। गश्मिल पहाँ का राजा था। वह बड़ा ही कामुक था। सरस्वता के रूप पर वह मुग्ध था। उमने अपने आश्रमियों को भ्रमकर दत्तपूतक उस अरन रनिगत में किए

१ एमि० ६० ६। ११६।

२ अ० शं० शं० रा० ए० मा० ६। १४०-१४७।

कर लिया। वह समाचार बापागिनी की तरह बायीं तरफ फैल गया। लोगों में तथा कालकचूरि में भी राजा की मिथुणी को खींच देने के लिए समझना। किन्तु उस पर तो छरस्वती की रूप-सुखा पड़ी थी किसी के समझने का प्रभाव उस पर न पड़ा। कालक नामक छत्रीय जैन मिथु ने प्रतिज्ञा की कि जब तक वह हम बुराचारी राजा को अपदरस्य नहीं कर देगा, अपने का मानवता की हत्या का भागी समझेगा।

कालकचूरि पामल ता इपर-उपर मदकन लमा। यह सिधु पार कर शकी क बेश बला गया। वहाँ रहकर अपने ब्याक्ति-ज्ञान से उनको प्रभावित किया। वहाँ ६६ शक कुल थे। उनका एक अधिपति था। वह बड़ा प्रतापी था। एक बार वह ६५ माहियों से माराज हा गया और कहला भेजा कि शकी क सामंठ यदि आपन कुल और बंधु-भाषणों का विनाश न चाहत हो तो अपने शिर कटवाकर उसक पाण भिजवा दें नहीं तो उनसे उन्हें मुक्त करना पड़ेगा और हारम पर वह उनका उपनाश कर देगा। 'ठगजुल' इत पर बहुत भयभीत हुआ। आनाप कालक जा कि वहाँ ठहर हुए, उनही सीखाम छोड़ 'हिन्दुगदेश' चलन की सलाह था। शक उतक पीछे चलत हुए सिधु नर का पार कर 'मुग्द (गौराधु) में प्रविष्ट हुए। बरसात का मौसम हान के कारण वे वही रुक गए और उसका ६५ माहियों में विभाजित कर दिया। अपनी शक्ति की एकत्रित तथा मजबूत करके उन्होंने पानाथ लाठ तथा मानवा पर चढ़ाई कर दी। मालवा का राजधानी अधिपति थी। गरभिल की अपनी मना और जानू पर भगना था। शकी से भयंकर मुक्त हुआ। गरभिल का हार हुई। यह मानकर कि कि गुल ईशान में उनकी हार निश्चित है वह किल में चला गया और अपने जानू का सहारा लिया। जब कालकचूरि में यह सुना तो उनका एक सामंतों को हम बात की खतारनी दी कि वे अपना काम बंद कर दें जिससे 'गरमी' का मुन न लगे। एता करने से गरभिल का जानू उन पर नहीं चल पाया। उनका कुल शक तीरंदाजों का

शकों का राजनीतिक उत्थान

भी गदमिल के मुंह खोलने से पूर्व ही मुंह बंद कर देने की हिदायत हो। एक निश्चित समय पर गदमिल के मुंह खोलने तथा राष्ट्र निकालने से पूर्व ही शक तीरंदाजों ने उसके मुंह में तीर मार दिया। यह बोल न सका। शक विजयी हुए। कालक की बहन सरस्वता स्वल्प हुई।

इस घटना के कुछ ही कालोपरान्त भी विक्रमादित्य ने इन शकों को वहाँ से लदेक दिया और अपने नाम का संबन्ध चलाया। यहाँ से निकाले जान पर कुछ शक मयुरा चले गए कुछ अपनी प्राचीन भूमि शकद्वीप में बह गए^१।

मयुरा के शक-कुल क बारे में पर्वत प्रकाश मयुरा सिंह शीप लेख कहता है। हम लाल से, जिसे कि पूर्वरूपेण ईरानी प्रभाव में बना हुआ कहते हैं, इस कुल क क्रम का पता चलता है^२।

(६) मयुरा सिंह शीप लेख : मयुरा प्रदेश पर शकों ने कब अधिकार किया इस पर मतभेद नहीं है। मयुरा सिंह शीप लेख का अर्थ लगात हुए कोनी ने कहा है कि मुबराज गरीष्ठ राजुत का रबमुर या और माग के बाद वही 'शातक' हुआ^३। यदि अमितोरा का वह अर्थ स्वीकार कर लिया जाय तो मयुरा प्रदेश का शकों क अधिकार में जाना माग क शासन काल में ही निधारित हो जाता है, परन्तु यामत^४ न इतका कुछ भिन्न अर्थ लगाया है। उनक अनुसार महाघजन राजुत की अग्रमहिषा, अयति कामुला की पुत्री, मुबराज पराज की मां थी जिसका नाम नंदति अकता था। इस अर्थ से, जिसका कि डा० दिनरायन्तरकार ने भी स्वीकार किया है,^५ मुब

१ अ० इ० हि, कोनी, १२। १३।

२ हि शकत इन इंदिया, डा० पट्टोपायान, पृ० २०।

३ का इ० इ० २। १६।

इ० ६। १४१।

राज खरोष्ट की स्थिति महासत्र राजुल से निम्न जान पड़ती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि खरोष्ट राजुल का पुत्र या और सम्भवतः पिता के जीवन-काल में ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसका बाद उसका भाई शोडास उत्तराधिकारी हुआ। पिता की मृत्यु के बाद सम्भवतः शोडास ने महासत्र उपाधि धारण किया।

(अ) राजुल मपुरा क्षत्री का प्रथम शासक राजुल था। यह महासत्र शोडास का पिता था। मपुरा के निकट मारा नामक स्थान पर एक ब्राह्मण लेख से राजुल का महासत्र होने का पता चलता है। परिव्रज में बह कर उतने बबन सत्ता का हान किया। इसका पता उसके स्ट्रेटो प्रथम व द्वितीय के सिक्कों के अनुकरण से प्रमाणित होता है। अतः राजुल के शासन का मुग्न गढ़ पूर्वी पञ्जाब या और मपुरा को उतने बाद में जीता।^१ मपुरा में कुण्ड हगान और हगामर के सिक्के मिले हैं जिन्होंने सम्भवतः कुछ काल तक सम्मिलित शासन किया।^२ इन सिक्कों के प्रकार मपुरा के पंचाल (शुग) शासकों के सिक्के से मिलते-जुलते हैं। इससे पता चलता है कि हगान और हगामर, गोमित्र और रामदत्त, मपुरा के आम-जान के शासकों, का हराकर स्वयं वहाँ के शासक बन बैठे। यदि राजुल ने मा मपुरा पर शासन किया है तो उतने हगान और हगामर के परबान् ही शासन का ही संभाला होगा।^३

(आ) शोडास—राजुल के बाद उसका पुत्र शोडास उत्तराधिकारी हुआ। पिता का मृत्यु के बाद ही वह महासत्र उपाधि धारण किये होगा क्योंकि मपुरा निह शार्व लेख में यह निर्दिष्ट धारण कहा गया है। उन के बाद के ही अर्मादिनी लेख में, जिसकी विधि निवार

१. रि शकाल इन इंडिया, पंडीगोपाय, १० २८।

२. वही।

३. प्रि० म्यू० के क्वां० पं० ६० एलेन, १० ११५।

४. एरि० ६० २। १६६, एरि० ६ ६। २४३ व।

ग्रस्त है, शोडास को महासत्रप कहा गया है। शोडास के सिक्के और अभिलेख दोनों मथुरा में पाये गये हैं। एक सिक्के में वह 'महसत्रपस पुत्रस सत्रपस संदसस' कहा गया है। पहले सत्रप या^१ पर बाद में जैसा कि अमोहिनी लेख से सात होता है, महासत्रप हुआ। उसके सिक्के मथुरा के आसपास ही मिले हैं, पूर्वी पंजाब में उसके सिक्के नहीं मिलते। अतएव उसके राज्य की सीमा को मथुरा के आसपास तक ही निर्धारित करना होगा।

(३) राज्य विस्तार—सिककों के प्रसार के आधार पर हम राजूत और शोडास के राज्य की सीमा का निश्चित करने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु इससे पहले हमें समझ लेना चाहिए कि जहाँ-जहाँ उसके सिक्के पाये गये हैं वह क्षेत्र उसके राज्यांतर्गत ही हो। सिक्के तो बशिकों के साथ भी इटते-बढ़ते रहते हैं। राजपुत्र के बड़ी-नाबाद में मथुरा में सिक्के मिले हैं। इस प्रकार उसके राज्य की सीमा पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश से लेकर पूरब में मथुरा तक थी।^२ पूर्व में पूर्वी पंजाब में शोडास के सिक्के पचास मात्रा में नहीं मिलते हैं अतः हम उसके राज्य की सीमा-रेखा मथुरा के आसपास ही लीचेंगे।^३

(४) सरपक्षान—सारनाथ में प्राप्त एक अभिलेख से, जिस पर कनिष्क के काल का उल्लेख है, पता चलता है कि महासत्रप सरपक्षान और सत्रप बनप्पर कनिष्क को भेंट दिया करते थे। य उनके अर्पितरथ शालक थे।^४ वे संभवतः शोडास के बंशज थे,^५ सरपक्षान ने कनिष्क की सेवा को स्वीकार कर लिया था और उसका

१ कर्णाठ आदि ही इन्द्रोसीधिवन्त, कनिष्क, प्लेट नं १९,

सिक्का नं १२ पृ १०१।

२ कर्णाठ आदि शकाव कनिष्क, पृ० २६।

३ दि शकाव इन इदिया, डा० बहोराप्पाय, पृ० २६।

४ एरि ई०, फोगल, पृ० ३३।

५ दि शकाव इन इदिया, डा० बहोराप्पाय, पृ० २६।

५५ ५३५२२ केरल बाराहली में रहकर अपने पिता के पूर्वी प्रदेशों पर सत्कार करना था।^१

कुषाणों द्वारा मयुरा विजय और भारत के पूर्वी क्षेत्र से सम्मिलित होने का बर्खन तिम्वती और चीनी बुचान्त करते हैं। तिम्वती स्रोतों से ज्ञात होता है कि 'कनिक' नामक किसी मपति ने भारत पर बदाई की और लोकेड (लोकेत अथवा अयोध्या) को नष्ट किया। कुमारसाह कृत कल्पनामद्वडीका के चीनी अनुवाद, जो कि कनिक के काल में हुआ था,^२ से पता चलता है कि कुषाणवंश में वेबपुय कनिष्क नामक कोई बहादुर मपति हुआ था, उसने पूर्वी भारत का जीता। विजेता पूर्वी प्रदेशों को जीतता हुआ अब राजधानी को लौट रहा था तो रास्त में उसे स्त्रियों का दंश मिला जिसको भ्रमण उसने बौद्धों का समझ लिया था। बाद में उसे पता लगा कि वह बौद्धों का नहीं निग्रहों का स्त्र था। उन स्त्रों में कोई अवश्य नहीं था।^३ वह बखान्त इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें मूहणियों द्वारा पूर्वी भारत का विजय का बखान है। इस विजयोरगत मूहणी मयुरा हाकर ही वायस लौट होग। इसकी पुष्टि कफासीमीक्षा से प्राप्त अभिलेखों से होती है।^४ मयुरा से प्राप्त १३२ अभिलेखों की सूची में केरल ८४ जैन, ३३ बौद्ध और १५ वैसे लग्न हैं जिनका पता नहीं चल सका है कि वे किस वम न हैं।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रायः सभी विद्वान एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि चहरात राकों की एक जाति विशेष के नाम का श्लोक है। किन्तु इसका समाधान वे नहीं कर सके हैं कि वह चहरात क्यों कहलाए ? उनकी मूल भूमि कहाँ थी ? प्रोफेसर रायचौरी ने इस ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा की थी। उनके मतानुसार 'चहरात' उच्चर की प्रसिद्ध एक जाति 'करतार' से मिलते जुलते हैं।^१ प्रस्तुत श्लोक इस प्रश्न पर नवीन दृष्टिकोण से विचार करना चाहता है।

यदि एक अभिलेखों पर दृष्टिपाठ किया जाय, विशेषकर तब यिज्ञा के पत्रिक के ताम्रपत्र श्लोक पर, तो बात होगी कि 'चहर' नाम की जहाँ पर कोई नगरी थी जिसका लिखक कुमुदक शाक वा।^२ चहर पर लक्ष्मी का शब्द है। इतसे हम अनुमान लगा सकते हैं कि वे उसी नाम के किसी शहर से आये होंगे और अपनी मूलभूमि की स्मृति में उसी नाम की एक नगरी भी बसायी। राकों का इतिहास इस बात का साक्ष्य है। भारत में एक राजवंशों के इतिहास का अध्ययन करने से विदित होता है कि वे अपनी मूलभूमि से किसी न किसी रूप में संबंध स्थापित किए हुए थे। उदाहरण के लिये मथुरा के एक क्षत्रप अपनी मूलभूमि को अज्ञातलि अर्पित करते थे।^३ वह याव मुगुष्ट और उज्जयिनी के महाक्षत्रियों के साथ भी थी या अपने का 'कादमक' कहते थे।^४ कादम काल में एक नदी है। इस प्रकार वे यह बतलाते हैं कि वह कर म-पाटी के रहने वाले थे। सभी विदेशी जातियाँ अपनी मूलभूमि की स्मृति अपने मानव-वस्त्र पर बनाए रखती हैं। वे शताब्दियों तक नहीं भूलतीं। भारतीय पारसी अपनी मूल भूमि का स्मृति लगभग आठ शताब्दियों तक बनाय रही। प्राचीन इत्रिजियन और

१ दि० पं० ३०, पृ० ४८४।

२ च हर [क] कुमुद क्षत्रप लिखको कुमुदको।

३ पृ० ३० ए। १४१।

४ हेरियस कास्पिटीयुस भी यावर्धि का कन्देरी अभिलेख।

फीनेशियन भी अपनी मूल-भूमि की यादगार अब तक बनाए हुए हैं, वर्यपि वे उस स्थान को जहाँ वे बस्तुतः रहते थे मूल गये हैं।^१

इसके अतिरिक्त हमारे पास एक ग्रन्थ प्रमाण भी भी है जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि 'सहर' तक्षशिला की मूल-भूमि जो जिसकी स्मृति की बनाये रखने के लिये ही उन्होंने तक्षशिला में इस नगरी को बसाया। भारतीय पूर्वी द्वीप समूहों की ओर अब बढ़ रहे थे जाया और बालो-द्वीप-समूह में मथुरा नामक नगरी का उल्लेख मिलता है। मथुरा दक्षिण भारत में एक नगर है अतएव जहाँ वे (भारतीय) बसे वह उनके मूल भूमि के ही नाम से पुकारा जाने लगा। इसीलिए बालो-द्वीप-समूह में हम 'मथुरा' नामक नगरी का उल्लेख पाते हैं।

प्रारंभ में ये शक जहाँ बसे (सिंध-वंशाव का क्षेत्र) वह विदेशी आक्रमकों के माग में पड़ता था या शताब्दियों तक बिदेशियों द्वारा रौंदा जाता रहा। इसलिए आश्चर्य नहीं कि इन शकों का भी और सुरक्षित स्थान की तलाश में उस स्थान को छोड़ना पड़ा हो। संभवतः इसी माग-शीर्ष में वे महाराष्ट्र पहुँचे और अपने को 'सहरात' अर्थात् 'सहर' के निवासी बतलाया। त्रिल प्रकार मथुरा के रहने वाले माथुर और भावस्ती के रहने वाले भीवास्तव कहलाए।

इस प्रकार यह निष्कप आसानी से निकाला जा सकता है कि महाराष्ट्र के 'सहरात' मूलतः मध्यप्रदेश के निवासी थे जिन्हें वर्य जातियों के सतत आक्रमकों के कारण वे अपनी मूल-भूमि को छोड़ना पड़ा होगा। उनकी पहला शान्ता भारत में गीवर बरें न आयी^२ और सिंध वंशाव के क्षेत्र में आकर बस गयी। इस क्षेत्र में वरनों की लम्बा अधिक थी। इसके अतिरिक्त वह विदेशी आक्रमणकारियों के माग में भी पड़ता था। अतएव पापकों का अब आक्रमण हुआ उनको वह भूमि छोड़नी पड़ी होगी और संभवतः गौराष्ट्र में, जहाँ शक बसे थे, उनको

१ दि वेदिक एज, पृ २१६।

२ मूर्त्त, रकीदिपन पीरिपट आब इंडियन हिस्ट्री, पृ० ३१०।

शरणा मिली होगी और तभी उन्होंने 'सहरात' नाम शरण किया होगा। मयनों ने अपने को मिन बतलाने के लिये ही संभवतः उन्होंने ऐसा किया। यदि वह ऐसा न करते तो हो सकता था कि सीराप्ट्र के एक ठनको महाराष्ट्र में प्रवेश करने के लिये मार्ग न देते; मार्ग बनाने के लिये हो सकता था उनको उभरे रहना पड़ता। लेकिन स्वजाति के साथ भारत में कम ही लड़ते हैं। बल्कि ऐसी दशाओं में तो वे लुप्टिवा मताते हैं। इतिहास इस बात का साक्ष्य है। मिहन्वर जब भारत पर लड़ाई करने को पड़ा रास्त में ठनकी मुठमेंड नामा के शोगों से हुई। किन्तु नीसा के शोगों ने मिहन्वर के प्रति तत्काल आत्मसमर्पण कर दिया और ठनकी सहायता के लिये १०० पुस्तधारों की एक सेना भी भेंट की। वे अपने को द्विबोनीसम् का बंशज कहते थे। इस प्रकार में उन्होंने अपनी भूमि पर 'साहबी' लता दिखाई और नगर-बर्ती पबल का नाम प्रोक्त 'मेरोस' की भाँति 'भरा' बतलाया। इसमें मिहन्वर के गर्व का लुप्टि मिली और उसने अपनी सेना बहा विधाम और कुछ दिनों तक उन दूर से भाइयों के साथ पानोस्सव आदि मनाम को अनुमति दी। यह स्थानाधिक ही था कि सीराप्ट्र के लक्ष्यिता के राजों से नहीं लड़े।

इस प्रकार यह करना अनुपयुक्त न होगा कि वे सहरात मूलतः मज्जण्डिना के ही निवासी थे जो बृह-निबों के मज से अपनी मूल भूमि से भाग कर लक्ष्यिता में आ गये थे और बाद में पार्यों के आक्रमण के भय से भाग कर महाराष्ट्र चले गये थे। मुद्रासत्त्वविद् रोजन ने भी कहा है—“मूमक के निबकों पर गरोप्टी सिरि की स्थिति प्राचीन सिरि की तरह ही है। महयान के लोभ के निबकों पर इनको हम नहीं जाने सयति; उसके लोभ के निबकों पर इसका लिगना गया है किन्तु ठनको वह मान्यता नहीं मिली थी जो मूमक के निबकों पर गरोप्टी सिरि को प्राप्त थी। गरोप्टी सिरि का इस तरह विह्वल

होना यह बतलाता है कि वह बहुत उत्तर भारत की क्षिति थी जिसका पश्चिमी भारत में प्रयोग नहीं होता था। इसलिए इस क्षिति को पश्चिमी भारत में वह स्थान नहीं मिल सका जो उठको उत्तर भारत में प्राप्त था।^१

इस प्रकार सभी बात प्रमायों—ठिकानों के किरम, बाहु, लेख, आदि—से यह प्रमायित होता है कि सहरात कुल के क्षत्र उत्तर भारत के किसी पहलव अथवा शक-पहलव कुल के क्षत्रीय शासक थे।^२

शहर की भवस्थिति

अब प्रश्न 'शहर की भवस्थिति के बारे में उठता है। इस प्रश्न का उत्तर मध्य-एशिया में बूह-पिबो का संक्रमण एवं प्रसारण देता है। चीनी इतिहास से ज्ञात होता है कि हुआराजा मि-यू ने बूह-पिबो को बुरी तरह परास्त किया जो कि कारागिरिया के पूर्वी उत्तर पूर्वी भाग में रहते थे। इस भाग के अविष्कार निवासी बकरता का त्यागकर लम्बे जीवन स्थिति करने लग ग और शहरी हो गये थे तथा मीकों को ही मॉलि छोटे छोटे नगर राज्यों में रहते थे। चीनी बुधमस्तों में इस प्रकार के २६ नगर राज्यों का बलन मिलता है।^३

राजा के मारे जान से बूह-पिबो क्षत्रीय भूमि पर टिक न सके। वे पश्चिम की ओर भागे और वहाँ बसों में विभक्त हो गये। एक बल कीवांग में जाकर बस गया। किन्तु धूमरा बल बढ़ता ही गया और नीरदरिया के काँटे में 'सड़' लामों से जा टकराया। सिद्ध अथवा 'शक' उनका सामने टिक न सके। वे भागे। उनको एक शागा की-रिन और सिन्ध-सिन्ध क्षेत्र में जाकर बसो।

इन 'सिद्ध' अथवा शक लामों क संक्षेप में लिखत हुए लिखना करता है कि उनका पूरा क लोका उनको 'अरवाह करत थे और

१. ग्र० राज० ए० वा० १६०८ पृ० ३०३।

२. वही।

३. अकबरनं, आली इंगरंत आरु सेन्ट्रल एशिया, पृ० १११।

उनका जीवन व्यापार पहलवों से बड़ा मिलता-जुलता था। जर्मिन भी इनका समर्थन करता है। उसके अनुसार पायबं भी इसी रिकपियन कुल की शाला थे।^१

इसमनी सम्राट द्वारा के लेल से भी विदित होता है कि वे शक उल्लेख के साम्राज्यव्यन्तर्ग ईरानी अथवा पहलवी-शब्द और पहलवी का ईरानी भाषा से काफी निकट-संबंध था। ईरानी साम्राज्य के अंदर 'बहर' नामक नगरों की शृंखला भी मिलती है। संभवतः अमूदरिया और सीरहरिया के कांठों में भी 'बहर' नाम का कोई स्थान रहा हो जिसके निवासी वे शक थे।

(आ) मूमक : महाराष्ट्र के शक-कुल में केवल दो व्यक्तियों का नाम अभिलेखों में मिलता है—नहवान और उलका आमाता उगव दात किन्तु १६०४ ई० में प्रोफेसर रेप्पन ने इस कुल के इनमें से पूर्व के एक राजा का पता लगाया जिसका नाम मूमक था^२। इसका ज्ञान केवल, सिक्कों से हो पाया है। विसेंट स्मिथ ने इसको गुबुदर का संनापति बतलाया है^३।

डा० स्टेन कोनो^४ ने यह सुझाया है कि मूमक और प्लामोतिक (सप्टन का पिता) दोनों एक ही व्यक्ति थे। कोनो ने 'रुमा का अर्थ भूमि से और 'मूमक' को इसका संस्कृत रूप बतलाया है। यदि यह सत्य है तो कहना पड़ेगा कि प्लामोतिक अपने नाम के संस्कृत रूप का सिक्कों पर टंकबजाया था। किन्तु प्रो० रेप्पन ने इसका खण्डन करते हुए कहा है कि 'मूमक' के सिक्कों के प्रकारों को देखने से पता चलता है कि उनमें नहवान से पहले उत्पन्न किया, उनमें कोई संबंध

१ कनिंघम, क्वाथम आद दि इण्डो-रिकपियन शक-कुल, पृ० २२३
 २ रेप्पन, कैटसाग, पृ १०८।
 ३ अली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० २२०।
 ४ का० ई० ई० २। ७०।

या इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है^१। यदि इस तथ्य की गहराई में उतरें तो मूमक और यामोतिक या व्यक्तिबो का अंतर स्पष्ट गम्य हो जाएगा। मूमक के सिक्कों से यह स्पष्ट है कि यह छहर व या परंतु पण्डन छहरात नहीं था। दोनों भिन्न-भिन्न बंश के थे। इस प्रकार छहरात बंश में नहपान से भी पूर्व एक व्यक्ति हुआ था मूमक जिसका ज्ञान अबल सिक्कों से हो गया है।

(इ) महपान : मूमक के बाद नहपान का नाम छहरात कुल की वंशक्रमणिका में मिलता है। नहगन का कई नामों से अभिहित किया गया है यथा नगपान नहवन नरबाह,, नरबाहन तथा नलवान आदि। नहपान उसका ईराना नाम है। नह = जन और पान = दपण अथवा पाल। अर्थात् जन-पाल या जन दर्पण। 'दपण' क कर में डा० मुभाकर चहोपाण्याय^२ तथा 'पाल' के अर्थ में डा० पी. आर. इबरस^३ से इसका महसूस किया है। इस प्रकार नहगन के संबंध में हमारे पास ज्ञानन क तीन साधन उपलब्ध हैं—साहित्य अभिलेख तथा सिक्के।

जैन अनुभूति तथा पुराणों से ज्ञात जाता है कि महपान में पण्डन के पूर्व तथा महमिल्ल के बाद करीब ४० वर्ष तक शासन किया। पार्सीटर नगपान को उत्तर-कालीन शुंग काल में रक्ता है।^४

बह बड़ा प्रतापी शासक था क्योंकि इस आग्र-मातवाहनों के हाथों पराजित होने पर इस कुल का महशक्तिमान राजा था। कुछ विद्वानों ने उसका 'शक' ज्ञान में संदेह किया है। उनकी पुत्री दक्षमित्रा उपरबात (श्रुयमदन) नामक एक शक सामंत को ब्याही थी। उपरबात शक था यह स्पष्ट है।^५

१. रैजिन कैटसाग पृ० १००।

२. डा० चहोपाण्याय दि शकाल इन इंडिया पृ० ३३।

३. प्रा० ई० दि० की० १९४० पृ० १४९।

४. इन्डो-एशियन आर्कैलॉजी, पृ० ४९।

५. एरि० ई० ८। १४ (अ)। ८५।

धर्मों का राजनीतिक उदयान

पुत्री और जामाता होने के नाम हिन्दू हैं जिससे प्रमाणित होता है कि शक लोग भारतीय संस्कृति का अपनाने लगे थे। उनके हिन्दुओं में विवाह संघर्ष भी स्थापित होन लगे थे।

नामिक के पाण्डु लेख तथा पूना जिले के बुन्दार तथा काले क उपबदात क अभिलेखों से जान पड़ता है कि नहपान महाराष्ट्र क बड़े मूभाग का स्वामी था। महाराष्ट्र के वे भाग आभ्र-सातवाहनों क अधीन थे। शातकर्कि राजाओं के लेख इन भागों म उल्लेख मिल हैं। इससे प्रमाणित होता है कि नहपान ने मूभाग आभ्र-सातवाहनों ही से जीत लिये। इस काल में मालवों के आक्रमण हो रह थे और उनका राजने क अनेक प्रयत्न उत्तममद्र कर रह थे। नहपान ने उत्तममद्रों के प्रयत्न में सहायता करने के लिये अपन जामाता उपब दात को भेजा। इस युद्ध म उपबदात की विजय हुई और उसने अपन स्वमुर और महासद्वप नहपान का आधिपत्य आधुनिक अजमेर क निकट तक फैला दिया। अजमेर के पास पुष्कर (पश्चर) तीर्थ में उसने अनेक दान किये।^१

नहपान के शासन काल की तिथियाँ ठलक लगों में ४१ वें साल से ४६ वें साल तक उत्काल्य मिलती हैं, परन्तु उसके तबत का उत्काल्य म होने क कारण उनका निश्चय करना थोड़ा कठिन है। प्राचीनी विद्वान कुम्भीआ^२ म इन तिथियों का विक्रम संवत् क अनुमान अधिक माना है। उस दशा में वे ६६ ईसवी से १०४ ईसवी तक पड़ी। कनिष्क एवं राज्याल पाडू प्रमूत विद्वान इस मा का समयन करते हैं। किन्तु रेव्जन ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उपयुक्त तिथि विक्रम संवत् का नहीं अनिष्ट शक संवत् का है। विद्वान लेखक क विचार

१ द्रष्टव्य, अप्याप, कामाजिक जापन।
 २ एरि० ई० ८। १५। ७८।

से प्रायः सभी विद्वान सहमत हैं ।

नासिक और काले के अभिलेख उसके साम्राज्यवर्तमान निम्न लिखित प्रदेशों का बयान करते हैं—दक्षिणी गुजरात, उत्तरी कोंकण—मरुच्छण्ड से सोगरा तक और नासिक एवं पूना के क्षेत्र ।^१ इन प्रदेशों का शासन मार जमाता श्रुपमवत् और कामात्य अयम पर था ।

नासिक का लेख जिस पर क्रि.श. ४५ अंकित है मह पान को मिर्द 'द्वय' कहा गया है । जबकि बुन्नार के लेख में, जिस पर किसी संवत् का ४६ अंकित है उसको 'महाचक्रपस्वामि' अभिलिखित किया गया है । अयम का यह बुन्नार लेख नहपान के अथ तक प्राप्त लेखों में अंतिम समझा जाता है । इससे विदित होता है कि उसने अपने शासन के अंतिम बय में महाचक्रप का उपाधि धारण की थी । अब प्रश्न उठता है कि महाचक्रप से पहले जब वह क्षत्र था तो किसका संप्रभु था । इसका समाधान नहीं हो सका है । डा. मुवाकर चट्टोपाध्याय ने यह ठिक किया है कि नहपान ने अपने उपाधियों ही धारण कर लिया था ।^२

नासिक के लेख और उसके निकट के जोगलक्षेत्रा स्थान से प्राप्त लिखों के अनुशीलन से विदित होता है कि नहपान की शक्ति को तातबाहनकुसीय प्रवर्ती सम्राट गीतमीपुत्र श्रीशतकर्म्मि ने कुचल दिया था ।

(ई) उपब्रह्मण्डल : उपब्रह्मण्डल नहपान जमाता था । उसके पिता का नाम रीनोक था और पत्नी का दक्षमित्रा । इसमें भी मध्यधर ने यह

१. विधि के संबंध में विद्वान् जानकारी के लिए देखिए डा०

चट्टोपाध्याय इन 'दि शकाम इन इण्डिया', पृ० ४९-५० ।

२. रीजन, कैम्ब्रिज, पृ० ५७ ।

३. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकाम इन इण्डिया, पृ० ३६ ।

४. एरि० इ० ८१० ।

शकों का राजनीतिक उत्थान

अनुमान लगाया है कि इक्ष्वाकु नरहपान की मारवीर पत्नी से उत्पन्न पुत्री रही होगी।^१ इनकी एक पुत्र भी था, मित्रदेवकुक। वह भी माता-पिता की भाँति दानी था। इसने भी स्वयं बनबाया था। उपबदात का परिवार बड़ा दानी था। अमितोन्नों से यह स्पष्ट हो जाता है।

(४) अयमः अयम की स्थिति का ज्ञान हमें पुन्यार लेख से होता है। वह नरहपान का आमात्य था। वह बल गात्र का था। उसके भी दानादि कार्य किये थे।

(२) उज्जयिनी और सुराष्ट्र के महाद्वय

(अ) अष्टनः शकों की पाँचवी शाखा उज्जयिनी और सुराष्ट्र में था बसी। अष्टन इत बंश का संस्थापक था। लेखों में इतको 'व्यामोतिक पुत्र, कहा गया है। 'व्यमो' का संस्कृत रूप मूमि होता है। इस अय के आधार पर लेखी और कानी प्रभूत विद्वानों ने व्यामोतिक को मूमक से मिलाया था और अष्टन को इस तरह नरहपान का संबंधी पतहाने का प्रबल किया था। किन्तु नामों की एकता व्यक्ति की एकता की सिद्ध नहीं करता। ऐतन से इतकी निःकारिता को सिद्ध कर दिया। अष्टन के काल का निर्णय करना भा सरल नहीं है। दुमोद्या के अनुसार ७८ ईसवी में शक संवत् का चलाने वाला अष्टन ही था। यह मत अनेक कारणों से विद्वानों को मान्य न हो सका, परन्तु इतना ठनका भी प्राप्त है कि अष्टन के अन्वय उत्थान से प्राप्त अमितेन में जो तिथि ५२ दी गई है वह शक संवत् का ही है। इत मत के अनुसार, जितको कि प्रायः सभी विद्वान मानते हैं, यह तिथि (७८ + ५२ =) १३० ईसवी हुई। अष्टन ने शक परंपरा के अनुसार परतों को 'द्वय' के विवर से फिर 'महाद्वय' का हेतुपत से शासन किया।

कुत्र नील उतके पत्रा विवर के कारण कम से कम आरंभ में उत

१ उत्पन्न, वि० शकवत इन इंडिया, पृ० ६५।
२ ति० इ० ७५६।

गत किया था। दक्षिणारण्य के स्वामी की उसने दो-दो बार युद्ध में पराजित किया था, किन्तु निकट-अंतर्धी होने के कारण उसका उस मुक्त करके महा प्राप्त किया^१। इसके दक्षिण-पश्चिमी सीमाओं को भी युद्ध में उसका करावी हार थी। दक्षिणी पंचाक्षर और निकटवर्ती प्रदेशों में सीमाओं का एक प्रबल गुरुत्व था जो अपनी स्वतंत्रतानुगतिता के द्वारा तथा वृत्त शासकों की तंग किया करता था। इन्द्रवामन ने उनको विजित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली और अपने साम्राज्य विस्तार के भाग में अपने एक कण्टक को निर्मूलत किया। गुरुत्व महात्वाकांक्षी राजाओं के भाग में महा रोड़ बनत हैं। इस प्रकार रास्ते के कण्टकों को निर्मूलत कर उसका एक विशाल राज्य की स्थापना की। उसके गिरनार क्षेत्र पर दक्षिण-पश्चिम करने से उसके साम्राज्यगत निम्नलिखित प्रदेशों का पता चलता है—

१ पूर्व-अपर आकर-अवन्ति—(अथवा पूर्वी और पश्चिमी मालवा) पूर्वी मालवा की राजधानी विदिशा तथा पश्चिमी की राजधानी उज्जयिनी थी। इन्द्रवामन ने अपनी राजधानी को उज्जयिनी में ही स्थापित की थी।

२ अनूप—दक्षिणी मालवा में नर्मदा नदी के किनारे निमार मध्य प्रदेश जिलान्तगत 'मदरपर'।

३ नीपत—अभी तक इसका पता नहीं चल सका है।

४ आनत—उत्तरी काठियावाड़ के मूभाग को ही आनत कहा गया है। इसका प्राचिन राजधानी आनन्दपुर थी। महाभारत और पुराणों में आनत शब्द का उल्लेख मिलता है।

५ सुराष्ट्र—दक्षिणी काठियावाड़। जूनागढ़ और पण्डित इना के अंतर्गत आते हैं।

६ इबन्न—वर्तमान साबरमती।

१ दक्षिणारण्यः । काठकोशीद्विती । निम्नोत्तमदक्षिणोत्तरीयत्वं । तद्विषय-विस्तृततानुलाहमाध्यायपर्यन्तम् ।

७ मद्र-कच्छ—यदि मद्र-कच्छ को सही माना जाय तब तो इस प्रदेश में राजस्थान के रेगिस्तानी प्रदेश और बतमान कूच आ पाते हैं। किन्तु यदि 'मद्र' को 'भद्र' का गलतौ से मद्र बन जाना समझा जाय तब यह मद्र-कच्छ एक शब्द हो जाता है, जो वर्तमान मड़ोंक की ओर संकेत करता है। परन्तु खूँफि लेख में यह शब्द स्पष्ट नहीं हो सका है, इस संबंध में क्याही नहीं कहा जा सकता।

८ सिंधु—अपर सिंधु-क्षेत्र के प्रदेश यहाँ से एक भारत के अन्य प्रदेशों में प्रवेश करते हैं।

९ सौवीर—इस प्रदेश की प्राचीन राजधानी मुस्तान थी।

१० कुतुब—राजस्थान का एक प्रभाग।

११ अपराम्ब—उत्तरी कोकण।

१२ निपाद्—पश्चिमी विन्ध्य और अरावली के प्रदेश। इस प्रकार उसके राज्य में वे सभी प्रदेश सम्मिलित थे, जिन पर अहमदशाह का अधिकार था। नासिक और पूना जिले के प्रदेशों पर अहमदशाह का अधिकार नहीं था।^१ इनमें से कुछ प्रदेशों पर गौतमीपुत्र शाह का अधिकार था। किन्तु अहमदशाह ने उन पर अपना ही स्वामित्व स्थापित किया उसके यह स्पष्ट है कि उसने गौतमीपुत्र के उत्तराधिकारी को पराजित कर उसके कुछ प्रदेश हीन किए थे।^२

अहमदशाह केवल एक महान् विजेता ही नहीं, बल्कि एक उत्कृष्ट एवं योग्य शासक भी था। अपने कुशासन द्वारा उसने अपने राज्य से शेरों, तुर्कों, दमा वृत्तों और अन्य कष्टकों का उन्मूलन कर दिया था। यह स्पष्टप्राप्तरी शासक नहीं था, बल्कि दमशाहों के अनुत्तर कार्य करने वाला एक प्रभावशाली राजा था। अमिलोग के कपना नुसार 'अर्ध-बनोरमिगावरावण्यं पतित्वे बृतेन', तय आठियों से मिल

^१ हि एन झाफ्ट इपीरियल यूनिटी, पृ० १८५।

^२ पो० हि० ए० १० पृ० ५००।

कर उसे अपना रक्षक वा स्वामी मनोनीत किया था। प्रजा के हित कि वह बहुत ध्यान रखता था। प्रजा के कल्याण की बात वह हमेशा सोचा करता था और इत हेतु कोई भी कार्य-करने के लिए वह हमेशा तत्पर रहता था। जूनागढ़ की प्रचलित से उसके लाकानुरंजन का मानना का एक भेष्ठ उदाहरण मिलता है। उसने सुराष्ट्र प्रांत में स्थित मुद्रयंन भिक्षु का बांध फिर से बनवाया। इस भिक्षु से यहाँ के निवासियों को बहुत लाभ होता था; बांध टूट जाने के कारण उनका कठिनार्थ का अनुभव हुआ जिसके निराकरणार्थ कन्नदामन ने मुद्रयंन भिक्षु का पुनर्निर्माण कराया। उसके आमात्यों से इतक निर्मात्य की बात को लेकर, आर्थिक कारणों के आधार पर, विरोध हो गया था। अतएव उस स्वयं अपने कोश से बन लय कर, गिरदार और उसका आश्रय को भूमि का जल देने वाली मुद्रयंन भिक्षु की मरम्मत करवानी पड़ी, जो मूलतः पत्रगुप्त मीर्य के काल में बनवाई गयी था और क्या के कारण उसके समय में टूट गयी थी। वह अपने आमात्यों के लक्ष्यपरामर्शों का तदैव स्वागत करता था और उनके निश्चयानुसार कार्य करता था। लोककल्याण के कार्य का संवादन करते समय भी कन्नदामन अपने मंत्रियों से परामर्श करता था और अपने कोश से बन व्यव कर उस कार्य का संधारित करता था।

एक कुशल विद्येता और शासक के अतिरिक्त वह साहित्य-ममता भी था। वह कई विद्याओं का ज्ञाता था। व्याकरण (शब्द) राजनीति (अर्थ) संगीत (गंधर्व) तर्क (म्याय) और इला तरह को अल्प विद्याओं में वह पारंगत था।^१ वह उसका व्याकरण ज्ञान का ही कारण है कि उसका लेख विगुह संस्कृत में ही लका लय कि अल्प शुक्र राजाओं के लेख विगुह संस्कृत में नहीं मिलत। गु गों के बाद उर्मी का राजकीय लेख गुह संस्कृत में मिलता है। इन काव्यक बंधा

राजाओं के काल में उज्जयिनी विद्या का केन्द्र हो गया था ।^१

इन्द्रवामन वैदिक पमानुवासी था तथा बमशास्त्रानुसार काम करता था । वह संभ्रम के अतिरिक्त और कहीं मानव-बल नहीं करता था ।^२ उसके शासन में सहायता के लिए दो प्रकार के यंत्रियों की व्यवस्था थी—मतिवचिव और बमवचिव ।

इन्द्रवामन के बाद उज्जयिनी के शकों की शक्ति बहुत दिन चोख होती गयी । यद्यपि इन्द्रवामन के बाद दो ती बर्षों तक इत बंश का शासन बना रहा तथापि इतने लम्बे काल में भी इत बंश के शासकों ने कोई महत्वपूर्ण काम नहीं किया । वे नाम मात्र के शासक थे । उनकी शक्ति काफ़ी क्षीण हो गयी थी । संभवतः इतीतिथ उनके शासन काल की घटनाओं का वर्णन करना किसी ने आवश्यक नहीं समझा ।^३

(ई)शामपसदः इन्द्रवामन के बाद उसके उत्तराधिकारियों का ज्ञान प्रायः शिक्तों पर आधारित है । इन्द्रवामन के पर्याप्त उत्तका पुत्र शामपसद उत्तराधिकारी हुआ यह शामपसद के सिक्के प्रमाणित करते हैं जिस पर निम्नलिखित लेख सुद्धा है—

इन्द्रवामनः पुत्रस्य सभारस्य राम (बर) * उसके 'सभार' प्रकार के सिक्के इस बात को प्रमाणित करते हैं कि वह अरुन सिता के राज-सकाल में उनका सहायक था । उत्तका 'महासभार' प्रकार उत्तकी सततवता की योग्या करते हैं । उत पर उत्तका पित्र भी अंकित है जिससे विदित होता है कि वह काफ़ी बड़ था और थोड़े ही काल तक उसने शासन किया होगा ।^४

* वि एन आर इंपारियल यूनिटी, पृ० १८३ ।

२ यथावत्प्राप्तैर्बनिशुद्धमागे ।

३ डा० चट्टोगप्पाय, वि शकाव इन इंडिया, पृ० ६४ ।

४ रेप्पन, कैटलाग, पृ० १२४ ।

५ डा० चट्टोगप्पाय, वि शकाव इन इंडिया, पृ० ६४ ।

वामपठर के मरते ही लक्ष्य-कुल पर आपत्ति आयी। भाई रुद्रसिंह प्रथम के गुबदा लेख में और मतीजे रुद्रसेन प्रथम के महा लेख में उसके तथा उसके पुत्रों जीवदामन तथा लखदामन के मामों का उल्लेख नहीं मिलता। उनके वंशानुक्रमशिखा में इनको कोई स्थान नहीं दिया गया। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए रेण्डन ने कहा कि यह संभवतः इतना ही क्योंकि राज्य के उत्तराधिकार के रूप में ही व्यक्ति चाये वामपठर का पुत्र जीवदामन और भाई रुद्रसिंह प्रथम। दोनों में राज्य के लिए भयका हुआ और विजय वृत्तों को प्राप्त हुई। विवेका द्वारा अपने वंशक्रमशिखा में उनके नाम न रखने का बड़ी कारण होगा।^१

जीवदामन और रुद्रसिंह प्रथम

लिकों को देखने से पता चलता है कि वामपठर के बाद उसके पुत्र जीवदामन उत्तराधिकारी हुआ। उसके महालक्ष्य नाम के लिके मिले हैं, जिन पर लिख भी अंकित है। उसने कुछ ही समय तक राज्य किया होगा कि उसके चाचा रुद्रसिंह प्रथम विद्रोह कर उठा और शासन का अयम हाथ में ले लगभग साठ वर्षों तक महालक्ष्य बना रहा। बाद में ११७ ईसवी से १११ ईसवी तक जीवदामन ही महालक्ष्य रहा। यदि इन मरतों से लिकों का अवलोकन किया जाय तो उनके निम्नलिखित तिथिरक लिकक मिलेंगे—

(क) जीवदामन—महालक्ष्य लिकक १७८१ ईसवी चार ११७-१ ई०

(ख) रुद्रसिंह प्रथम—

(अ) छत्र लिकक ईसवी १८०१, १८०२ ई०

(ब) महालक्ष्य ईसवी १८१-८८, १११ ई०

जीवदामन और रुद्रसिंह प्रथम के महालक्ष्य उपाधि काल में हो-

दो बार परिवर्तन सिद्ध करता है कि उनके शासन पर कोई न कोई संकट आया होगा। १८१ ईसवी के गुपडा लेख से पता चलता है कि आमीर मेनापति बद्रभूति का बद्रमिह छत्र या १^९ इसमें गाठ होता है कि बद्रभूति एक शक्तिशाली सेनापति या उसी तरह जिस तरह पुष्यमित्र शुंग था; जिसने राजा की उपाधि धारण न कर कि^१ मेनापति की ही उपाधि धारण किया और महासत्रों के लिए संकट का कारण बन गया। संभवतः इसीलिए जोंवदामन को एव्व सुाङ्कर मगाना पड़ा होगा। उसके शासन के बीच में जी स्पवदान पढ़ता है उनका यही कारण रहा होगा। किन्तु बद्रमिह प्रथम उसका अधीनता स्वीकार कर उसका मातहत छत्र बना रहा।^२ कालान्तर में जब बद्रमिह काही शक्तिशाली हो गया होगा अपनी स्वतंत्रता पायित कर ही होमी और 'महासत्रय' उपाधि धारण कर ली होगी। परन्तु इस समय तक आमार और वातवाहन प्रबल हा गए थे। उन्हें जब भी आवश्यकता या छत्र राज्य की हस्तगत कर लेते थे।^३

रुद्रसेन प्रथम

जवदामन के पश्चात् (१६६ ई) रुद्रसेन प्रथम उत्तराधिकारी हुआ। वह बद्रमिह प्रथम का पुत्र था। रुद्रसेन प्रथम के शासन पर मूलवासार का ईसवी संवत् २०० (१) का लेख और २०५ ईसवी का जखन स्तंभ लेख प्रकाश डालता है। उसकी एक चहम भी यो त्रिमका पता बैशाखी में प्राप्त एक मुहर से चलता है।^४

१ एचि० ई० १६।२३१।

२ डा० पशाराप्पाव, दि शकाल इन इंडिया, पृ० ६५।

३ " " " " ७० ६६।

४ एचि० ई० १६।२३८

५ राजो महासत्रय स्वामी बद्रमिहस्य बुदियु राजो महासत्रयस्य स्वामी रुद्रसेनस्य मगिन्या महादेव्या (१)

दामपतद के मरते ही छत्रप-कुल पर आपत्ति आयी। मारु रद्रसिंह प्रथम के गुरहा लेख में और मठीचे रद्रसन प्रथम के गुरहा लेख में उसके तथा उसके पुत्रों जीवदामन तथा छत्रदामन के नामों का उल्लेख नहीं मिलता। उनके बंशानुक्रमशिका में हमको कोई स्थान नहीं दिया गया। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए रेप्पन ने कहा कि यह संभवतः इसीलिए क्योंकि राज्य के उत्तराधिकार के रूप में वा स्यक्ति आपने दामपतद का पुत्र जीवदामन और मारु रद्रसिंह प्रथम। दोनों में राज्य के लिए भगड़ा हुआ और विजय दूसरों को प्राप्त हुई। निचेठा द्वारा अपने बंशकर्मशिका में उनके नाम न रखने का बड़ी कारण होगा।

जीवदामन और रद्रसिंह प्रथम

सिककी को देखने से पता चलता है कि दामपतद के बाद उसका पुत्र जीवदामन उत्तराधिकारी हुआ। उसके माहवधप नाम के सिककी मिले हैं, जिन पर छाप भी अंकित है। उससे कुछ ही समय तक राज्य किया गया कि उसके भाया रद्रसिंह प्रथम विद्रोह कर उठा और शासन की आपन दाम में से जगदग तल दपों तक महाधन बना रहा। बाद में १२७ ईसवी से १३२ ईसवी तक जीवदामन ही महाधन रहा। यदि इन नदरों के सिक्कों का अवलोकन किया जाय तो उनके निम्नलिखित तिथिररक सिक्के मिलेंगे—

(क) जीवदामन—महाधन सिककी १०८२ ईसवी और १३०६ ई०

(ग) रद्रसिंह प्रथम—

(घ) छत्रप सिककी ईसवी १२००-१, १०००-६१ ई

(द) महाधन ईसवी १२१-१००, १३१-५ ई

जीवदामन और रद्रसिंह प्रथम के महाधन उपाधि काल में बं-

शामपठर के मरते ही छत्रप-कुल पर आपत्ति आयी। मार्ल रूद्रसिंह प्रथम के गुणदा लेख में और मतीजे रुद्रसेन प्रथम के गङ्गा लेख में उसके तथा उसके पुत्रों जीवदामन तथा स्वदामन के नामों का उल्लेख नहीं मिलता। उनके बंशानुक्रमशिका में इनको कोई स्थान नहीं दिया गया। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए रेफन ने कहा कि यह संभवतः इसलिए क्योंकि राज्य के उत्तराधिकार के रूप में दो व्यक्ति आये शामपठर का पुत्र जीवदामन और मार्ल रूद्रसिंह प्रथम। दोनों में राज्य के लिए भगड़ा हुआ और विजय वृत्तों को प्राप्त हुई। विजेता द्वारा अपने बंशानुक्रमशिका में उनके नाम न रखने का बड़ी कारण होगा।^१

जीवदामन और रुद्रसिंह प्रथम

तिकों को देखन से पता चलता है कि शामपठर के बाद उनका पुत्र जीवदामन उत्तराधिकारी हुआ। उसके महाद्यपय नाम के तिके मिले हैं, जिन पर तिथि भी अंकित है। उसने कुछ ही समय तक राज्य किया होगा कि उनका भाचा रुद्रसिंह प्रथम विद्रोह कर उठा और शासन को अपने हाथ में ले लगभग साठ वर्षों तक महाद्यपय बना रहा। बाद में १२७ ईसवी से १६६ ईसवी तक जीवदामन ही महाद्यपय रहा। यदि इन मरुतों के तिकों का अवलीकन किया जाय तो उनके निम्नलिखित तिथिरक्त तिकक मिलेंगे—

(क) जीवदामन—महाद्यपय तिकके १७=६ ईसवी और १६७-६ ई०

(ख) रुद्रसिंह प्रथम—

(क) छत्रप तिकके ईसवी १८०-१, १८०-६१ ई०

(ख) महाद्यपय ईसवी १८१-८८, १६१-६ ई

जीवदामन और रुद्रसिंह प्रथम के महाद्यपय उपाधि काल में २१-

रुद्रसेन द्वितीय ईसवी ३०५ में चत्रप हुआ और ३१० तक वह अपने पद पर बना रहा। उसके बाद यशोधामन द्वितीय चत्रप हुआ। इसके शासन का आरंभ ईसवी ३१७ से ३३२ ई० तक आका गया है। भीमरवर्मन के कानसेरा प्रस्तर लेख को हम इसी काल में रखेंगे। यह स्वर्तत्र राजा या औरनन्द का पुत्र या १ मम्मदार ने हम लेख की तिथि को २४१ ३१६ ईसवी पढ़ा है। किन्तु कुछ विद्वानों में २०१ २०६ भी पढ़ा है। मम्मदार की गढ़ाई को ही विद्वानों में मान्यता ही है। २६५ ईसवी से ३४० ईसवी में जब शक-राज्य संकट काल में गुजर रहा था संभवतः इसी काल में भीमरवमन जो शकों का मालवा क्षेत्र में कोई अधिकारी था, स्वर्तत्र हो गया ही गया।^१ ईसवी मन ३३२ के बाद सिक्कों के द्वारा यदि फिर किसी शक नृपति को हम जान पाये हैं तो वह है ३४८ ईसवी का रुद्रसेन तृतीय। इस प्रकार १६ वर्ष का शोक में अंतर पड़ता है। इस बीच के अंतर को न सिक्के और न अभिलेख ही भर सके हैं।^२ संभवतः इसी काल में समुद्रगुप्त दिम्बिन्दव को निकला।

रुद्रसेन तृतीय के काल से महाछत्रपों को हम पुनः पाते हैं। रुद्रसेन तृतीय अपने को 'महाछत्रप' नाम से अभिहित करता है। उन्हीं के सिक्कों से उसके पिता महाछत्रप स्वामि रुद्रदामन द्वितीय का पता चलता है। रुद्रसेन तृतीय के परचात् महाछत्रप स्वामि सिंहमेन उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह रुद्रसेन तृतीय की बहन का पुत्र था। इससे पता चलता है कि (संभवतः) रुद्रसेन तृतीय अपनी पुत्रावरुषा में ही मर गया बिना किसी उत्तराधिकारी की जन्म दिए। इसीलिए उसकी बहन का पुत्र महाछत्रप बनाया गया। उसके सिक्कों से उसकी तिथि

१ डा० बहोपाप्पाव, दि शकाव इन इंडिया, पृ० ७१।

२ लक्ष्मण, दि शकाव इन इंडिया, पृ० ६०।

३ लक्ष्मण, दि शकाव इन इंडिया, पृ० ६१।

दिककों को देखने से पता चलता है कि उनके परचातु उनके मार कमरा: संयवामन (ई० २१२ ११) और वामसेन (ई० २२३-१६) उक्त उत्तराधिकारी हुए । डा० बलदेवर के कब्रनामुवार संयवामन मालवों के साथ युद्ध में मारा गया जो संभवतः अपनी स्वर्त बला चाहते थे ।^१

वामसेन २१६ ईसवी तक महाघ्नप के रूप में शासन करता था । उसके बाद उक्तका द्वितीय पुत्र यशोधामन २१८ ईसवी में महाघ्नप हुआ । इन प्रकार दो वर्ष का व्यवधान पड़ता है इस बीच के काल में रैप्लन धामीर ईरवरवत्स के शासन की स्थापित करते हैं ।^२ ईरवर वत्स अधिक दिनों तक शासन नहीं कर पाया था । २१८ ईसवी में वामसेन का द्वितीय पुत्र यशोधामन महाघ्नप हुआ । उसके बाद उसके माई विजयसेन (ई० २१९-५) और वमजवभी तृतीय (ई० २५१-५) उत्तराधिकारी हुए । वमजवभी के बाद उसके दो पुत्र विजयविह (ई० २७०-८२) और मनुवामन (ई० २८२-९५) उत्तराधिकारी हुए ।

उत्तरकालीन शक-नृपति

ईसवी २९५ से ३५० ईसवी तक हम किसी भी महाघ्नप व परियमी मारव के शक राजकुल में नहीं पाते ।^३ उत्तरकालीन शक में ब्रह्मनिष्ठ द्वितीय का नाम पहले आता है ।^४ कोई इतका स्पष्ट नहीं करता है^५ तो कोई शाही परिवार की बृहती छोटी शाखा का बृहती छोटी शाखा की ओर संकेत करता है ।^६

- १ प म्यू हिस्ट्री आफ इंडियन पीपुल, ४।१२ ।
- २ डा० बहोलाप्याय, दि शकाण इन इंडिया, पृ० १९ ।
- ३ मत्स्य
- ४ रैप्लन, कैटलाग पृ० १५१ । " पृ० ८९ ।
- ५ बृहत्, ज० रा० प० लो० १८९०, पृ० १६ ।
- ६ एगि० ई० १६।७०० .

रुद्रसेन द्वितीय ईसवी ३०५ में छत्रप हुआ और ३१० तक वह अपने पद पर बना रहा। उसके बाद यशोदागन द्वितीय छत्रप हुआ। इसके शासन का आरंभ ईसवी ३१० से ३३२ ई० तक आका गया है। भीमरवमन के कानकोरा प्रस्तर लेख की हम इसी काल में रखेंगे। वह स्वतंत्र राजा या और नन्द का पुत्र था।^१ मजूमदार ने इस लेख की तिथि का २४१ ३१६ ईसवी पढ़ा है। किन्तु कुछ विद्वानों ने २०१ २०६ भी पढ़ा है। मजूमदार की पढ़ाई को ही विद्वानों ने मान्यता दी है। २१२ ईसवी से ३४० ईसवी में जब शक-राज्य संकट काल में गुजर रहा था संभवतः इसी काल में भीमरवमन को शकों का मालवा क्षेत्र में कोई अधिकारी या, स्वतंत्र हो गया हो गया।^२ ईसवी गन ३३२ के बाद सिक्कों के द्वारा यह फिर किसी शक श्रृंखला की हम जान पाये हैं तो यह है ३४८ ईसवी का रुद्रसेन तृतीय। इस प्रकार १६ वर्ष का शीघ्र में अंतर पड़ता है। इस शीघ्र के अंतर को न सिक्क और न अभिलेख ही भर सके हैं।^३ संभवतः इसी काल में समुद्रगुप्त विजयक्रम को निकला।

रुद्रसेन तृतीय के काल से महाछत्रपों को हम पुनः पाठे हैं। रुद्रसेन तृतीय अपने को 'महाछत्रप' नाम से अभिहित करता है। उन्हीं सिक्कों से उसके पिता महाछत्रप स्वामि रुद्रचामम द्वितीय का पता चलता है। रुद्रसेन तृतीय के पर्याप्त महाछत्रप स्वामि विहमेन उक्तका उत्तराधिकारी हुआ। यह रुद्रसेन तृतीय की बहन का पुत्र था। इससे पता चलता है कि (संभवतः) रुद्रसेन तृतीय अपनी मुवाकफ़्या में ही मर गया बिना किसी उत्तराधिकारी की जन्म दिए। इसीलिए उसकी बहन का पुत्र महाछत्रप बनाया गया। उसके सिक्कों से उसकी तिथि

१ डा० चट्टोपाध्याय, दि शकात् इन इंडिया, पृ ७१।

२ लक्ष्मण, दि शकात् इन इंडिया, पृ० ६०।

३ लक्ष्मण, दि शकात् इन इंडिया, पृ० ६१।

१८२-८४ निर्धारित होती है।

सिहसेन के बाद उसका पुत्र बद्रसेन चतुर्थ महाक्षत्रप हुआ। उसके सिक्कों पर निम्नलिखित लेख आकृत है—

राज महाक्षत्रप स्वामी-सिहसेनपुत्र

राज महाक्षत्रप स्वामी बद्रसेन ॥

इसके बाद सत्यसिंह हुआ। यह सिहसेन का भाई हो भी सकता है।^१ महाक्षत्रप स्वामी बद्रसिंह तृतीय के काल के बाद शक क्षत्रप अथवा महाक्षत्रपों का काल समाप्त हो जाता है। इसके सिक्कों पर ११०-८ १८८ ईस्वी तिथि अंकित है। यह काल गुप्त राजाओं के विभिन्नय की थी। संभव है अंद्रगुप्त विक्रमादित्य के साथ युद्ध में यह मारा गया हो। इसके सिक्कों पर निम्नलिखित शब्द मिलता है—

राज महाक्षत्रप स्वामी-सत्यसिंह पुत्र

राज महाक्षत्रप स्वामी-बद्रसेन ॥

शक महाक्षत्रपों का पतन

किता राजकुल के पतन में मुख्य कारण अयोग्य और निबल शासक होते हैं। विदेशी आक्रमण भी उसमें सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों के भी राजकुल शिंकार हान है।

शक जित रास्ते से घायल थे, तक्षशिला के प्रदेश में यह विदेशियों के आक्रमण के मार्ग में पड़ता था। शकों के बाद पहला आये। गोंडावर्नीज उनका एकियाली नेता था। शिप और तक्षशिला के शक-कुल का उतने पतन किया। इसका पता गुडुधर के एक प्रकार के सिक्के से चलता है जिनमें एक ओर गुडुधर का नाम और दूसरी ओर इंदुवमा का नाम है।^२ अरवमा पहले अर द्वितीय का करवासी नाम था। इस प्रकार गुडुधर के आक्रमण से शिप और तक्षशिला का शक राजकुल पतन हुआ।

१ रेणु, केटनाम, पृ० १४६।

२ प० मू० के० १११०।

मथुरा के शक भी अधिक दिनों तक अपनी स्वतंत्रता कायम न रख सके। उनको कनिष्क महान की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।^१ महाराष्ट्र के चहराज भी अपनी स्वतंत्रता कायम न रख सके। यद्यपि नहपान ने सातबाहनों को पराजित किया और उनके मूमाग पर शासन किया तथापि वह अधिक दिनों तक ऐसा न कर सका। गौतमीपुत्र भीशातकर्षि ने अपने बंश के सुभ गौरव को पुनरस्थापित किया और विदेर्या आक्रमणकारी शकों को अपनी मूमि से निवारित कर दिया। शक-यवन-पहलव-चहराजों का नाश करके गौतमीपुत्र ने अपने बंश की मान मर्यादा को बहाल किया, इतना विवरण नातिक्रम गुहामिलेल में मिलता है।^२ इस प्रकार सातबाहने शक्ति के कारण चहराजों का अंत हुआ।

इसी प्रकार उज्जयिनी और काठियावाड़ के महाजनरों का अंत हुआ। महाजनर रुद्रवामन प्रथम के परचाठ महाजनर कुल में फिर एका कोई शासक बन न सका या अपनी मार्गमीम तथा का स्थापित रख सका। निबल हाथों ने शक्ति को ली लिया। परिशामस्वरूप गजराज्य एवं छोटे-छोटे राज्य या अपनी स्वतंत्रता का पाना चाहते थे विद्रोह कर उठे और कालान्तर में शक्तिशाली भी हो गए। महाजनर शासक यवनों के हबाब के कारण पत्राव से राजस्थान बसा गया था और वहाँ एकबार शकों ने हार कर फिर उन्हें उजाड़ने में उठने सातबाहनों से सहयोग किया।^३ बष्णि, सिधि, औमुम्बर आदि गणों के शिकर इती युग के पाय जात हैं। सदा उज्जयिनी इतिहास शोधकों का है। उनके पुराने शिकके एक किरम के हैं। बार के शिककों पर 'हि' और 'भि' के निम्न ही शिकसे जान पड़ता है कि वे बार

१ एरि० इ० पृ० २१७३ ।

२ गतिपदमानमदनत शकयवनपहलवनिस्वरन...सत्तराजपद निगमेतकरत सातबाहने कुलमठनदि बानन करत.... ।

३ भा० इ० म० पृ० ५५ ।

उलझकर घोवार बह गय फिर स्थापित हुआ।^१ दूसरी शताब्दी ईसवी के मध्य में कुराष्ट्र का शक महासम्राट् रुद्रदामन अग्निमान से मिलता है कि किली के घागे न मुकने वाले शीशियों को उतने उलझा जाता परन्तु रुद्रदामन के बाद शीशियों को हम फिर स्थापित हुआ पाते है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काल में गण्ड शकियाली हो गय वे और उनको जब भी अवसर मिलता लड़ाई छेड़ देते थे।

संभवतः जो कि रुद्रसेन प्रथम (ईसवी २००-२१) का मारि या डा० अस्तेकर के अनुसार इसी तरह की एक लड़ाई में मालवों द्वारा मारा गया होगा^२ इस काल तक देश में बहुत सी शक्तिर्ण उठ गयीं हुई थीं—कैकटिक बाकाटिक मारशिव-नाग आदि। इन सबके सामूहिक आक्रमणों-प्रत्याक्रमणों से विदेही शकों की शक्ति में ह्रास होता गया। उनको मध्यदेश, महाराष्ट्र छोड़ना पडा। डा० अस्तेकर के शब्दों में बाकाटिकों ने जो कि २५५ ईसवी के लगभग हुए शक-सम्राटों से मालवा को छीन लिया होगा। अपने समर्पण में वे परिश्रमी सम्राटों के ताब के तिककों का सहारा लेते हैं, जो कि मालवा में २४० ईसवी तक चलता रहा, और कहते हैं कि बाकाटिकों की शक्ति में घात ही मालवा से उनक तिककों का प्रचलन प्रथम हो गया^३ किन्तु डा० बहोराप्पाय ने उस काल में भी शकों का अविश्व मालवा पर माना है।^४ ऐसी परिस्थिति में यह कहना कि बाकाटिकों के कारण शकों को मालवा से हटना पडा होगा समीचीन नहीं जान पडता।

त्रिभुज समय भारत में ये शक्तिर्ण शकों की शक्ति को नष्ट करने में लगी हुई थी ईरान में उर्ती समय (२१६ ई०) पार्षव के प्रधान

१ अ० वि० उ० रि० सी० १५११-१२।

२ म्यू. रि० ई० पी ६५२।

३ म्यू. रि० ई० सी० ६५४।

४ वि० शकाल इन इंडिया, पृ० ६१।

पर 'सातानी' राज्य की स्थापना हुई। इस राज्य का संस्थापक अर्ध-शीर था। इसने विद्रोह करके ईरानी साम्राज्य के कई प्रान्त ले लिए। सम्राट अशोक ने उसे दबाना चाहा किन्तु सफलता न मिली। वह युद्ध में मारा गया। अर्ध-शीर ने सारे ईरान को जीतकर शाहन-शाहे ईरान उपाधि को धारण किया। उसने लिला भी है कि अरसकी साम्राज्य के दक्षिणमी और पश्चिमी प्रान्तों को जीतने के बाद अर्ध-शीर ने पूरब की ओर बढ़कर सिन्धुतान को जीता, फिर गुरगान, अररशाह, मरु और बलख जीतते हुए स्वारिष्य पर बढ़ाई की और सुरासन की अंतिम सीमा तक की अभियान किया। उसने यह भी सिन्हा है कि उसके इन प्रदेशों को जीत लेने पर कुशानशाह तथा और गुरान मकरान के राजाओं ने हत भेजकर उसका अभियान स्वीकार किया।

अर्ध-शीर समूचे सिन्धुतान को जीत म लका था। उसके अधूरे काय की बरदान द्वितीय ने पूरा किया और सारा लकस्तान जीतकर अपने बेटे को सजानशाह नियत किया।^१ यही भारत की वह अनुसिन्धुत सातानी बढ़ाई है जिसकी विसेंट रिमप ने अगन ग्रन्थ में कल्पना की थी।^२ इस आधार पर हबकीट्ट यह परियाम निकालत है कि "२८४ ईसवी में बरदान द्वितीय के विजयों के बाद सातानी साम्राज्य में पूरब के ये देश थे—सारा सुरासन—जिसमें शायब स्वारिष्य और मुग़ मी थे लकस्तान विस्तृततम अर्ध में, मकरान और तुतान सहित सिन्धु नद का मध्य कांठा और मुहाना, कच्छ, काठियावाड़, मालवा और इन देशों के पीछे का पहाड़ी प्रदेश (= राजस्थान)।"^३

२६३ ईसवी में बरदान द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका बेटा

१ मे० आर्से० लॉरे ह० न० ३८।

२ हबकीट्ट, पाहकुली, १६३४, पृ० ४२।

३ वही पृ० ४३।

उसङ्ककर दोबार यह गरा फिर स्थापित हुआ।^१ वृत्ती शताब्दी ईसवी के मध्य में मुराष्ट्र का शक महासम्राट् रुद्रवामन अमिमान से मिलता है कि किसी के आगे न झुकने वाले यौधेयों को उसमें उन्नाङ्क डाला परन्तु रुद्रवामन के बाद यौधेयों को हम फिर स्थापित हुआ पाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काल में गरा शक्तिशाली हो गए थे और उनकी जब भी अवसर मिलता लड़ाई सेङ्क देते थे।

संभवामन जो कि रुद्रसेन प्रथम (ईसवी २००-२१) का भाई या डा० अस्तकर के अनुसार इसी तरह की एक लड़ाई में मालवा द्वारा मारा गया होगा^२ इस काल तक देश में बहुत सी शक्तिशाली उठ लड़ी हुई थी—बैकूटक बाकाटक भारशिव-नाम आदि। इन सबके सामूहिक आक्रमणों-प्रत्याक्रमणों से विदेशी शक्तों की शक्ति में ह्रास होता गया। उनको मध्यदेश महासम्राट् लीकना पड़ा। डा० अस्तकर के शब्दों में बाकाटकों ने जो कि २५५ ईसवी के लगभग हुए शक-सम्राट् से मालवा को लीन लिया होगा। अपने समय में वे परिष्करी सभ्यता के तारे के तिककों का सहारा लेते हैं, जो कि मालवा में २५० ईसवी तक चलता रहा, और कहते हैं कि बाकाटकों के शक्ति में आठ ही मालवा से उनक तिककों का प्रचलन लगभग हो गया^३ किन्तु डा० अष्टावाष्वाय ने उस काल में भी शक्तों का अधिपत्य मालवा पर माना है।^४ ऐसी परिस्थिति में यह कहना कि बाकाटकों के कारण शक्तों का मानवा स इतना पड़ा होमा समीचीन नहीं जान पड़ता।

त्रिभुवनेय भारत में ये शक्तिशाली शक्तों की शक्ति को मध्य करने में लगी हुई थी ईसवी में उसी समय (२२६ ई०) पार्षव के रथान

१ ज० वि० उ० रि० ली १५६१-६२।

२ म्यू हि० इ० पी० ६१५२।

३ म्यू हि० इ० पी० ६१५४।

४ रि० शकात इन इंडिया, पृ० ६६।

पर 'सातवानी' राज्य की स्थापना हुई। इस राज्य का संस्थापक अब शरि बा। इसने बिन्दोह करके ईरानी साम्राज्य के कई प्रान्त ले लिए। उम्राट आलवान पंचम ने उसे बसाना चाहा किन्तु सफलता न मिली। वह युद्ध में मारा गया। अर्धशरीर ने सारे ईरान को जीतकर शाहन-शाहे ईरान उपाधि को धारण किया। तबारी ने लिखा भी है कि अरसकी साम्राज्य के बहिष्मनी और परिवर्मी प्रांतों को जीतने के बाद अर्धशरीर ने पूरब को छोड़ बड़कर सिबिस्तान को जीता, फिर गुरमान, अपरशाह, मय और बलख जीतते हुए खारिश्म पर बदार्ई की और सुराहन की अंतिम सीमा तक को आधीन किया। उन्होंने यह भी लिखा है कि उसके इन प्रदेशों को जीत लेने पर कुशानशाह तथा और नूरान मकरान के राजाओं में बृत्त भेजकर उठका अधिपत्य स्वीकार किया।

अर्धशरीर सम्पूर्ण सिबिस्तान का जीत न सका था। उसके अधूरे काय को बखान द्वितीय ने पूरा किया और सारा लफ्ग्यान जीतकर अपने बेटे को सखानशाह नियत किया।^१ यही भारत की वह अनुस्तिम्बित सातवानी बदार्ई है जिसकी बिसेंट स्मिथ ने अपने ग्रन्थ में कल्पना की थी।^२ इस आधार पर इजप्सीड मह परिणाम निकालत है कि "२८४ ईसवी में बखान द्वितीय के विजयों के बाद सातवानी साम्राज्य में पूरब के वे देश थे—जारा लौरावन—जिसमें चायद खारिश्म और मुग़ मी थे लफ्ग्यान विस्तृततम अय में, मकरान और नूरान सहित सिपुनह का मध्य बांडा और कुहाना, करद, काडियाबाक, मालवा और इन देशों के पीछे का पहाड़ी प्रदेश (= राजस्थान)।"^३

२६३ ईसवी में बखान द्वितीय की मृत्यु के बाद उठका बेटा

१ ये० आर्से० लवे ई० न० ३८।

२ इजप्सीड, पाइकुली, १६२४, पृ० ४९।

३ वही पृ० ४३।

बरहान तृतीय जिसे ६ वर्ष पूर्व 'लकानशाह' नियत किया गया था, 'शाहनशाह' बना। वह कुछ माह ही राज्य कर पाया था कि उसका दादा का छोटा भाई भरसे उसके मुकाबले को लड़ा हुआ। इस युद्ध में बरहान तृतीय मारा गया। इसी नरका में पाहकुली का मंदिर बनवाया और उसमें अपनी मशरिफ खदान पर लुखवापी जिले में इस युद्ध का वृत्त है।

विद्वानों में सातानियों द्वारा पश्चिमी भारत की विजय विवाद का विषय बना हुआ है। डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ने पाहकुली अभिलेख में अर्धति क राजा की पत्नी का उल्लेख करते हुए कहा है—“पश्चिमी भारत पर सातानी आधिपत्य विवादास्पद है।”^१ डा० अस्तोकर भी प्रो० हज्जरीट को इन स्पष्टता का लक्षण करते हैं, इस आधार पर कि उन प्रांतों में सातानी सिकके नहीं मिलते।^२

किसी राज्य के पतन के कारण में बाहरी आक्रमण भी एक कारण होता है। शकों के पतन के समय में बाहरी आक्रमण की समाप्ति सबसे प्रथम प्रो० रेण्डन ने स्पष्ट की था। १६०० ईसवी में ब्रिटिश भूविज्ञान के छात्र और खनन निको की सूची प्रकाशित करते हुए रेण्डन ने लिखा था—पहले महाद्वार का घोर फिर महाद्वार और खनन दोनों का म रहना विपत्ति काल का सूचित करता है। समाप्ति यह है कि पश्चिमी खननों के हलाकों पर कोई बाहरी आक्रमण हुआ था, किन्तु इन बाहरी पक्षों का ठीक स्पष्ट प्रमाण मिलना बिलकुल संदिग्ध है, और जब तक हम इन युग के पड़ोसी राज्यों का इतिहास न जानें तब तक यह संदिग्ध होगा।^३ संभवतः एनीयस डा०

१ रि हिस्ट्री ऑफ इंडिया रि इंडियन पापुल, रि क्लेमिडल एज, १० २२।

२ बाकारक-गुप्त-एज, १० २०-२६।

३ रेण्डन और खनन मशरिफ १० १०३।

डा० रायचौधरी ने महासत्रपी और सत्रपी का अंत छाछानी हस्तक्षेप क कारण हुआ होगा मतलब था । छाछानी का हस्तक्षेप क्योंकि यह एक शक्तिशाली राज्य था ।

इस प्रकार अतिरिक्त एक बाह्य शक्तियाँ के ह्रास के कारण ११२ ईसवी में परिष्कमी सत्रप राज्य का अंत हो गया था, पर लगभग १४४ ईसवी में फिर एक महासत्रप उठ खड़ा हुआ था, जिसके बेटे स्वामी रुद्रसेन तृतीय ने १३८ ईसवी से सिकक प्रभान शुरू किये ।

सत्रप शिखों की जो डेरियाँ मिली हैं उनसे सिद्ध होता है कि रुद्रसेन के पार बप शासन करने के बाद १५१ ईसवी में इसका राज्य में एकाएक क्रांति हुई जिससे दल-बाह्य वर्ष तक इसका सिद्धा प्रभाना रुद्ध रहा, पर उसके बाद फिर चलने लगा ।^१ खूनागढ़ के पास उपरकोट में सत्रप शिखों की एक डेरी गठ शताब्दी के अंत में मिली थी । उस डेरी में रुद्रसेन तृतीय के १ शिखक से पर से सत्र २०० से २०१ शकम्ब (१४८—१५१) के ही थे । उसके बाद का कोई नहीं । उस डेरी की पहले-पहल परीक्षा करने वाले पादरो स्क्रीट ने १८६६ इत्या में इस बारे में लिखा था कि "इन शिखों में से बहुत से, विशेष कर निम्नले बरों वाले, विशुद्ध ताजे रक्तवाह में निकले हुए और अनपिठे हैं । इन कारणों से यह परिष्कम निकासना उचित होगा कि यह डेरी रुद्रसेन के राज्य के पहले अंश के अंत में गाड़ी गयी थी और संभवत इस बन का गाड़ने का कारण यह था कि उस समय राज्य क्रांति हुई थी जिससे जान-माल सुरक्षित न थे ।"

रकोट के यह लिखन के १२ वर्ष बाद सन १६११ में पाठशाहा के सर्वाश्रिया गाँव से २१६१ सत्रप शिखों की डेरी मिली । यह भा ठीक २०१ शकम्ब में गाड़ी गयी होगी क्योंकि उसके बाद का कोई शिखा उठने नहीं था । और उसमें भी रुद्रसेन के ४४ शिखक पैदा हो हालत में पाये गये । इससे यह परिष्कम निकला कि १५१ ईसवी में

बरहान तृतीय जिसे ६ वर्ष पूर्व 'ठकानघाह' नियत किया गया था, 'घाहनघाह' बना। वह कुछ माह ही राज्य कर गया था कि उसके दादा का छोटा भाई नरसे उसके मुकाबले को लड़ा हुआ। इस युद्ध में बरहान तृतीय मारा गया। इसी नरसे ने पाइकुली का भंडार बनवाया और उसमें अपनी प्रशस्ति चहान पर मुद्रवापी जिधमें इस मुद्र का उ्त्पात है।

विद्वानों में साखानियों द्वारा परिचामी भारत की विजय विवाह का विषय बना हुआ है। डा. रामशंकर मधुमदार ने पाइकुली अभिलेख में अर्बति के राजा की चर्चा का उल्लेख करते हुए कहा है—“परिचामी भारत पर खालानी आधिपत्य विवादास्पद है।”^१ डा. अस्तेकर भी प्रो० हज्जोहट को इस स्थापना का खंडन करते हैं, इस आधार पर कि उन प्रांतों में खालानी चिह्न नहीं मिलते।^२

फिती राज्य के पतन के कारण में बाहरी आक्रमण भी एक कारण होता है। शकों के पतन के संबंध में बाहरी आक्रमण का समावना सबसे प्रथम प्रो० रेव्ठन ने व्यक्त की था। १६०० ईसवी में ब्रिटिश म्यूजियम के अध्यक्ष और अल्प चिह्नों की खोज प्रकाशित करते हुए रेव्ठन ने लिखा था—पहले महासत्र का और फिर महासत्र और सत्र होने का न रहना विपत्ति-काल का सूचित करता है। समावना यह है कि परिचामी सत्रों के इलाकों पर कोई बाहरी आक्रमण हुआ था, किन्तु इस बाहरी चढ़ाई का ठाक स्वरूप किस हालत विशुल संदिग्ध है, और जब तक हम इस युग के पड़ोसी राज्यों का इतिहास न जान पाएँ तब तक यह संदिग्ध हीमा।^३ मंगलतः हगोसिए डा०

१ दि हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ दि इंडियन पापुल, दि क्वामिकल एज, पृ० ५२।

२ साकाय-गुप्त-युग, पृ० ५०-५६।

३ रेव्ठन, कैरलाय, मूमिका, पृ० १५२।

डा० राजचौधरी ने महाश्वषपी और छत्रपी का अंत सातानी हस्तक्षेप के कारण हुआ होगा बतलाया था। सातानी का इश्टलिए क्योंकि यह एक शक्तिशाली राज्य था।

इस प्रकार आतिरिक्त एवं बाह्य शक्तियों के दबाव के कारण १३२ ईसवी में परिचरमी छत्रप राज्य का अंत हो गया था, पर लगभग १४४ ईसवी में फिर एक महाद्वज्य उठ सका हुआ था, जिसके बेटे स्वामी चद्रसेन तृतीय ने १४० ईसवी से तिरुक्क पल्लामे शुरु किया।

छत्रप शिकों को जो डेरियाँ मिली हैं उनसे सिद्ध होता है कि चद्रसेन के पार वष शासन करने के बाद १५१ ईसवी में उसके राज्य में एकाएक आति हुई जिससे चस-वारह वर्ष तक इसका शिक पल्लामे रुन्द रहा, पर उसके बाद फिर चलने लगा।^१ पूनाम्पड के पास ऊपरकाट में छत्रप शिकों की एक दंरा गत शताब्दी के अंत में मिली थी। उस डेरी में चद्रसेन तृतीय के ६० शिकक व पर वे सब २०० से २०१ शकाब्द (१४०—१५१) के ही थे। उसके बाद का कार नहीं। उस डेरी की पहल-पहल परीक्षा करने वाले पादरो स्कीट ने १८२६ ईसवी में इस बार में लिखा था कि “इन शिकों में से बहुत से, बिछोर कर निहले बगों वाले, बिहकुल तात्रे टकवाल म निहले हुए और धनपिसे हैं। इन कारणों से यह परिश्राम निकालना उचित होगा कि यह दंरी चद्रमन के राज्य के पहल अंश के अंत में गाड़ी गयी थी और संभवत इस धन को यादने का कारण यह था कि उस समय राज्य आति हुई थी जिससे जान-माल सुरक्षित न था।”

रकार्ड के यह लिखने के १२ वर्ष बाद तन १६११ में दांतवाडा के सर्वाधिया गाँव से २१६१ छत्रप शिकों की डेरी मिली। यह भा ठीक १०१ शकाब्द में गाड़ी गयी होगी क्योंकि उसके बाद का कोई सिद्धा उल्लेख नहीं था। और उसमें भी चद्रमन के ४४ शिकके पैठा ही हालत में पाये गये। इससे यह परिश्राम निकला कि १५१ ईसवी में

ब्रसेन के समूचे राज्य में एक साथ और एकाएक बहारात हुआ मानो कोई बाहरी आक्रांता बिकली की तरह गिरा ही जिससे सभी लोग अपना मन द्विपान का मल कर रहे थे ।^१

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रसेन द्वारा दबा दिया गया महाक्षत्रपबंध उसकी मृत्यु होते ही उठ सका हुआ और रात काय तक जारी रहा जब तक कि समुद्रगुप्त बाकायक चापाक्य से निपटन में लागे रहा । बाकायकों से लुट्टी पाते ही, आर्षावर्त के राज्यों की शमन करने और आठविक राज्यों की सेवक बनाने के बाद समुद्रगुप्त ने एकाएक गुजरात-आठियाबाड़ पर दूटकर इस नए राज्य का पिटा दिया होगा । उसके पूर्ववर्ती साम्राज्य द्वारा जो राज्य दबा दिये गये और उठ साम्राज्य के विपिन होते ही फिर उठ सका हुआ था, वह एक प्रकार का बिद्रोही या जिसे दबाना नए सम्राट का कर्तव्य था ।^२

३८२ ईसवी के बाद फिर एक नया क्षत्रप बंध उठा । प्रकटता समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद रामगुप्त के समय की हार और गहमह में उसे उठने का अवसर मिला । रामगुप्त के काल में किसी शक मपति न उठ पर आक्रमण किया और मुषवेही को उससे मंगा था—येवा बर्मान विशालदत्त के देवी-श्वरगुप्तम् नाटक में मिलावा है ।^३ उसके बाद उठ पटना का उल्लेख बाणमह ने अपने हर्षचरित में महा राष्ट्र कर्षाटक के राजा अमोपबर्मा ने अपने लंबान अमिलेस में, कवि राहोबर से अपने 'काव्यमार्मावा, में तथा राजा मीय ने 'देवीश्वर गुप्तम' के आचार पर अपने प्रथम गुंवारप्रकाश में किया है । वाँ हमारे साहित्य में पौबही से आठारहवीं शताब्दी तक बराबर उठ पटना का उल्लेख पाया जाता है ।^४ तो भी विद्वानों में इसकी ऐतिहासिकता

१ मा० इ० मी० पृ० ३३८ ।

२ अ० ब० हि० यू० ३।२४८-२९९ ।

३ अ० वि० उ० रि० सी० १८।१० ।

४ मा० इ० मी० पृ० ७९ ।

पर संदिह किया जाता है क्योंकि समसामयिक अभिलेखों में इसका उल्लेख नहीं है।

प्रायुनिक विद्वानों में इस खान का भीमसेन श्री चंद्रपर शर्मा गुलेरी ने किया^१ पर रामगुप्त और इस पटना की ऐतिहासिकता की परसे पहले घोषणा भी रास्तालदास बनर्जी ने की।^२ रास्तालदास क बाद डा० अस्तोकर ने इसका कुछ प्रमाणों का उपस्थित किया।^३

अब प्रश्न उठता है वेदीचंद्रगुप्तम के इस कथानक का प्रारंभ किस स्थान पर हुआ। अर्थात् चंद्रगुप्त द्वितीय शक नपति को लघुदेश में किस जगह इत्या करता है। कवि राजशेखर उस पटना को तस्मि मेष हिमालये—उसी हिमालय में—दुर्ग बतलाता है। उस पय की और पहले पहल गुलेरीजी ने ध्यान दिलाया था और फिर डा० अस्त कर ने। अतः इतन भी स्पष्ट कहता है कि यह पटना किसी पहाड़ी जग में दुर्ग।^४ श्री जयचंद्र विद्यालंकार ने इस तथ्य का ध्यान में रखते हुए इस पटना के सूत्रधार की खोज की है। उन्होंने अपनी है—“रास्तालदास के सामने यह पय न था तो भी उन्होंने अपनी सहज सूझ से यह पहचान लिया था कि चंद्रगुप्त के बड़े को इस प्रकार लादित करने वाला राजा मुराष्ट्र का गुप्तरक्षक नहीं हा सकता काबुल का कनिष्कवंशज शाहानुशाहि होना चाहिए। डा अस्तोकर के सामने यह पय था, तो भी वे शकाभिषिक्ति की खोज में मालवा के पठार और काठियावाड़ के जंगलों में भटकते रहे। तस्मि- मेष हिमालये को और उनका ध्यान नहीं गया।^५

गुप्तों के प्रथान में शकों को इस प्रकार देश छोड़ना पड़ा और

१ मा० प्र० प १६७० पृ० २३४ ३५।

२ एच आठ इंपीरियल गुप्तान।

३ ज० वि उ० रि० गा० १७२२३।

४ मा० इ० मी० पृ० ७६।

५ मा० प्र० प० १६६५, पृ० १६।

प्रथम स्तंभ के समुद्रगुप्त के प्रशस्ति लेख ने उन्हें काबुली सीमा-प्रांत पर निर्दिष्ट किया। यह मान्य हो जाने पर कि रामगुप्त बाली वटना परिवर्षी हिमालय में हुई और चंद्रगुप्त ने वहाँ काबुल-बलख के शक राजा को हराया था, मेहरौली वाले राजा चंद्र की चंद्रगुप्त से अनन्यता प्रकट हो जाती है क्योंकि राजा चंद्र के काबुल होते हुए बलख तक जीतने की बात पक्की है।^१ मेहरौली वाली शाह पहले पञ्जाब की एक पहाड़ी पर लड़ी थी, इससे उसे और पुष्टि मिलती है।^२ श्री अयचंद्र विशालकार इसी आधार पर रामगुप्त की पतिव्रतिका का अमिलेनीय प्रमाण भी दे रहे हैं। उनके अनुसार चंद्र और चंद्रगुप्त की अनन्यता प्रकट हो जाने पर यह आक्षेप भी नहीं टिकता कि वह वटना का समसामयिक अमिलेनीयों में उल्लेख मिलता है।^३

इस प्रकार शक नपतियों की अयोग्यता निर्बलता, अनेक छोटे छोटे राज्यों की रक्षणा, बाह्य आक्रमणों आदि के कारण तथा केन्द्रियकरण की पुनः प्रवृत्ति के कारण एक अपनी तथा को कायम करने में असफल रहे तथा भारतीय समाज में कुल-मिश्रण मष्ट हो गए।



१. ए. ए. ई. २४।१९७ पृ. ६० दि. २१।२३।

२. या. ए. मा. पृ. ७७।

३. यही।

राजनीतिक विचार और शासन-पद्धति

एक जहाँ गए वहाँ की संस्कृति से प्रभावित हुए। वे स्वानाब-रोठ थे। स्वानाबरोठों का न कोई धर्म होता है और न दर्शन। पूर्वी ईरान में रहे—ईरानी संस्कृति से प्रभावित हुए। उन्हीं तरह, भारत में भारतीय संस्कृति की ज्ञाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। भारतीय राज्यों पर भारतीय अर्थविम्बकों (राजनीति विचारकों) का स्पष्ट प्रभाव दृश्यता है। उक्त काल का सबसे बौद्ध और प्रभावशाली शासक अशोक 'अर्थविद्या' में पारंगत था—मंत्री बहो हो सकता था जिसमें अर्थविद्ये की प्रधानता होती थी, अर्थियों और उच्चाधिकारियों में भेदही विभाजन था, प्रजा की रिकति की देखरेख हुए 'कर' का निवारण था, पौर और खानदान के निवासियों के अन्वेष की भावना विद्यमान थी—जमी तो वह तत्पदस्थितेन, धमानुगमन, बयाबद्याप्रैबलिशुस्तक भागे अर्थविद्या मन्त्राधिकारिणा आदि शब्दावलियों का प्रयोग करता है।^१

(१) राज्य का स्वरूप :

राज्य का स्वरूप राजतंत्रप्रभुत्व था। राज्य का मुनिसवा राजा होता था। राज्य की देवी-उत्पत्ति-विद्वान्त न थी। वह इन्द्रराजनामे पर आधारित था। राज्य का निवाचन राजा था। ईसावी दूसरी शताब्दी में अशोक ने अपने शिलालेख में लिखा था—“मैं राजतंत्र के लिए एक बख्तों द्वारा निवाचित हुआ हूँ।”^२ इस प्रकार भारतीय

१ एरि० ई० ८४९।

२ वही।

३ एक बख्तोंमिगम्य राज्याय पदित्ते वृत्तन।

निर्वाचित राजवंशका सिद्धान्ततः इस काल में भी मान्य थी, किन्तु यहाँ इसका उपयोग राजतन्त्र की दृष्टि से किया गया है। शासक विदेशी था, अतः इस प्रकार की धीरवा की राजनीतिक आवश्यकता थी। जनता की शान्त एवं संतुष्ट रखने के लिए इन हथकण्डों की अपेक्षा होती थी।

राजा के निवाचन का यह सिद्धान्त बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। वैदिक काल में भी इसका उस्तूल मिलता है। वैदिक काल के उपरान्त भी समय-समय पर राजाओं का निर्वाचन हुआ करता था। मेगास्थनीज^१ ने लिखा है कि “स्वयंभू बुद्ध आर कतु के उपरान्त राज्याधीश प्रायः ध्यानुक्रमिक हो गया था, परन्तु “जब किसी राजवंश में कोई उत्तराधिकारी नहीं रह जाता था, तब भारत वासी राजा का निर्वाचन शक्ति की शोभता देख कर किया करते थे।” इससे विदित होता है कि राजा के निर्वाचन का सिद्धान्त एक राष्ट्रीय सिद्धान्त था, जो बहुत अधिक प्रचलित था।

(२) प्रतिज्ञा का महत्त्व

निर्वाचन-सिद्धान्त में निर्वाचित को निर्वाचकों के समक्ष प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। एकबार यह प्रतिज्ञा कर लेने पर फिर उसे बिरमूत करना, अर्थात् नहीं तो, कठिन होता था। यदि हिन्दू राजा अपनी राज्याभिषेक वाली प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सकता था, तो वह अस्व प्रतिज्ञा कहा जाता था। वैसी दशा में उसे राजसिंहासन पर बने रहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं रह जाता था। राज्याभिषेक के समय की प्रतिज्ञा कौटीय सम आदायगी ही नहीं होती थी। इसका प्रमाण इसीमें मिल जाता है कि राजा भोग समय यज्ञमें पर बंध गव स कहा करत य कि यह अपनी प्रतिज्ञा पर हड़ रहे और अस्व प्रतिज्ञा नहीं हुए। एक नृपति

१ अथर्ववेद ६।१०३-८८ अथर्ववेद १०।१०१।

२ मैकडिडल, मेगास्थनीज एण्ड एरिकन, पृ० २००।

महाद्वय ब्रह्मामन ने अपने शिष्यालेख में बड़े गर्व से लिखा था—मैं तथा उत्कृष्टतम रहा और मैंने कभी कोई ऐसा कर नहीं लगाया जो धर्म-विरोध हो। प्रतिज्ञा-सुबहों को राजपद पर धर्म पिकठ करने वाले प्रजा के प्रतिनिधि राजम्भुत भी कर सकते थे। महाभारत में कृष्णाचार्य राजा वेश की राजम्भुति और प्राणदण्ड का यहो कारण बतलाया गया है कि वह विचरि हा गया था। मौर्य राजा ब्रह्मय सेनापति पुष्पमित्र शुंग द्वारा इसीलिए मार डाला गया था क्योंकि वह प्रतिज्ञा-सुबह हा गया था।

यद्यपि निर्वाचन-विधान का अर्थ बलक बंशानुक्रमिक हो गया था, फिर भी वह मूलतः विस्मृत नहीं किया गया था कि प्रिन्स्य सुपर्वत निर्वाचनमूलक है। विद्वान्तरा राजा तथा एक निर्वाचित अधिकारी हुआ करता था, और वह ठन्ही शर्तों क अनुसार अपने उस अधिकार का मीग करता था जिन्हें वह राज्याभियेक के समय उपय करते हुए स्वीकृत करता था। राजनातिवों का यह प्रय संघर्षी विद्वान्तरा तथा नाम्ब रहता था और राजा तथा प्रजा दोनों उसके अनुसार कार्य करते थे।

राजा क हाथ में राजपद बान बिल उद्देश्य से किया जाता था उतकी इस प्रकार ध्यातवा की गयी है—तुम्हे यह राज्य हृदि के लिए, धेम के लिए, संपन्नता के लिए, पीपय वा बपन के लिए दिया जाता है—राजा कहता है कि वह इसका पालन करेगा। इसका पालन राजा का सर्वमवान कर्तव्य होता था, जो राजा अपनी राज्याभियेक वाली देवी प्रतिष्ठा को पूष करती में दुबलता दिखता था, उतकी क्या गत होती थी वह हम ऊपर देग ही कुके हैं। प्रतिज्ञा का ही इतना महत्त्व था कि ब्रह्मामन ने अपने जूनमाद शिष्यालेख में लिखा था—उत्कृष्टतम धर्म्य...अपदवित्ता कर-विष्टि-प्रपुत्र

१ उत्कृष्टतम धर्म्य, असीडवित्ता कर-विष्टि-प्रपुत्र-कियाभिः

निम्नाभिः पौरव्याजपर्यन्तम्—।

इस प्रतिज्ञा की भीमांठा एवं विवेचना करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

(१) राजा के हाथ में राज्य सौंपा जाता है और वह कहता है कि वह इसका पालन वा तन्त्रि करेगा और इसका पालन राजा का कर्त्तव्यमान कर्त्तव्य होता था ।

(२) जो देश उसे पालन करने के लिए दिया जाता है उसे वह स्वयं परमेश्वर से कुछ भी कम नहीं समझता जिसका अभिप्राय यह है कि वह बहुत ही शुद्ध हृदय से आश्चर्यपूर्वक और दरता-दरता शासन करेगा । वह संबंध उन संबंधों से बहुत भिन्न है जिसमें राजा सौंप प्रसा का पालन उन्हें अपना पुत्र समझकर, प्रजापति के रूप में करते हैं अथवा यह समझकर करते हैं कि इस बात का उन्हें ईश्वर प्रदत्त अधिकार है; अथवा कबल अपनी शक्ति और वैभव के बला पर करते हैं ।

(३) यह एक मिश्रित सिद्धान्त है कि राजा स्वेष्याचारी नहीं हो सकता । वह धर्म से बद्ध होता है और धर्म के शासन के सर्वांग साया जाता है । जागे चलकर राजनीति वा दरदनीति के बन्धनों से मा बद्ध किया जाता है । राज्य के आंतरिक शासन तथा परराष्ट्री से संबंध रखने में उस धर्म और दरदनीति के अनुसार ही चलना पड़ता था और उसे इस बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह कभी इनकी उल्लंघना नहीं करेगा ।

(३) मंत्रिमण्डल

हिन्दू राजा अपनी ही सफ़ा से शासन नहीं करता था । उसके शासन पर मंत्रिपरिषद् का अंकुश रहता था । हिन्दू मंत्रिपरिषद् प्राचीन वैदिक काल की 'समा' का ही विकसित रूप थी ।

१ हिन्दू राजतंत्र ५२१६ ।

हिन्दू राष्ट्र-छाठन की यह एक परंपरा थी हो गयी थी कि बिना मंत्रियों की परिषद की स्वीकृति और सहयोग के राजा कोई काम नहीं कर सकता था। परिषद के मंत्रियों की संख्या ८ से ३२ तक के बीच थाकी गयी थी। इस संरूप में यमसूत्र, बर्मशास्त्र तथा राजनासि संबंधी सभी ग्रन्थ एक मठ हैं। कौटिल्य भी, जो एकराज शासन-प्रणाली का सबसे बड़ा समर्थक है, कहता है कि राजा को मंत्रिपरिषद् में बैठकर ही राज्य-संबंधी समस्त विषयों का समाधान करना चाहिए और बहुमत से जो कुछ निश्चित हो, उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए^१।

मनु और याज्ञवल्क्य^२ इस विषय पर प्राय एक मठ हैं। मनु के अनुसार^३ राजा को अपने धार्मी या मंत्री आचरण रखना चाहिए, और राज्य के साधारण तथा असाधारण कार्यों पर उन्हीं के बीच बैठकर और उन्हीं के साथ मिलकर विचार करना चाहिए। काल्याणन तो यहाँ तक निर्देश करते हैं कि राजा को अपने बैठकर बिना मुकुटम या अभिषेक आदि का भी निर्णय नहीं करना चाहिए, ग्रामियों तथा स्त्रियों आदि के साथ बैठकर निश्चय करना चाहिए^४। इसका अभिप्राय यह है कि शासन-संबंधी जो कार्य बिलकुल नियमानुमादित और यमसंगत हो वह भा अनुसूची मंत्रियों की सम्मति और स्वीकृति से होनी चाहिए, जिससे उसमें किसी प्रकार की त्रुटि न पड़े जान।

इस अर्थ पर हमें विधान-संबंधी एक और महत्वपूर्ण धर्म का भी ध्यान में रखना चाहिए। यमशास्त्रकारों^५ ने यह निर्देश कर रखा था कि यदि मंत्री लोग विरोध करें, तो राजा को यह अधिकार नहीं

१ अथशास्त्र १।११।११।

२ याज्ञवल्क्य १।३११।

३ मनु ७।५४-५७।

४ वीरमिषोदय पृ० १४।

५ आश्लम्ब २।१०।२६।१।

है कि वह किसी को विलक्षण भी कर सके। यहाँ तक कि वह शासकों को भी दान नहीं दे सकता था। मंत्रिपरिवर के विधान-संबंधी इन नियमों को देखते हुए हम समझ सकते हैं कि सम्राट-अशोक के आठवें वंश पर भी मंत्रिपरिवर और प्रधानमंत्री राधागुप्त ने बौद्ध विद्युधर्मों को और अधिक विलक्षण देना क्यों और किस प्रकार सम्भवित कर दिया था।^१ इसके स्पष्टि हाँठा है कि मंत्री लोग समय-समय पर सम्राट का आदेश का भी उल्लंघन करते थे। इस प्रकार जब अशोक ने मुद्रगन ताल की मरम्मत की आदेश दी थी, तब उसके मंत्रियों ने भी उसका विरोध किया था। मुद्रगन ताल की मरम्मत के संबंध में

१ विष्णुविलक्षण, पृ० ४१० से आगे।

कुण्डकुटाराम को अशोक को दान देना चाहता था, उसे पूरा करने के लिए उसका होकर उठने कहा था—“राधागुप्त, माहेंद्रम्य विनाश न राग्य विनाश न आभयविर्भाव ही आभि।” उक्त समय कुण्डाल का पुत्र अशोक मुद्रगन के पद पर अवस्थित था। आमात्यों ने उल्लेख कहा था—“कुमार राजा अशोक का अवलोकन तो चाहे ही समय तक रहेगा, पर वे अपना वन कुण्डकुटाराम में भेज रहे हैं। राजा का वल कीर्त हो है। उन्हें इतने निपातण करना चाहिए।” इस पर कुमार ने माहेंद्रम्य का प्रतिशत कर दिया। तब अशोक राजा ने आमात्यों और पौरों को बुलाया और उनसे पूछा—“इस समय देश का स्वामी कौन है ?” प्रधान आमात्य ने उठकर और अशोक के पाठ पहुँचकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा—“देव ही इस समय पृथ्वी के स्वामी हैं। इस पर राजा ने अभुपूर्ण मंत्रों से मंत्रियों से कहा—“दिल्ल क्षिप्यायार क विचार से मिथ्या बात क्यों कह रहे हो ? हम ती राग्य विचार से भ्रष्ट हो गए हैं।”

स्वामिशर और मौर्यकुं अशोक, जो अशोक का अवलोकन था, अब आभय आमात्य का अवलोकन रह गया। मंत्रियों के द्वारा अवलोकन अशोक हा जाने हर अब वह राजा आभय आमात्य ही दान देता है।

मंत्री लोग राजा के प्रस्ताव के विरोधी थे। उन लोगों से उसके लिए मन देना अस्वीकृत कर दिया था, जिससे राजा को धारा दब अपने क्रोध से देना पड़ा था।^१

(४) पौर-ज्ञानपद

तत्कालीन राजनीति में पौर-ज्ञानपदों का स्पष्ट महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। कद्रदामन ने मुद्रार्थन नामक जिस काल का बीर्योद्धार किया था, उसे वह पौर ज्ञानपद के प्रति अपना अनुभव प्रदान बतलाता है।^२

पौर-ज्ञानपद का अर्थ हम 'शक-शासन-पद्धति' में बतावेंगे। पौर ज्ञानपद का राष्ट्र-संगठन संबंधी सभी बातों में उल्लेख मिलता है। अधिक महत्त्व के विषयों का विचार और निराय ज्ञानपद और पौर दोनों संस्थाओं के सम्मिलित अधिभेदान में हुआ करता था। उक्त समय य दोनों संस्थाएँ मिलजुल कर इस प्रकार विलकुल एक हो जाती थी कि दोनों एक ही समझी जाती थी।^३

अभिषेको के समय इनकी उपस्थिति अपेक्षित थी। पौर ज्ञानपद के बुद्ध लोग जनता के प्रतिनिधित्वरूप अभिषेक के समय उपस्थित होते थे। यदि आवश्यक हुआ तो पौर ज्ञानपद उत्तराधिकार में बाधक भी हो सकते थे। सिंहल के महावंश के अनुसार भारत में पौर का इस बात का अधिकार प्राप्त था कि यदि राजा कोई धर्मविद्वद काय करे, तो वह उसे राजप्युत करके निवासित कर दे, और सब लोगों का ध्यान रखने वाले पौर अपनी समा में निश्चय करके राज बंध से भिन्न किसी बंध के बन्धन का पुनः कर राजा बनावे।^४

१ कद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ लेग, नं० १९—१०।

२ एचि ४० वा ४२ शिलाशैल पक्षि नं० १६।

३ हिन्दू राजवर्तन ५ २९१।

४ महावंश ४३९।

अभियेक के अतिरिक्त पौर-जानपद मंत्रियों को नियुक्त में भी सहायक होते थे। महाभारत के अनुसार राजा उसी मंत्री को मंत्र या राज्य का नीति और शासन का दायर का अधिकार प्रदान करे, अर्थात् उसी व्यक्ति का प्रधानमंत्री बनावे जिसने धर्म के अनुसार पौर-जानपद का विश्वास संपादित किया हो।^१ इस प्रकार मंत्रियों की स्थिति एक बहुत बड़ी सीमा तक पौर-जानपद की प्रकृति और विश्वास पर ही निर्भर करती था। संभवतः इसीलिए ब्रह्मामन के कममन्त्रिय और मन्त्रिसचिव उसके विरुद्ध हो गए थे इसीलिए राजा का पौर-जानपद के प्रति अनुग्रह करना पड़ा था।^२

'कर' या राजस्व के संबंध में पौर-जानपद का प्रायः उल्लेख मिलता है। 'कर' साधारण नियम का कामून के अनुसार निरिचत होते थे, परन्तु प्रायः ऐसी आबरवकर्तार्य पद्धति थी और अक्षर आते थे, जिनमें राजा का प्रजा से विशिष्ट 'कर' देने के लिए कहना पड़ता था। ये 'कर' या तो प्रणय और प्रेमोत्सहार के रूप में होत थे या जब रक्ता बहल किए जाते थे अथवा इसी प्रकार के अन्य रूपों में हुआ करते थे।^३ इससे यह प्रकट होता है कि इस प्रकार के 'करों' का प्रस्ताव सर्वप्रथम पौर जानपदों के समक्ष उपस्थित किया जाता था। अर्थात्सर्व के अनुसार राजा को पौर जानपद से ऐसे करों का भिन्न माँगनी पड़ती थी, जो राजा ऐसा न कर सौध जनता पर 'कर लगा देता था, उसका सत्पानाश ही हुआ करता था। पौर और जानपद पन और सेना एकत्र कर उक्त राजा के प्रति विद्रोह कर सकत थे।

१. महाभारत ८३।१२.४६।

२. महाभारत ब्रह्मामन प्रथम का जूनागढ़ मेल, पंक्ति १०-१२।

३. इ० ऐ० १११८ वृ १८।

४. अथशास्त्र ४।१।१०।

जनन प्रवेयेन राजा पौर जानपदान् मिच्छत्।

राजनीतिक विचार और शासन पद्धति

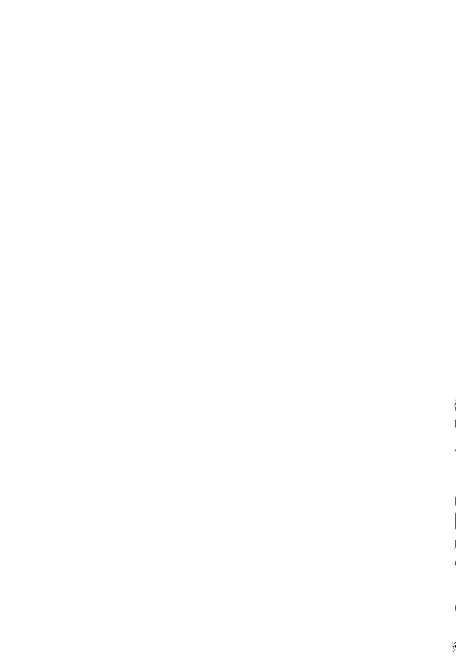
पौर-जानपद प्रायः अनुग्रह की वाचना करते थे और अनग्रह प्राप्त करते थे। कौटिल्य के अनुसार शत्रु के देश के पौर जानपदों (निताग्रों) का अपने गुप्त दूतों के द्वारा यह परामर्श दिलाना चाहिए कि आप लोग अपने राजा राजा से 'अनुग्रह' (रिहायश) की याचना करें, परन्तु ऐसा प्रायः उन्हीं देशों में होना था, जिनमें अकाल, पारिवर्षिक और अदृष्टियों के आक्रमण हुआ करता था। कौटिल्य के आदेश से यह भी सूचित होता है कि जिन अनुग्रहों की याचना का जाती थी, वे आर्थिक हुआ करते थे क्योंकि कौटिल्य ने कहा है कि कृषक यह अनुग्रह और परिहार प्रदान किये जाने चाहिए जिनमें राजकाय कोष की वृद्धि हो और जिनमें कोष घटित होता हो, उनका प्रदान से याचना चाहिए, क्योंकि पौर-जानपद को वहाँ राजा प्रसता है जिनके पास धन कम होता है। अथवा अकाल के अनुग्रह अकाल के समय परिहार प्रदान करना चाहिए और जब मिर्बाई के लिए ताल आदि बनवाने की आवश्यकता हो, तब अनुग्रह प्रदान करना चाहिए। यद्रामन ने मुद्रघन ताल का जो जीर्णोद्धार कराया था, उसको वह पौर जानपद के प्रति अपना अनुग्रह प्रदान बतलाता है।^१

(५) पौर जानपद का महत्त्व

पौर जानपद के महत्त्व का इतने ही से समझ जा सकता है कि यदि वे पादों तो राज्य का बना सकते हैं और यदि तो नष्ट भा कर सकते हैं इसलिए राजा का अपने आचरण से उन्हें प्रसन्न या अनुग्रह रायना चाहिए और उन्हें किमा प्रकार पीड़ित नहीं करना चाहिए। संभवतः इनीलिए यद्रामन कहता है कि उनमें मुद्रघन ताल के निमाण में आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए पौर जानपद धन या सैन्या को कष्ट नहीं दिया।^२

१ पौरजानपदजनानुग्रहार्थ....

२ अगोदरपित्वा कर-विधि प्रणवक्रिणाभि....



राजनीतिक विचार और शासन पद्धति

वीर-जानपद प्रायः अनुग्रह की वाचना करते व और अनग्रह प्राप्त करते थे। कौरव्य के अनुसार शत्रु के देश के वीर जानपदों (निशाचरों) का अपने गुप्त दूतों के द्वारा यह परामर्श दिलाना चाहिए कि आप लोग अपने राजा राजा से 'अनुग्रह' (रिहायश) की वाचना करें, परन्तु ऐसा प्रायः उन्हीं देशों में होना था, जिनमें अकाल, चारियाँ और अद्विविधों के आक्रमण हुआ करते थे। कौरव्य ने कहा कि कल यह भी सूचित होता है कि जिन अनुग्रहों की वाचना का जाना भी था, वे आर्थिक दुष्प्राप्ति करते थे क्योंकि कौरव्य ने कहा कि कल यह अनुग्रह और परिवार प्रदान किये जान चाहिए जिनमें राजकाय की बुद्धि हा और जिनसे काय रक्षित होता हो, उनका प्रधान से रचना चाहिए, क्योंकि वीर-जानपद को बड़ा राजा प्रसता है जिसके पास धन कम होता है। अथवा राजा के अनुसार अकाल के समय परिवार प्रदान करना चाहिए और जब मित्रों के लिए ताल प्रादि बनवाने की आवश्यकता हो, तब अनुग्रह प्रदान करना चाहिए। उपदामन ने सुदर्शन ताल का जो वीर्यादार कराया था, उसको वह वीर जानपद के प्रति अपना अनुग्रह प्रदान बतलाता है।^१

(५) वीर जानपद का महत्त्व

वीर जानपद के महत्त्व का हमने ही से समझा था मरता है कि यदि वे चाहें तो राज्य का बना सकते हैं और चाहें तो नष्ट भी कर सकते हैं इसलिए राजा को अपने आचरण से उन्हें प्रसन्न या अनुरूप रचना चाहिए और उन्हें किसी प्रकार पीड़ित नहीं करना चाहिए। उभयतः हमें सुदर्शन ताल का जो वीर्यादार कराया था, उसको वह निमाच में आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए वीर जानपद बन या संस्था को कष्ट नहीं दिया।^२

१ वीरजानपदजनानुग्रहाय....

२ अर्धेद्वित्वा का-विष्टि प्रत्ययविधि...

(६) सैन्य-विभाग

सैन्य विभाग का सबसे महत्त्व का अंग सैन्य संगठन तथा सुव्यवस्थापन था। सेना की कल्पना जब भी चतुरंगिणी थी, अर्थात् इसमें (१) पराधि, (२) अज्य, (३) गज और (४) रथ होने चाहिए। स्वयम्भुव के अनामक लोक में कुछ ऐसा ही बयान मिलता है। सेना के अंगों में गज का बहुत महत्त्व था। तत्कालिक सैन्य संगठन में उसका यही स्थान था जो आधुनिक काल की सेना में 'टैंकों' का प्राथमिक है। हाथियों के महत्त्व को हम इतने ही से समझ सकते हैं कि विश्वेश्वर धारुमयाकारी सेस्पूकस और चंद्रगुप्त मौर्य की संधि में चंद्रगुप्त न ५०० हाथियों की सेना भेंट की थी।

सैन्य संरक्षण के लिए अलग-अलग अधिकारी होते थे। सबसे प्रधान अधिकारी को 'महासेनापति' और अंग विशेष के अधिकारी को 'सेनापति' कहते थे। महासैन्यपति का तो मही सेनापति का उल्लेख राजा धर्मिलोको में हुआ है।^१ भीमरथमन के कानकोर प्रस्तर लोक में भी सेनापति का उल्लेख मिलता है।^२

सेना के पराधिकारियों को नियुक्ति उनकी योग्यतायुक्त होती थी। यहाँ सेना का मरती में बंधानुगत अथवा आदि जातियों को प्रमुखता तो ही जाती थी किन्तु उनमें भी योग्य शक्तियों का चुनाव होता था। इस प्रकार का उदाहरण स्वर्णि प्रथम के काल के 'गुरवा' प्रस्तर लोक में मिलता है जहाँ सेनापति एक धार्मिक बतलाया गया है। इस प्रकार मना में मरती होने की 'मील' व्यवस्था प्रचलित थी। इनका मूल हम इसलिये कहेंगे क्योंकि सेनापति बारकस्व के बाद उसका पुत्र दद्रुमूतिन सेनापति नियुक्त हुआ—निता के बाद पुत्र।

१ विपुल कीर्तिना गुरम-गज-रथपथासि-धम-नियुजाया...

२ एनि ६० १६।२३३।

३ धार्मिक सेनापति बारकस्व पुत्रेण सेनापति दद्रुमूतिन
वही पृ ६३६।

(७) युद्ध में नैतिक परंपराओं का पालन :

वद्यपि इस युग में राजा प्रायः युद्धरत रहते थे, तथापि विद्वान्तरत यह माना जाता था कि जब राजनीतिक प्रश्नों के मुकामतः का अन्त्य कोई उपाय सुझाव न हो तभी युद्ध करना चाहिए। शरद, हेमंत और शिशिर युद्ध के लिए उपयुक्त ऋतुएं समझी जाती थी बसन्त मध्यम और ग्रीष्म अक्षय। वर्षा ऋतु, युद्ध के लिए वर्जित समझी जाती थी क्योंकि उच्च समय ठाम (शान्ति) ही उपयुक्त था। किन्तु ग्री, ब्राह्मण, स्त्री का विनाश उपस्थित होने तथा अग्न्य अनिबाम परिस्थितियों में कभी भी युद्ध हो सकता था।

वास्तविक युद्ध में नैतिक परंपराओं का पालन का विधान था, वद्यपि यह कहना कि कहीं तक अन्याय निर्वाह होता था, कठिन है। क्षम से मत्स्य भेद है, पात्र-कर्म से अय नहीं।^१ शरदागत को किसी अक्षय में भी नहीं मारा जाता था, वद्यपि शत्रुओं का शर से इत नैतिक नियम का तुल्ययोग होता था। युद्ध, बाल और स्त्री अग्न्य माने जाते थे। भग्नशास्त्र विपन्न, वृद्ध अक्षय पर कभी अक्षय नहीं किया जाता था। शक काल में ये नैतिक नियम मुलाये नहीं गए थे।^२

१ महाभारत २५।१७।

ययैव नियम भेदा न जयाः पारकमशा।

२ महाभारत २३२। अमन प्रथम का अनुवाद तिलाभयः

सत्याप्रतिज्ञेन धन्यव संभ्रामप्यभिदुःखामन-नदश-शत्रु नहरण विहाय
पत्या-विगुणविपु...त कारयेन स्वयमभिगतजन-वत्प्रगुणति।

३ अर्षशास्त्र १।१३।

युद्ध युद्ध राजा और प्रजा के मध्य का युगत इकरार और उनके संबंध के दिव्य विद्वान्त का समरण विभागत ये विद्वसे राजस्व प्रथा का धारम हुआ था और जो राजस्व का मूल आधार था। ये कहत

(८) राजस्व व्यवस्था

राष्ट्र संगठन की दृष्टि से राजकर के संबंध में हिन्दू सिद्धान्त बहुत अधिक महत्त्व का है। राजकर धर्मशास्त्रों के अनुसार निश्चित था और पवित्र सांकेतिक धर्म के अनुसार यह भी निश्चित था कि कौन-कौन सा 'कर' किस विद्याय से लिया जाना चाहिए। इसका परिणाम यह होता था कि शासन-व्यवस्था चाहे जिस प्रकार की होनी थी, परन्तु राजकर के संबंध में राजा और प्रजा में कोई झगड़ा ही लड़ा नहीं हो सकता था। म्हादे और अत्याचार की जो लाख बड़ यो ठठका बचाव इस प्रकार कर दिया गया था।^१ (पृष्ठ ७७ देखें)

ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि राजकर संबंधी जो नियम थे, उनका तब अवरमाओं में पालन होता था। उदाहरण के लिए सप्तवाहन राजवंश की महारानी मलभी का शिलालेख प्रामाण्य है जिसमें घोषित किया गया है कि उसका पुत्र पवित्र धर्म-व्यवस्था के अनुसार 'राजकर' लिया करता था।^२ महाभारत का यह कथन प्लान दम बोम्ब है 'जो क्षत्री राजा ऐसे 'कर एकत्र करने के लिए, जो शास्त्रों से अनुमोदित नहीं है, मूलतःपूर्वक अपनी प्रजा पर अत्याचार करता है 'बहु स्वर्ध अपने ही साथ अत्याच करता है।'^३ संभवतः इसीलिए महात्तत्र ब्रह्मामन प्रथम अपने शिष्या

से—'जिस समय अराजकता फैली और उससे प्रजा पीड़ित हुई, उस समय प्रजा विवस्वत के पुत्र मनु के पास यकी थी। वहाँ उन क्षत्री ने करके रूप में राज का अंश निश्चित कर दिया था कि पशु का छूटा अंश ले और व्यापार व्यवसाय की चीजों के मूल्य का मगद इसका देना ले। प्रजा के वोगलेय के लिए राजाओं का इतना ही अंश निश्चित है।

१ आर्के० सर्वे० रि० वे० इ० ११०८।

२ यातिवर्ष ७१।१५।

क्षेत्र में, 'सत्त्वप्रतिष्ठेन' एवं 'व्यावृत्तप्रतिर्पलिगुस्तुमागौ। आदि शब्दाव
लियों का प्रयोग करता है।^१

नादित्य में ऐसे कई बिलक्षण उदाहरण मिलते हैं जिनसे सिद्ध
होता है कि 'राजकर' के संबंध में धर्म द्वारा निश्चित जो तिदास्त है,
उनका उल्लंघन नहीं होता था। सम्राट चंद्रगुप्त को सेल्युकस के साथ
युद्ध करने के लिए धन की आवश्यकता थी। उसने और उसके
महामात्य ने धन-समाह करने के लिए अपना सारा बुद्धि-बल लगा
दिया। धर्म के अनुसार जा राजकर प्राप्त होता था, वह हम फाय
के लिए पवास नहीं था। जैसा कि अर्थशास्त्र से विदित होता है,
उन लोगों का दुष्ट और बिलक्षण उपायों का आशय लेना पड़ा था।
इससे एक ओर तो धर्म का महत्त्व सूचित होता है और दूसरी ओर
यह सिद्ध होता है कि धर्म द्वारा निश्चित राजकर के संबंध में कितनी
कठिनाइयाँ थीं। चंद्रगुप्त ने अपनी प्रजा से प्रणय का भिन्ना का भी,
अर्थात् कहा था कि अगर लोग मुझे अपना प्रेम सूचित करने के लिए धन
रें। महात्तमर दद्रवामन प्रथम ने भी इस प्रकार के प्रणय की पाषना
की थी—'अनीद्वित्वा कर-विष्टि-मायापरिक्रियाभिः पौरजाभ्यवचनं।

(६) क्यों पर मंत्रि परिषद का अधिकार

राजकर से जो आय होती थी, उस पर मंत्रिपरिषद् का पूरा-पूरा
अधिकार होता था, और उसी को राजकर एकत्र करने का भी
अधिकार प्राप्त था। समस्त धन भी उसी के हाथ में था।^२
ईसाई शताब्दी (१२०) में दद्रवामन की मुद्रार्थन नामक श्लोक
का मतलब करान में धन को धन बना पड़ा था। उसके मंत्रियों
में इस विषय पर माभेद हो गया था।^३

१ अर्थशास्त्र ८।१। १२७।

२ स्वस्मात्कोशा महतापनीचन...। आरिम्नये महात्तमरस्य मनि-
तयिष कमठनिवेरमात्य-गुण-तमुपुवैरप्यानि मत्वाद्भेदरवा-
नुत्ताह-विमुता-मतिभिः...

लगाये जाने चाहिए। उनसे संग्रह का ढंग कष्टदायक नहीं होना चाहिए।^१

(१) शिल्प का बस्तुओं पर 'कर' लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कितना लाभ होने पर कारोबार कोई भी बंद कराने में लगा रहेगा बिनासे राजा को मो लाभ होता रहे।^२

(२) वाणिज्य की बस्तुओं पर 'कर' लगाते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि किसी चीज की डिब्बी का नाम क्या है, लटोह का नाम क्या है, कितनी दूर से आयी है, उसमें धाने में कितना म्यथ पड़ा है, कुल लागत कितनी आयी है और उसके लिए व्यापारी को कितनी आशिम ठठानी पड़ी है।^३

तात्पर्य यह कि आर्थिक परिस्थितियों का ठव रयानों में ध्यान रखा जाता था। उत्याहक बस यवाना वा पडावा नहीं जाता था। मूल बन पर नहीं बरिहक लाभ पर कर लागत था। जिन बस्तुओं से मण-उण शिल्पों का बिकाठ होने का संभावना होती थी उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता था।

(१२) राजस्व के स्रोत

शक समिहोनों का अध्वन करमे पर इम निम्नलिखित राजस्व स्रोतों को देखत है —

(क) वधि : राजा को स्वेष्ट्वा से दिने जान वाले कये वा अम्ब

१. वही १२।१८।१२।

न चास्थाने न चाकाले करस्तम्भो निपाठयेन् ।
जानुपूर्णेण चास्त्वेन मयाकाल मयाविधि ॥

२. मनु० ७।१२६।

३. वही ७।१२०।

विकर्ष कपमम्भानं भक्त थ लपरिणवम् ।
बोधसेम थ लप्रेष्व वाहिजां कारयेत करान् ॥

उपहारों के लिए इसका प्रयोग हुआ है। यह एक प्रकार का नियमित कर था।^१

(ख) शुल्क : आजकल जिसे हम आयात निर्वाह संबंधी 'कर' कहते हैं, प्राचीन काल में उसी को 'शुल्क' कहते थे। इनकी दर निश्चित करने में राजा को सम्भवतः थोड़ी बहुत सुविधा थी, बचपि परबर्ती घमशासकों में कुछ निश्चय निश्चित करके इसका भी नियंत्रण करने का प्रयत्न किया गया था, फिर भी लोभी अथवा अर्थांतकट में पड़ा राजा अपने विकास के लिए कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेता था।

(ग) भाग : एक शहर्य वहाँ लेती संबंधी कर से है। 'भाग' उस भूमि को कहते हैं, जिस पर जोतन वाले का स्वामित्व रहता है और राज्य उससे उसकी मुरवा का कुछ भाग लेता था। इसीलिए घमशासकों में राजा को 'यज्ञभागभुज' कहा गया है; परन्तु कमी-कमी विभिन्न रथाओं में यह 'कर' बढ़ भी जाता था। 'देवमायिका' पर कर की मात्रा कम होता थी। देवमायिका उस भूमि का कहते हैं जिसकी सिंचाई प्रकृति स्वयं करती है। 'अदेवमायिका' पर कर की मात्रा राज्य निश्चित करता था। यह इस प्रकार का भूमि पर 'कर' की मात्रा बढ़-बढ़ा सकता था, इसलिए, क्योंकि इस प्रकार की भूमि की सिंचाई का प्रबंध राज्य स्वयं करता था।

(घ) प्रणय : विशेष 'कर' के लिए राजा प्रजा से वाचना करता था। इस 'वाचना' को ही 'प्रणय' कहा गया है।

(ङ) विधि : इसका बेगार कहा जाता था। प्राचीनकाल में यह उचित समझा जाता था कि जो गराव छाहमी नकद या पन्वारि में कर में सरकार को 'कर' देने में समर्थ न थे वे शारारिक धर्म के रूप में रक्षक का मुत् 'कर' दे दे। सरकार के लिए 'विधि' लागू करने पर वे सरकार से भी जन पान के अधिकारी थे।^२

१ दा० अस्तवर, मा० भा० शा० प० पृ० २१०।

२ अस्तं च तस्यो वचत्। गी० च० गृ० १।१।१५।

(ब) नावापुरवतः : इसको नावापाठ शुद्ध कहा जा सकता है। नाव से नवी पत्र करने पर 'कर' देना पड़ता था, इसका उल्लेख नरपान के नाविक पुद्गामिलोक में मिलता है।^१ इसके अनुसार राजा ने 'नाव-कर' को हटा दिया था।

(द) म्वाय-म्बवस्था : अत्यंत प्राचीन काल से म्वाय की म्बव स्था और अपराधियों को दण्ड राजा का परम कर्तव्य माना जाता था। बाबी और प्रतिवादी के विवाहों को देखने और निखर करने का समस्त कार्यक्रम को 'म्बवहार' कहते थे। साधारणतया 'म्बवहार' का अर्थ लौग आचार-विचार से समालोचन है, किन्तु नहीं म्बवहार का तात्पर्य विवाह से है : वि (नाना अर्थों में) + अय (संदिह) + हार (हरण) के कारण इसकी म्बवहार कहा जाता है।^२ म्बवहार शब्द का उल्लेख महाकव्य ब्रह्मामन प्रथम कं बृलागद चिन्ता-मौख में हुआ है।

(१३) अंतरराष्ट्रीय संबंध एवं व्यवहार

राज्यों के परस्पर संबंधों के नियम में बर्तमान, अर्धशास्त्र, नीति-शास्त्र एवं परंपरा से नीति एवं सिद्धान्तों का विकास हो चुका था। प्रत्येक समूह और महत्त्वाकांक्षी राज्य इनके प्रति जागरूक रहत थे। भारतीय राज्य की कल्पना ही अंतरराष्ट्रीय थी। इसके अनुसार राज्य की तात् प्रकृतियों में मित्र भी एक था। मित्र प्रकार, राज्य का योगधर्म में 'कोप' और बल सहायक होते हैं उसी प्रकार मित्र के बिना कोई राज्य उन्नति नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक राज्य का वह उद्देश्य होता था कि वह अपने पड़ोसी राज्यों में से यथासम्भव अधिकतम राज्यों को अपना मित्र बनावे। संभवतः इतीतिष्ट महाकव्य ब्रह्मामन अपने

^१ एनि० इ० ५।१।७८।

'नावापुरवतकरेश'

^२ वि नानार्थेऽत्र संदिहे करणं हार उच्यते

नामासंदिह-हरणार्थ म्बवहार इति स्मृतः॥ म्बवहारमातृका पृ० २०२।

पड़ोसी राज्यों में विवाह संबंध स्थापित करता है।^१ महामारत^२ और कामधूत^३ में चार प्रकार के 'मित्रों' का उल्लेख मिलता है। छहउठों के साथ उत्तममात्रकों की मित्रता रही हाया तभी वे मातृओं के आक्रमण से बच सक। नहुवान का आमाता उपबधात ने मातृओं के आक्रमण से उत्तममात्रकों की रक्षा की थी।^४ महासभ्य ब्रह्मदामन प्रथम ने इधियापय के स्वामी को इसीलिए छोड़ दिया था कि उठका उनसे दूर का संबंध था। विवाह संबंध और मित्रो संबंध के अतिरिक्त मी, अंतरराष्ट्रीय संबंध को बनाए रखने के लिए, एक उदाहरण मिलता है। और वह है विजित राज्यों को उठका राज ठाड़ी को लौटा देना।^५

(१४) द्वैतान्य शासन प्रणाली

राज-शासन की प्रमुख विरहता 'द्वैतान्य-शासन-व्यवस्था' थी। इस शासन-प्रणाली में राजा का भाई पुत्र, पौत्र, मतीया आदि शासन-क्षेत्र में वह-शासक को हेतियत रखते हैं। द्वैतान्य शासन प्रणाली में शासक का समान अधिकार प्राप्त होता है। इस शासन व्यवस्था में अर्धन और ब्रह्मदामन के संयुक्त शासन का उदाहरण दिया जा सकता है।^६ अर्धन और ब्रह्मदामन के संयुक्त शासन का प्रमाण 'अ-उ प्रस्तर लेख ५२' है।

१ नरेन्द्र कन्वा स्वयंवरानेक मास्य प्राप्त-वाममा,
पूनागढ़ लेख पंक्ति, १५।

२ शांति पर्व ५०।३।

३ कामधूत २।७४ : औरतं नृनसंबंध तथा बंधुक्रमागतम्।

रहितं व्यक्तनेम्यस्य मित्रं ज्ञेयं पशुर्बिषम्।

परि० ई० ८।१०।७५।

४ बही ५।२२ 'मित्रयेन अर्धराजप्रतिष्ठापयन्'

५ पा० हि० पं० १०५० ३१६।

हेराक्य शासन-प्रणाली की व्याख्या करते हुए डा० काशीप्रसाद पायसवाल ने, कहा है कि "वह न तो एक राज व्यवस्था ऐसा शासन या जिसमें कोई एक ही अत्यानुकूलिक राजा शासन करता था, और न ऐसा शासन या जिसमें कोई से विधिपट्ट वा बड़े-बड़े लोगों के हाथ में शासनाधिकार होता था। यह ऐसी शासन-प्रणाली थी, जो केवल भारत के ही इतिहास में पाई जाती है। हमारे यहाँ के साहित्य एवं शिलालेखों में इस प्रकार की शासन-प्रणाली के कई ऐतिहासिक उदाहरण उपलब्ध हैं। अमिलेखों में इस शासन-प्रणाली के जो उल्लेख मिलते हैं, उनके कारण भारतीय अमिलेख पढ़नेवाले विद्वान् बहुत उत्सन्न में पड़ गए हैं और वे इस समस्या का कोई ठीक-ठीक निराकरण नहीं कर सके हैं। इसकी छटी और सातवीं शताब्दी में नेपाल की शासन-प्रणाली के अर्धिन या। सिन्धुकि राजवंश तथा ठाकुरी राजवंश के राजाओं के ठीक एक ही समय के शिलालेख काठमाण्डू में पाये गए हैं। वे एक ही राजधानी में दो स्थानों से निकली हुई पौरुषार्थ हैं जिनकी तिथियों से प्रमाणित होता है कि वे दोनों राजवंश साथ साथ और एक समय में शासन करते थे।"

किन्तु स्वर्गीय डा काशीप्रसाद पायसवाल का यह कहना कि इव (हेराक्य शासन-व्यवस्था) व्यवस्था का ज्ञान किछ भारतीयों को या उनके मूल्य थी। यदि हिन्दू शक-पर्यवों के सिक्कों का अध्ययन किया जाय तो डा० काशीप्रसाद पायसवाल की मूल पकड़ी का सक्ती है। ऐतिरिचित व अज्ञेय इमान व इगामय आदि मिलकर हेराक्य-पद्धति से राज्य करते थे।

अब हम शक-कालीन शासन-पद्धति पर विचार करेंगे। शक साम्राज्य ताकालिक गुणों की रक्षा का नाश न कर सकें, जो मौर्य काल में ता ब्रह्म द्वारा शालित होत थे किन्तु उनके परतन के पीछे ही दिन रात वे स्वतंत्र हो गए। सिक्कों व अमिलेखों से उक्त काल के अनेक

१ हिन्दू राजवंश पृ० १३१-३२ ।

गणों का पता चलता है, मालव, यौवेर, कुक्षिग्र, धामुनावन आदि ।
सुर्माग्व ही कहिए कि उस काल के समाजों से इनके धार्मिक संगठन
के बारे में हमें अधिक ज्ञान नहीं हो सका है ।

(१५) शासन पद्धति

(क) केन्द्रीय शासन : यद्यपि एक गणों की सत्ता की आत्म
साध नहीं कर सके तबानि उन्होंने उनका-अभिन्नमी भारत के अनेक
राजतंत्रों का नष्ट किया और एक नए राजतंत्र की स्थापना की ।
शासन की मुखिया की दृष्टि से एक-शासन की विभागों में बँटा हुआ
था—केन्द्रीय, प्रांतीय और स्थानीय । केन्द्रीय शासन का प्रधान
अधिकारी राजा होता था जिसको 'महासुत्रप' कहते थे । य अन्न नाम
के साथ यदे-यदे विद्वत् पारण करते थे—योग करने नाम के साथ
'नति रजस महसम प्रमुक्त करता था । राजस, 'महसुत्रपत अग्रति
अरुत खजुमत' ।^१ एकों से पूर्व भारतीय साहित्य में इतने बड़े-बड़े
विद्वत् नहीं मिलते ।

इन शासकों के ये यदे-यदे विद्वत् उन तक ही सीमित न थे अपितु
उनके रनिशायों में भी प्रयुक्त होते थे । अशोक की स्तूपियाँ शिख
'देवी' के नाम से जानी जाती थी । उदाहरण के लिए तीबर की माँ
'सुनीया देवा' के नाम से पुकारा जाता थी और तबम यही राजा
'प्रममा देवी' के नाम से जानी जाती था किन्तु एक काल में हम
'प्रममादेवी' के स्थान पर 'अप्रमदिपी' विद्वत् पाते हैं ।^२

हम संक्षेप में ज्ञान देन योग्य एक और बात है और वह यह कि
य शाही विद्वत् जो किसी काल में कमी लगानों के लिए प्रयुक्त होते
थे, दूसरे काल में व ही सामन्तों के लिए प्रयुक्त ज्ञान लग जाते हैं ।

१ मूलिमेटिक क्रानिकल १८८८ ६९ पृ० १०२ ।

२ पृ० ६० ६।१५१ ।

'महसुत्रपत खजुमत अप्रमदेपि

जैसे 'राजा'। इस उपाधि का प्रयोग मौखिक काल में सम्राटों के साथ हुआ था। किन्तु बही बरकतों की उपाधि शकों और गुप्तों के काल में उनके सामन्तों के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। और फिर 'महाराज' जो कि शक काल में सम्राट का विरुद्ध होता था, गुप्तों के काल में बही अर्थात्स्य राजाओं के लिए प्रयुक्त होने लगे थे।

(ख) मन्त्रिपरिषद् : इन राजाओं को शासन सर्वधी सुमध्य देने के लिए उनका एक मन्त्रिपरिषद् होता था। मन्त्रिपरिषद् सिर्फ सुमध्य ही नहीं देता था उसकी कार्यान्वित भी करवाता था। यदि यह किसी-किसी बात पर झटल हो जाता था तो राजा कुछ नहीं कर सकता था। शक काल में ये मंत्री, कामास्य और सचिव दो नामों से जाने जाते थे^१।

(ग) कोपाध्यक्ष कोपाध्यक्ष को 'गंजबरेस' कहते थे^२। कोप म थे ही बन जाते थे जो बलि शुल्क और माग द्वारा प्राप्त होते थे। खरबामन का कोप इन करों से ही बन जान्य से पूर्ण था। उसका कोप कन्नड (चीना), रमठ (बाँदी) बल्ल बैङ्गाली राज्यों से मरत-पूरा था। कोप का बन बन-कन्यकाकारी कार्यों में ही लक्ष्य होता था। इतका प्रचुर उत्सलेन शक समिलेगों में मिलता है।^३

(घ) मुबराज : केन्द्रीय शासन में राजा का सहायक मुबराज भी होता था। 'मुबराज' सरीष्ठ का उत्सलेन मधुर सिंह शीर्ष लेख में

१ एपि ई ८। ४२।

२ एपि ई ६। २४७।

स्वामिरव महासभारय शोदातरय गंजबरेस ब्राससेन
शेसव-समोरेस।

३ एपि ई ८। १। ७८।

मरकसे बरपुरे गौषमने शोपरिगे थ बद्रुयातासक-मविभय
प्रदेन आराम-सहाक-उरपान-करेस।

हुआ है। तक्षशिला के शक-कुल में सुवराज को 'उन्नय' कहा गया है।

(ब) प्रान्तीय शासन : शासन की सुविधा की दृष्टि से साम्राज्य कई छत्ररियों (प्रान्तों) में विभक्त था। प्रान्त छत्रपों, महारथ्यनायकों एवं ग्रामस्थों द्वारा शासित होते थे। राजाधिराज महाराज मोग के शासन-काल में तक्षशिला का प्रान्तीय शासक लिवक बुमुनाक और शहदौर अम्मिलेरा का उम्मिलक इजारा खेप के शासक थे। महाछत्रप सम्रधामन प्रथम के काल में मुराष्ट्र प्रान्त का शासक ग्रामास्य सुवि शास्य कहलक था।

(१६) स्थानीय शासन

(१) जनपद—ये छत्ररियाँ भी शासन की सुविधा की दृष्टि से त्रिलो (आहार-हार) और पौर ग्रामों में विभक्त थीं। 'हार' और जनपद^१ दोनों शब्द जिसे एक लिए प्रयुक्त किये गए हैं, क्योंकि यदि वल्कालीन अम्मिलेरा पर दृष्टिपाठ किया जाय तो 'हार' और 'जनपद' एक ही शब्द के अर्थ के लिए प्रयुक्त किये हुए मिलते हैं।

१ जनपद शब्द का कोई ठीक-ठीक अर्थ नहीं किया गया। यह एक विचार का विषय है। सूत्रकाल में जनपद भारतीय भूगोल का सबसे महत्वपूर्ण शब्द था। बरतुत भारतीय इतिहास में युग विभाग की दृष्टि से सूत्रकाल का ठीक नामकरण महाजनपद युग है। इस समय जारा देश जनपदों में बँटा हुआ था। उनको विस्तृत पृथिवी सुवनकीय के नाम से लिखिक कर ली गयी थी, जो महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में गुणित हैं। पाणिनीय भूगोल का प्रधान अंग जनपद-विभाग है। काशिका कार में गाँवों के समुदाय को जनपद कहा है—'ग्रामसमुदायो जनपदः'। यहाँ ग्राम शब्द में मगर का अर्थमात्र नमस्कृत, आदिप। बरतुत जनपद में जग और ग्राम दोनों शामिल थे।

आ० अमबाल, पाणिनीयानीन माण्डवर्ष, पृ० ५७।

(२) पौर—'पौर' शब्द का उल्लेख कश्चामन के जूनागढ़ लेख में मिलता है। भारतीय और यूरोपीय लेखकों ने पौर शब्द का अनुवाद करते हुए लिखा है—वह संस्था या राजा के समस्त नगरों से संबंध रखती हो। किन्तु वास्तव में शायद ऐसी नहीं है।^१ आर्यमिक हिन्दू लेखक पारिभाषिक शब्द 'पुर' और 'नगर' से राजधानी या राजनगर का अभिप्राय लेते थे। पौर वास्तव में नगरवासियों की एक समा या संस्था थी जिसे राजनगर की आंतरिक व्यवस्था आदि का उही प्रकार अधिकार प्राप्त होता था, जिस प्रकार आजकल की म्युनिसिपैलिटी को प्राप्त है। नगर की इस प्रकार की म्युनिसिपल व्यवस्था करने के अतिरिक्त उसे राष्ट्र संगठन या व्यवस्था आदि क भी बड़े-बड़े अधिकार होते थे।^२

पौर में एक लेखक या रजिस्ट्रार मौ दुआ करता था। वह जो लेख प्रमाणस्वरूप उपस्थित करता था, वह सर्वोत्कृष्ट समझ जाता था। राजकाज लेखों के विपरीत लौकिक लेखों में पौर-लेखक का लेख्य प्रधान या मुख्य दुआ करता था। इससे सिद्ध होता है कि पौर संस्था की नियुक्ति राजा के द्वारा नहीं होती थी।

पुर या राजनगर में नगर के व्यापारियों को भी एक समा दुआ करनी थी जिसे 'नैगम समा' कहते थे। राजनगर के व्यापारियों क संघ और राजनगर की व्यवस्थापिका संस्था में इतना अधिक संबंध था कि दोनों को लोग एक ही समझने लगे थे। रामायण में नैगम का उल्लेख तथा पौर के साथ मिलता है। किन्तु उनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है कि शानो अज्ञान होने पर भी परस्पर संबद्ध जान पड़ते हैं।^३

१ हिन्दू राजतंत्र, पृ० ११६।

२ पृ० १२३।

३ हिन्दू राजतंत्र, पृ० १०९।

नैगम का अपना निजी अभिवेशन मवन और कायालय होता था जिसे 'ठमा' कहत थे। एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि एक घनवान और उदार व्यापारी ने नैगम ठमा क अभिवेशन में यह लिखवाया था कि गोवधन नगर के कुछ भेषियों क पास मेरा जो धत है, वह अमुक-अमुक दान-कार्यों में लगाया जाव ।^१

पाणिनि के अनुसार निगम शब्द का जिसमें नैगम शब्द निकला है, सम्बन्ध होता है—वह स्थान या यह जिसमें लोग जाठ हैं। वह राजधानी का ऐसा स्थान रहा होगा जहाँ व्यापारी और व्यवसायी लोग जाकर आपस में एक दूसरे से मिलते-जुलते होंगे। ठसी निमम से संभव लोगों की संस्था 'नैगम' कहलायी था ।^२

शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्राम शब्द का एक अभिलेखों में कई जगह उल्लेख है परन्तु उसक शासन क बारे में क प्रायः मौन है। संभव है वे पौर गणपद संस्था से सम्बन्धित होती हों। इन अभिलेखों में जब जब भी ग्रामों का उल्लेख आया है, तब-तब दान बगैरह कल्याणकारी कार्य उनसे जुड़े मिलत हैं।

राजों के शासन की मुख्य बात यह रही है कि उन लोगों न राज कर्मचारियों की नियुक्तियों में 'वाप्यता' का प्रयुगता थी। इसमें उन्होंने किसा जाति-बिरोध को ही उस क्षेत्र में पनपन नहीं दिया। इन समय का अन्त उदाहरण उनक अभिलेखों में मिलता है जहाँ वे कोण प्यद-मद पर ब्राह्मण श्रेय की, ग्रामात्म-मद पर पहलव मुदिशाय की एक सेनापति-मद पर एक ग्रामीर की नियुक्ति करत हैं।

इस पूरे परिप्युद का ध्यान में रखते हुए हम यही उपसङ्गीय संकेत करेंगे कि राजों का समय राजसंभारमक था, जो वैश्व-उत्पत्ति विज्ञान से परे था। वैश्व-उत्पत्ति-विज्ञान में राजा का निवापन प्रजा नहीं देवता करता है। ऐसी रथा में राजा मनमानी भी करने लग

१. पृष्ठ ६८।०१।

२. हिन्दू शासतंत्र ५ २११।

जाता है और प्रजा को उसके विरुद्ध बोलने का अधिकार नहीं रहता, क्योंकि राजा बुरा है का मतलब होता है प्रजा में कोई दुष्कर्म किया है। इस दुष्कर्म के प्रायश्चित्त-स्वरूप देवताओं ने ऐसे राजा को मेवा। ऐसी कोई व्यवस्था हम शुक्र राजनीति और शासन-प्रवृत्ति में नहीं पाते। राजा और राज्य हमेशा प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए काम करते थे। उनके कामों का मूल में जनकल्याण की भावना विद्यमान रहती थी। सुराष्ट्र प्रदेश की विद्रोही पौर-जानपद-निवासियों को सुरा करने की दृष्टि से ही ब्रह्मामन ने मुदिशाल की उस प्रदेश का आमात्य (प्रान्तीय शासक) नियुक्त किया था।^१ जन-भावना को दृष्टि में रखकर ही शुक्र राजाओं ने कुण्ड, तालाब, आरामगृह आदि का निर्माण कराया था।



१ प्रजामु इहाभिष्टाने पौरजानपदजनानुग्रहाय पार्थिवेन वृत्ताना-
मानस-सुराष्ट्रानां पासनार्थनिमुक्तेन पहलवेन कुलैर पुत्रेशा
मात्येन मुदिशालेन यथावदर्थ-धर्म-व्यवहार-वृत्तानानुराग-
ममिषर्द्धयता....

सामाजिक जीवन

शकों का भारत आगमन ऐसे काल में हुआ जो वैदिक पुनर्जागरण के नाम से जाना जाता है। भारत में आने से पूर्व वे दक्षिण और पश्चिम में दसों सभ्यताओं की तरह आगगाहों की खोज में इधर-उधर भटकते थे। ऐसे लोगों का मन कोई धर्म होता है और न धर्म। वे अति संस्कृति से प्रभावित होते हैं उसके अनुरूप अपने को बाल्य होते हैं।

भारतीय समाज की रचना कर्म-सिद्धांत पर हुई थी। इस समाज रचना में शकों की मुख्य रचना प्राप्त थी। अराजकता का यह सिद्धांत कास्त्रो में इतिहासी विचारों के जोर पकड़ने के कारण जन्म में ले लिया। इनके लोगों के आत्मस्वार्थता की भावना स्वयं नहीं। परिणाम-स्वरूप ईसवी पूर्व छठी शती में धार्मिक (आत्मा का) धर्म-निश्चय हुआ। इन्होंने मानवता का प्रचार किया (किन्तु वे भी जन्म सिद्धांत का मष्ट कर्म में पूर्व रूप से लालन ही एक अन्तर्गतता की भावना पनपती रही) अन्तर्गतता लीग थी एक ही धर्म-भावनाओं को दानत गए। समाज की ऐसी ही समस्या में, ईसवी पूर्व द्वितीय के अंत तथा ईसवी पूर्व प्रथम के अन्वेषण में, शकों ने भारत में प्रवेश किया।

शकों के प्रारंभिक हमले अत्यंत विफल हुए। अस्सल का आक्रमण जिसका बगान गार्गीरिहा का मुगपुराण करता है अत्यंत दारुण था।^१ इस आक्रमण से भारतीय राज्य मष्ट हो गए, साम्राज्यों के प्रान्त विगट गए, शकों की पारंपरिक सीमाएँ विस्तृत हो गयीं। पाटलिपुत्र से पुरानों का लूट-पाट लोभ हो गया। आचार अत-विच्छेद ही

गया। ब्राह्मण पारिवारिक का आचरण करने लगे और राज प्राण्य से बराबरी का दावा।

उनके सतत आक्रमणों से सूत्रों और बर्मशास्त्रों को बचा-बचवस्था बिलार गयी। सूत्रों ने जो अनेक प्रकार की श्रृंखलाओं से विभिन्न बर्ष स्तर प्रस्तुत किये वे इन धोटों से विभ्रंशित हो गए। इतीहिए भारतीय समाजशास्त्रियों ने उनको बबर और म्लेच्छ कहा।^१ उनमें बर्ष-बचवस्था न थी और वे इत भारतीय विविधता को समझ भी न सके। उनका आहार-विहार एक साथ होता था। विवाह आपस में निर्बाध होता था। महाभारत में भी ऐसा बचन मिलता है कि पंचाब में रहने वालों का इतना नैतिक पतन हो गया था कि उनको अपनी माँ तक नहीं सुझाई पड़ती थी।^२ पंचाब में इस प्रकार के अनैतिक व्यापार इन्हीं विदेशियों के कारण हुआ होगा। वह प्रदेश विदेशियों के अधिकार में अधिक दिनों तक रहा।

ब्राह्मण समाजशास्त्रियों ने वृत्ति शकों को म्लेच्छ कहा था उनको चातुर्वर्ण्य स्थान मिलना दुष्कर था। अतः उन्होंने ऐसे समाज और धर्म का लोचन करना शुरू किया जिसमें जाति-व्यति एवं बर्ष भेद का कोई विचार न होता हो। ऐसे समाज एवं धर्म का बर्णन उन्हें अश्वेदिक समाज और धर्म में मिला। संभवतः इतीहिए प्रारंभिक शकों का हम अश्वेदिक धर्मों के विकास एवं समझ में संलग्न पाते हैं।^३

१ वृषभस्य गता लोके ब्राह्मणवर्णनेन च ॥

पौरुकारचौद्रविद्या काश्याया बचना शका ।

पारदाः पहलवारनीनाः किराता बरदा लयाः ॥ मनु, १०।४६, ४४।

२ मैकघन, अर्ली इंपायल आन्ड सेन्ट्रल एशिया, पृ० ५५।

३ महाभारत ५।४४।

४ द्रष्टव्य, अध्याय "वर्णमिक जीवन"

परन्तु यह वैदिक पुनर्जागरण का काल था। वैदिक धर्मापलम्बी यह नहीं चाहते थे कि अबैदिकों के सामने उनका शयोरोग्य धम नीचा बिले। अतः उन्होंने भी अपने समाज में विदेशियों को सम्मिलित करने का विधान किया। उन्होंने इन शकों को मूलतः क्षत्रिय ही बतलाया जो ब्राह्मणों का संरक्षक छूट जाने के कारण बपलत्व को प्राप्त हुए।^१ जो विदेशी वहाँ अपनी राजनीतिक शक्ति स्थापित करने में सफल हुए वे वे सब अब क्षत्रिय वर्ग में सम्मिलित कर लिए गए। ब्राह्मणों के संरक्षक में पुनः आत्म संतुष्टी ब्यक्तत्वता आती रही। अब वे भी वैदिक धर्मों की आराधना करने लगे। उनका पुरोहित ब्राह्मण धर्म में सम्मिलित कर लिए गए। प्राचीन आर्य विचारधारा को उन्होंने भी अपना लिया था। मुस्तान के पूर्वमंदिर में राजकीयी ब्राह्मणों को पुजारी के रूप में नियुक्त करना इसका स्पष्ट परिचायक है।^२

(१) वर्णाश्रमबन्धुता :

ब्राह्मण समाजशक्ति की व्यवस्था से अब शक श्लेष्म नहीं रहे थे वे भारतीय हो चले थे और उनमें भी बगम्बन्धुता होने लगी थी। मग, मागध मानस, मग्धग धार बल थे।^३ किन्तु इनमें सं मागध, मानस और मग्धग बणों के बारे में हमारे पास अल्प कोई दृश्य प्रमाण नहीं है। 'मम शकों के पुरोहित होत थे यह स्पष्ट है।'^४ धार

१) शका यवनकाम्बोजास्ताम्ना क्षत्रियजातव-

बुधस्तत्परिगता ब्राह्मणानामवशानत् ॥ कनु० प० ६८।२१।

२) अश्विप्य, शोच, बराह आदि।

३) मगार्य ब मागधाम्बैद मानसा मग्धगास्तथा,

मगाः ब्राह्मण भूविष्ठाः मागधा क्षत्रियास्तथा

वैश्यास्तु मानसास्तथ शकारतगान्तु मग्धगा ॥ विष्णुपुराण ।

४) महामात १।२; कृष्णपुराण ४८।३९।

तीय समाज में उनका पर उच्च ब्राह्मणों के समकक्ष समझा जाता था। आर्य भी भारतीय समाज में ब्राह्मणों में एक ऐसा वर्ग है जो अपने को बड़े गण से शाक्यद्वीपी कहता है।

समाज में वहाँ तक बच्चों के मान और स्थान का प्रश्न है ब्राह्मण उर्बोपरि समझा जाता था। रुद्रहामन के जूनागढ़ शैल में एक जगह गो और ब्राह्मण की रक्षा करता हुआ रुद्रहामन को बतलाया गया है।^१ इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज में ब्राह्मणों का उच्च स्थान प्राप्त था। अब देखना यह है कि क्या वे ब्राह्मण भारतीय ब्राह्मणों की मूर्ति कहें भी सके। मानव बमसूत्र ब्राह्मणों में निम्नलिखित गुणों का होना बतलाया है—

अध्यायन अध्यापन यजन याजन तथा

दान प्रतिग्रहश्चैव सत्कमान्यप्रवृत्तनाः।^२ १५५

अब देखना यह है कि वे गुण इन ब्राह्मणों पर वहाँ तक बरि ताप होते थे। प्रतिग्रह करते हुए शुद्ध ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है। जिला शाहाबाद में प्राप्त देवबरशाह अभिलेख से विरित जाता है कि बहुत काल पूर्व 'भोजक' नामक ब्राह्मण वहाँ रहते थे मागपरजय वाक्ताहिस्यदेव न उल्लेख का 'भोजक ब्राह्मण' सुयमित्त का नूर्वपूजन के निमित्त दान कर दिया था। बाद में वह यौव अर्ध विषमन नामक राजा द्वारा 'भोजक क्षत्रिय' को दान कर दिया गया।^३

शुद्ध अथवा मग' ब्राह्मणों का दूसरा नाम 'मात्रक' भी था।^४ मानिसर शिल्लिपत्र में 'मात्रक' शब्द का अर्थ बतलाते हुए कहा है—
नूर्वपूजको वा पुरादितो का एक वर्ग जो मगों के उत्तराधिकारी थे

१ महासूत्रपरु रुद्रहामना वर्णतदृष्ट्याय मी- ब्राह्मणशैल धमकीर्ति
दृष्टव्यं —

२ का ई० १।२१५।

३ गविम्पपुराण १४७।२६।

तथा मौज पाति की स्थितों एवं मर्गों के साथ विवाह के परिणाम से ।^१ इत प्रकार चैता कि बेपबरखाक अभिलेख से विहित होता है यह ब्राह्मण भी प्रतिग्रह आदि पर निर्भर करते थे ।

राज्य अधिन, बैरव और शुद्धि बारे में हम अर्थकार में हैं । मनु संहिता राजा को अधिन की संज्ञा देता है ।^२ जूनायद लेख में भी राजा रामन को धात्र गुणों पूर्ण कहा गया है ।^३ किन्तु ध्यान देने योग्य बात यही यह है कि राजा अधिन ही हो यह उस काल को तथा मार तीव्र इतिहास को दरगत हुए नहीं कहा जा सकता है जबकि हम शास्त्रानुसार राजा का अधिन ही माना चाहिए ।

(२) विवाह :

आधम म्बरस्था का समाज में कहीं तक पालन होता था इतना तो ठोक-ठोक पता नहीं है किन्तु उस काल में भी विवाह आदि होत था । धर्म और रचन की दृष्टि से विवाह का संबंध जीवन के पुनर्वासों से था । धर्म के अध्यास और संस्कार के लिए ब्रह्मचर्य आधम की व्यवस्था थी । धर्म की उपलब्धि तथा काम के संबन्ध के लिए गार्हस्थ्य और उसके आधारभूत विवाह की आवश्यकता थी । यदि समाज विज्ञानी शब्दों में कहा जाय तो विवाह का उद्देश्य तथा कार्य (१) स्त्री पुरुष के बीच संबंध का निर्वहण और विकास, (२) संतान का उत्पत्ति, संरक्षण, पालन तथा शिक्षण और (३) नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था का पालन था । विवाह धाम सभी के लिए अनिवार्य था । एक आधम से दूसरे आधम में जाते का मार्गदा मपमान्य था और विद्वान्मत्त काल में म्भ्यास वर्धित था यद्यपि इसके अपवाद स्वीकार्य थे । स्वयं पुरुष रथा के बिना आधा ही मनुष्य

१ संस्कृत इयतिथि टिप्पणन ५ पृ ७२३ ।

२ मनु० १०/४३, ४४ ।

३ 'शास्त्रतत्त्वमी चारण-मुपलब्ध-वर्षीरधिमन् रक्षणाय प्रतिषेधत ।

माना जाता था। महामारुत की निम्नलिखित छन्दोर्वा उद्धृष्टी हैं जिसमें 'यह की यह नहीं कहा गया है, यद्यपि यह कही जाती है।' 'मार्वा मनुष्य का अर्द्धांश और भेष्टतम उल्ला है। मार्वा त्रिबर्ग (बर्म, अय, काम) का मूल और संतार से तरब का साधन भी है।'^१

वर्माशास्त्रों और स्मृतियों में वर्णित अष्ट प्रकार के विवाह इस काल की स्मृतियों का गणना के लिए मान्य थे, यद्यपि इनमें से कई एक अप्रचलित और वर्जित हो रहे थे :

१ वैशाख—यह निम्नतम स्तर पर था जहाँ सुता, मत्ता, प्रमत्ता कन्या से एकान्त में उपगमन किया जाता था। इसमें वृत्त और पशु बला हीनों का प्रयोग होता था।

२. राक्षस—जहाँ कन्या के संबंधियों की इत्था खेदन तथा मेहन कर उसको रोती हुई बलापूर्वक घर से हरबन्ध विवाह किया जाता था उसे राक्षस कहते थे। इसके लिए मुद्र विवाह और पशुबल आश्रय था। इसीलिए इसको रक्षस कहा गया।

३ गांधर्व—जहाँ ब्रह्म और कन्या का स्नेहका से अत्यन्त संयोग होते थे उसे मीम्व कामतमय गांधर्व विवाह कहा जाता था।

४ आसुर—जहाँ कन्या के संबंधियों तथा कन्या की शक्त्यानुसार बल लेकर स्वच्छेदतापूर्वक उसका महण किया जाता था उसे आसुर कहा जाता था।

५ प्राजापत्य—जहाँ माता-पिता या संरक्षक 'दुम हीनों काय पराजितकर कर करकर कन्या की प्रदान कर देते थे उसे प्राजापत्य कहते थे।

१ न यद् यदभिव्यक्तुं द्वितीया यदनुप्यते। शान्ति २४४।६६।

अर्द्ध भाया मनुष्यस्य भाया भेष्टतम उल्ला

मार्वा मूलं त्रिबर्गस्य मार्वा मूलं त्रिष्यतः। आदि ७४।८०।

२. मनु० ३।२१।

६ आर्य—यहाँ एक वा दो जोड़े गौ के घर्मत (यज्ञाय अथवा यानाय) बर से होकर विधिवत कन्या प्रदान की जाती थी उसे आर्यधर्म (श्रुतिविवाह) कहते थे ।

७ दैव—कन्या को अलङ्कृत कर यज्ञकार्य में लगे हुए श्रुतिज को दिया जाना दैव विवाह कहलाता था क्योंकि दैवधर्म से इसका संबंध था । इच्छित्व इसको दैव कहते थे ।

८ प्राण्य—जब कन्या का पिता अथवा अधिमावक उसको भली भाँति बख्तामूख से मुक्तचित्त कर विद्वान तथा आचारवान बर को स्वयं बुलाकर और उसका आहर करके कन्यादान करता था तब उसे प्राण्य विवाह कहते थे । विवाह की यह सबसे सात्विक और सरल प्रथा थी । अतः भारतीय इतिहास के प्रायः सभी कालों में यह अधिक प्रचलित रही ।^१

उप्युक्त आठ प्रकार के विवाहों के अतिरिक्त स्वयंवर भी एक प्रकार था ।^२ इसमें कन्याओं की अरना पति चुनने का अधिकार प्राप्त रहता था । जो कन्या स्वयं अरना बर चुनती थी उस स्वयंवरा कहते थे । पमशास्त्र के अनुसार शत्रुमती होने के तीव्र वर्ष के मीतर यदि पिता अथवा अधिमावक कन्या के विवाह की व्यवस्था नहीं कर पाते तो कन्या को अधिकार था कि वह अरना बर स्वयं चुने ।^३

(३) बहुपत्नी प्रथा

यह प्रथा बहुत प्राचीन काल से समाज में प्रचलित थी । किन्तु प्रचलित होत हुए भी समाज इसको देव दृष्टि से दृष्टता था । अधिकोद्यत यह राजपुत्रों तथा बनिज बरों में ही पाया जाता था ।

१ डा० राजबहा पादशेय, हि० सा वृ० इ० १।११६ ।

२ रि० इ० ५।४२ ।

३ श्रीशि बभारपुत्रुर्मात कादयेत विदुशाठनम्
वतस्यतुमे बरै तु विदेत वदस्य पतिम् । श्री० ब० इ० ४।१।१४ ।

शकों में महुनसनी प्रथा का बर्चन हेरोडोटस करता है।^१ पेरिप्लस के अनुसार गहवान का रनिबाठ रिशकों से भरा रहता था।^२ मूनागाड़ अभिलेख में ब्रह्मदामन को 'नरेन्द्र कन्या स्वर्बवगनेक माक्ष्यमासदाम्ना' कहा गया है।^३

(४) अठर्वातीय विवाह

वैदिक साहित्य में इस प्रकार के विवाहों का उदाहरण मिलता है जिसमें ब्राह्मण अधिय की कन्या से विवाह कर लेता था।^४ किन्तु सुधी धीर स्मृतियों के काल से सबल विवाह पर दण्ड बिना माने लागू। तयापि अनुनोम (उत्तम पक्ष के बर का अधर बरा का कन्या के साथ) विवाह वैध माना जाता था। इस संबन्ध की कान्हेरी अभिलेख स्पष्ट करता है यहाँ शाक्यर्षि को ब्रह्मदामन का यामता कहा गया है।^५ शाक्यर्षि ब्राह्मण था।

(५) स्त्रियों की दशा

वैदिक युग में पत्नी पति के साथ बैठकर बस करती थी।^६ उतक बिना पति का बन्ध पूरा नहीं हो सकता था। किन्तु २ • ३ • ५ में उतका इतना अधः पडन हुआ कि वह शूद्रा बना दी गयी।^७ उतकी इस दुरवस्था का मूलकारण पहले तो कर्मकाण्ड प्रधान बर्न था, किन्तु

१ हेरोडोटस ४।७८।

२ डा० महीराप्पाव, दि शकाल इन इंडिया, पृ ३६।

३ एपि० इं ८४२२।

४ श० भा ४।१।५।

५ डाके० मर्से व ई० ५।११।७८।

६ शू० ५।२५।१ में मत्स्य की व्याख्यानुसार विरहवारा प्रसक्तल बन्ध करती है। शू० १०। ८६। १ में स्त्रियों क बन्ध में याम की पत्नी है।

७ हरिदत्त मन्मथकाण्ड, हिन्दू परिवार मोम भा, पृ० १३१

बाद में वैराग्यमूलक धर्म भी सहायक हुआ।^१ इस प्रकार नारी की धारणा दिन-प्रति दिन हीन होती गयी।

सुषुप्त के पूर्व स्थितियों की शिक्षा की व्यवस्था थी। बेटों के युग में कन्या की ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करने का अधिकार था, उसका उपनयन संस्कार होता था और उसे उत्पत्तन् आर्यात्मिक एवं सस्त्र शिक्षा मिल सकती थी। सांगानुप्रा विरयता, योग आदि स्थितियों में संवद्रष्टा श्रुति पद को प्राप्त किया था। उपनिषदों में अनेक विदुषा और मन्त्रवादिनी स्थितियों का उल्लेख मिलता है। प्रायः रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों के युग तक यह परंपरा चलती रही। रामायण में कीरति और महाभारत में द्रौपदी कमल संवद्रिद् और पंडित कही गयी हैं, परन्तु बाद युग के आरंभ हाट ही धार्मिक संस्था में भिक्षुणी बनने और तदनुसार पवन-गहलब-शक-गुणादि के आक्रमण के कारण स्त्रियों की उत्पन्न शिक्षा के स्थान पर उसकी सुरक्षा तथा गौरवीयता में न्यान ब्रह्म किया।^२

गर्गी मंत्रिता के युगपुराण में उल्लेख है कि इन आक्रमणों से विशाकर अम्लत शक के बाद, भारतवाप बल-व्यवस्था सचचा विनष्ट हो गयी। इन बस्तुस्थितियों में जब अनेक आशुल हा गया, समाज विपन्न हो गया तब इस सामाजिक और सामाजिक विप्लव के परिणाम को संभालने के लिए भारतीय समाजशास्त्री विकसित हो उठे। गमपत्रों में समाज को फिर से त्रिपम हेम की व्यवस्था की गयी। इस वैदेशिक प्रभाव और विप्लव में प्रायः ही संकट में पड़ ही गए थे, स्त्रियों की भी बड़ी बुराई हुई। उनकी विपत्ति का दृष्ट और समाज की विपत्ति गममन्त्रकारों में उनका पुनर्गठन का। परन्तु उनकी धारणा स्थितियों के प्रभू निर्माण सिद्ध हुई।^३ मनु के अनुसार "एतद् ही कन्या

१ शशासन भा० २७१४ "अथर्व वे पत्नी पद्विर्विहित।"

२ हिंदू परिवार मामला, १० १०० कु० नं० मं० २२।

३ डा उगाप्पा, भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, २६०-६

का आचार्य, विवाह ही उसका उपनयन संस्कार पति की सेवा ही आश्रमनिवास और घरस्थी के काम ही दैनिक धार्मिक अनुष्ठान था ।^१

पत्नी को घरस्वामिनी का सा अधिकार प्राप्त था । इसी अधिकार के कारण महासत्रय राजसूत की आश्रमस्थि मयुरा सिंह शीर्ष लेख^२ लिखता लकी थी और उपब्रह्मण की पत्नी बानादि कार्यों में अपने पति के साथ रहती थी ।^३

स्त्री के अनेक रूपों में मातृरूप सबसे अधिक आदरणीय और महत्त्व का माना जाता था । वास्तव में माता होने ही में स्त्री-जीवन की शार्पकता समझी जाती थी । माता होने के साथ ही स्त्री का घर में स्थान और महत्त्व दोनों बढ़ जाते थे । महाभारत में माता की मूरि-मूरि प्रशंसा की गयी है । माता के समान कोई शरण नहीं और न तो उसके समान कोई गति । माता के लक्षण कोई शत्रु नहीं और न उसके बराबर कोई मित्र ।^४ लक्ष्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और माता से बढ़कर कोई गुरु नहीं ।^५ मनुस्मृति में स्त्रियों के ऊपर कठोर निर्बंधन का विधान है, किन्तु उनके अनुसार ही माता का स्थान बहुत ऊँचा है वरुण उपास्याओं से आचार्य भेष्ट होता है, शत आचार्यों से पिता । माता-पिता से सहस्रगुना भेष्ट होती है ।^६ संभवतः

- १ वैशालिको विधि : स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरो बालो पदायोऽग्निपरिक्रिया ॥ मनु० २।१७ ।
- २ पति ८ ६।१४१ ।
- ३ बही, ७।११।७१; ७।११।७२ ।
- ४ नास्ति मातृलमा दाया नास्ति मातृलमा गतिः
नास्ति मातृलमा शत्रु नास्ति मातृलमा मित्रा ॥ शांति, २६७।३१ ।
- ५ नास्ति लसाम्परो धर्मो नास्ति मातृलमा गुरुः शांति, ३४३।१७ ।
- ६ उपास्यायत्तुपाचार्यः आचार्याणां शत पिता ।
वहसं तु पितृमाता गौरवेयतिरिष्यते ॥ मनु० २।१४६-४७ ।

इसीलिए अपने नाम के आगे लाग अपनी माता का नाम लगाने लगे थे। सातवाहन वंश का इतिहास माना के प्रति मन्त्रित प्रदर्शित करने में वा अपकी है। महात्तव्य शोकास के कास के मपुरा अपा-गवद् शेल में भी इत तरह का वर्णन मिलता है जहाँ अमोहिनी नामक स्त्री के पुत्रों में अहत पूजा के निमित्त अपागवद् का निमाल किया था।^१

भारतीय समाज-व्यवस्था पर इत शक आक्रमण का एक प्रमाण भी पढ़ा जिससे बाल-विवाह का आदिमाव हुआ। विदेशी छुटेरों म अरनों तद्वत् कन्याओं की रक्षा-हेतु ही इतका विधान मवा किया था; क्योंकि पति का अपनी पत्नी को रक्षा कर लक्ष्ना अनेक वस्त्रा बाले पिता का अपेक्षा तद्वत् था। संभवतः इसीलिए लूणकारों ने इत मूम की रचना की

प्रवृद्धान्निर्गता कन्यामनुकालमवाश्रिता
श्रुतमत्वा हि विष्णुत्वा शोचन्ति त्वरमप्युति ।

वशिष्ठ

अवात् पिता की अरना कन्या को तत्क युवती होने स पहल ही, श्रुतमती होने से वृष ही शादी कर देनी चाहिए; यदि वह श्रुतमति होने पर भी अरने पर रह जाती है तो निरा पाय करता है। एक स्वल पर तो अग्निहा की, वा अमी टीक से करका पहनना भी नहीं जानती, ही भेष्य कहा गया है।^२



१ एमि० ई० १।२४३-४४।

२ मम्मिका तु भेष्य। गोमिल, १।४।

आर्थिक-जीवन

भारतीय समाज ने जब तक शकों को बर्बर समझ उन्होंने वेसा ही (बर्बरतापूर्ण) परिषय दिया । उन्होंने देश को रीढ़ वाला । गाँव के गाँव उजाड़ डाले, स्तंभिहानों में आग लगा दिया, फले आम काच अम्हाड नाम का महाबली पनुभूल से अस्वन्त शक्तिनाम हो उठगा आर पुष्पनाम धारण करेगा । रिक्त नगर की वे लर्षया आक्रान्त कर लेंगे । वे सभी अय सोछुप और बलवान होंगे । तब वह विदेशी साहित्य अम्हाड रक्तबल के बरप धारण कर निरीह मजा का क्लेश देगा । पूर्वस्थिति की अचामामी कर वह पनुपशों को नष्ट कर देगा ।^१

किन्तु बाद में जब भारतीय समाज ने उनको प्रभय दिया और उनकी मूलतः अग्रिय बतलाया जा ब्राह्मणों का मन्थन न रहने से बुधत्व को प्राप्त हुए वे^२ तो उनमें भी अम-विमानन हुआ ।^३ अम शास्त्रों के अनुसार कृषिकर्म स्थापारादि यह भी करने लग । कर्म के अनुसार इमलिये क्योंकि यह ब्राह्मणों के समाज में प्रविष्ट हुए वे आर ब्राह्मणों ने अग्रन समाज में प्रवृत्त कर उनको गौरवामित

१ पुगपुराण ६१-६७ ।

२ शका पवनकाम्पात्रस्ताला अत्रियजातकः ।

३ बुधत्वर्ष परिमता ब्राह्मणानामवशानत् ॥ अनु प ६०-२१ ।

मगात्ब मायपाश्चैव मानसा मन्वयान्तया,
मगाः ब्राह्मण्य मूषिष्ठा मागया अत्रियात्तया

वैश्यान्तु मानसा स्तेन शुद्रस्तेयान्तु मन्वयाः । वि०पु० २।१।६६।

किया था। मग्नवत हसीलिये इद्रबामन प्रबन अपने जूनागद छेल् में बार-बार करता है—बमानुरागेन, मयाषध्याप्यैर्बलिशुष्कमागे., बर्मन्दीनिबद्वयर्ष्यं च अपीदमिष्या कर विष्टि-प्रणयक्रियाभिः आदि।

(१) कृषि—भारत प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान बस रहा है। कृषि की झार राखा प्यान मी देठा था। रज्यमाभिषक्त के समय ठससे इम बाल की प्रतिज्ञा करबायो जाता थी कि वह राज्य को कृषि, धेय, सम्यन्ता एर्ष्य वर्धन का प्यान रखागा।^१ धमशास्थो ने कृषि से होने वाला आय का मी निरिखत कर दिवा था। धमशास्थो मे रागा को 'पदभागमत कहा गया है। 'भाग का तात्पर्य वहाँ सेती सम्बन्धो कर से है। भाग उस भूमि को कहत हैं जिस पर जोतने वाले का मालिकाना रहता है और शरब उसस उठकी सुरक्षा का छठा भाग भया था, पर कर्मी-कभी रिमिन्त बशास्त्रो मे यह 'कर पद म' जाता था। 'पेपमात्रिका' पर कर की मात्रा कम था। देवमात्रिका उस भूमि का करते हैं जिसको निचाई प्रकृति स्वय करत हा। धर्यमात्रिका पर कर की मात्रा राज्य निरिगत करता था क्योंकि इन प्रकार की भूमि की निचाई का प्रत्येक राज्य स्वयं करता था। परिष्कत क अनुसार काटियायाइ और उनक आगवाग का भूमि में गहू पान, गन्ना घासि का फलन हुआ करती थी।^२ गहू उनका मूय पाय पचाय था।^३ फिर य ऐम ग्यानों में पन मी य जहाँ गहू को पैदावार बहुत जाती थी।

१ णि० इ० ८५४२ आगे।

२ इयं त गहू। ... पत्तानि पमनीं पुषा सि पकण्।

कृष्ये स्वा छमार स्वा रस्ये स्वा वीताय स्वा ॥शुभाय ५।२।।१२५।

३ पं० दि २० २।४३१।

४ पादुलीका पदुल्यार्वीना सुभीका मयनाः शुका

मोतगोपूममाष्ठीकशरदरबन्तरीनता ॥ निरिमा रगान

(२) शिल्प—कृषि के बाद आर्थिक जीवन का आधार शिल्प था। शिल्प का तात्पर्य यहाँ उद्योगों से है। प्रायः बड़े-बड़े शिल्प राज्य के हाथ में होते थे। उनका संयोजन राजकीय विभागों द्वारा होता था। देश के आर्थिक शासन के हेतु राज्य को उनसे शिल्प-सम्बन्धी प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता था और साथ ही उनसे राज्य की आय भी बढ़ती थी। महाभारत में कहा भी गया है :

‘व्यापारियों की उत्पादन-शक्ति को तथा प्रोत्साहित करते रहना चाहिये। वे लोग राज्य की बसवान बनाते हैं, कृषि की बढ़ि करते हैं और व्यापार बढ़ाते हैं। इसीलिए बुद्धिमान राजा उनके साथ बहुत ही दया और प्रीति का व्यवहार करते हैं।... राज्य में व्यापारियों और बणिकों से बढ़कर और कोई सम्पत्ति नहीं होती।’

जमझा और फर परिचयमात्र भारत का मुख्य उद्योग था।^१ बदि शकों के वेपमूपा पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि यह उद्योग उक्त काल खूब फला-फूला होगा। वे लम्बा आबरकाठ पहनत थे जो ठीक आजकल के मार्निंग ड्रेस की तरह होत थे जिन पर फर लगा होता था। पैर तथा कटि-प्रदेश को ढकने के लिये वे लम्बा जूता और शलवार पहनत थे।^२

बस्त्र-उद्योग भी था। बंग, पुरखु, बारासही मगध मधुरा, अपरान्त, कलिंग, बल, मैथुर आदि इत उद्योग के मुख्य केन्द्र थे।^३ इत उद्योग में अविच्छर सुलाहे लगे हुए थे जिनको ‘कोसीक’^४ कहा जाता था। मुख्य उद्योगों में आकर तथा पातु उद्योग भी थे। इससे

१ महाभारत १२।७।१८-४०।

२ महाभारत २।१५।१६, २।४८।१६।

३ मं. आर्कै. सर्वे ई० १४।५।

४ कं० हि० ई० १।४११।

५. परि० ई० ८।११।२२ आग।

मूल्यवान, हीरे-जवाहरातों की प्राप्ति होती थी। इन्द्रवामन प्रथम का कीश कानक-रजत-वज्र-वैडूर्य आदि रत्नों से भरा था।^१ परिप्लव के अनुसार भारत का लौह और इस्पात अथवा चांस की किस्म और मजबूती के लिये मराठूर होने के कारण काटियावाड़ और उसके आस-पास के बंदर से दूर पूर्वी अफ्रीका को जाया करते थे।^२ लौह और इस्पात उद्योग लोहकष (= लोहकार, लोहार) के हाथों में था।^३ (३) वाणिज्य एवं व्यापार—देश को विभिन्न प्रदेशों और नगरों से मिलाने वाली सड़कें और माग बने हुए थे। दक्षिण भारत में पंढन, नगर, नासिक, कुन्नर, कदाटक (करहाड) आदि नगर व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत में उज्जयिनी, मथुरा, कौशाम्बी आदि भा व्यापार के केन्द्र थे। व्यापारियों की कई नामों से जाना जाता था। यथा—(१) नैगम^४ (२) सार्यबाह (३) वाणिज्य (व्यवसायी)^५ (४) वसिक (व्यापार) (५) वेदेहक आदि।

व्यापार लूट पकटा था। परिचम के देशों से समुद्री व्यापार भी होता था। पश्चिम तट के प्रसिद्ध बंदरगाह मड़ोन, सोरारो, कल्याण आदि व जहाँ से जहाज पश्चिमी देशों के लिए रवाना होते थे और बाहर से जहाज आकर उतरते थे। सोरारो जिला नरहपान के अधिकार में था और उसका राजक कोई 'संभन' था।^६ इसी काल व्यापार सम्बन्धा एक पुस्तक लिखी गयी (पेरिप्लस आफ दि राधियन सी) जिसमें वाणिज्य की वस्तुओं का उल्लेख किया गया है। इस पुस्तक

१ पृ० १०५ २ भा० २ भाग।

२ क० दि० इ० २।४३४।

३ इ० क० १९।२२-२०।

४ पृ० १०५ २ भा० २ भाग।

५ भावनगर अधिलेख, पृ० २३।

६ इ० प० १६३६ पृष्ठ २९-२३।

७ पृ० २।१ ७ भाग।

के आचार पर परिचामी देशों की यूरोप, अफ्रीका और परिचामी एशिया आदि को भारत से हाथी दांत के सामान, रेशमी वस्त्र, मसाले, हीरे पत्थर आते थे और वहाँ से मुर-सुवर्णियाँ, सेल-कुशेल और उत्तम किस्म के वस्त्र आते थे।

(४) भेरिणियाँ—गोर्ब युग के समान इस काल में भी आर्थिक जीवन का आधार 'भेरिणियाँ' थी। शिल्पी लोग भेरिणियों में संगठित थे और इसी प्रकार व्यापारी भी। इस युग के अनेक ठिकाने-लेखों में इन भेरिणियों का उल्लेख किया गया है। उनसे उस काल के आर्थिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। ऐसे लेखों में नासिक का गुहा लेख-सिद्धी विशेष महत्व का है। ब्यासीसवें वर्ष में वैशाख मास में राजा चहराठ चक्रवर्ति महान के आमाता वीर पुत्र उपसहस्र ने यह गुहामंदिर अर्चुविश्व मय का अर्पण किया और उसमें अक्षयनीवी तीन हजार कायापण अर्चुविश्व तंय का दिवे, जो इस गुहा में रहने वाला का करके का लक्ष और विश्व महीनों में मासिक वृत्ति के लिये हागा और ये कायापण गोपयन में रहने वाली भेरिणियों के पास जमा किया गया। फाल्गुनी के निकाय में सा हजार एक की तर्ही सूद पर, दूसरे फाल्गुनी निकाय के पान, एक हजार, पीन की तर्ही सूद पर। और ये कायापण लौटाय नहीं जायेंगे, केवल उनका सूद लिया जायगा। इनमें से जो एक फ्री मदा सूद पर दो हजार कायापण रसे गये हैं उनसे मरे गुहामंदिर में रहने वाले बीन मिच्छुओं में से प्रत्येक को बाह्य शीघर दिव्य जायेंगे और जो पीन की मदी पर एक हजार कायापण है, उनमें कुशनमूल का लक्ष रलगा। कापुर प्रदेश में स्थित नित्यसुग गाँव से नरिपत्त के ८० पीधे भी लिये गये। यह सब निगम समा में मुनाया गया और पलाककार(लेखा रत्नमे ४५५५५) में परिचय अनुकार निवद्ध किया गया।^१

एक ही वस्तु के व्यापारी व्यवसायियों के समूहों में बनाकर रहते थे। कुम्हार^१, चेली^२, बुलाहे^३, 'नवकर्मिक' लोहार^४ आदि की भेदियाँ थीं।

भेदियाँ बैंक का भी काम करती थीं।^५ इनके पास अक्षयनीची (मूलधन) रख दिया जाता था। वह कमी छय नहीं होता था। उसके ब्याज ही से काम लिया जाता था। वे भेदियाँ जहाँ अपने व्यवसाय का संगठित रूप से संभालन करना थी वहाँ दूसरे लोगों का खयाल भी था। हर के कर में रख कर उठ पर सूब देती थीं। उनकी स्थिति समाज में इतनी ऊँची और सम्मानस्पद थी कि उनके पास खयाल में जमा होता था, जिसे फिर लौटाया नहीं जाता था, जिसका लिय सब ही महा के लिये किसी कामकाय में लगता था। यही काम छात्रफल गढ़ा रूप में बैंक करते हैं। नगर समा (निगम) में इन प्रकार का परोक्ष का वाक्यावदा निबद्ध, अविश का तरह (रजिस्ट्र^६) कराया जाता था।

(५) भेदियों का संगठन और उनका कार्य—एक संगठन की दृष्टि में भेदियों का बहुत महत्त्व था। इसके प्रधान या सभापति को भेदिन कहते थे। मानव व्यवसाय में जाति व्यवस्था और भेदियों का नियम या कानून सम्मन्वित हैं। वास्तविक रूप में वे ही लोगों का व्यवसाय का विधान भी किया है जो समूह के गुणवत्तियों के

१ लूटन लिगट नं १११७।

२ एरि० ६ ११६०।

३ एरि ६ ६१६१०२।

४ ए० क० ६१६१४२०।

५ ए० क० १२१०६०७।

६ वही।

७ जातिव्यवस्थासम्बन्धी नीतिसम्बन्ध सम्बन्धि।

समाप्त कुलपकार्य रचयिता प्रतिगद्देन ॥ १९४१ ॥

उसके निरुद्ध हो गये थे। यही कारण है कि उसका अपने कोप से धन व्यय कर उस ताल की बनवाना पड़ा।

शुद्धकालीन आर्थिक जीवन पर इस प्रकार यदि हम एक सम्बद्ध दृष्टि टाँसें तो भारतीय आर्थिक जीवन और शुद्धकालीन आर्थिक जीवन में कोई भेद नजर नहीं आयेगा। यदि अन्तर कोई नजर आता है तो वह नामकरण का है जो कि फलतः सहूलियत के लिए किया है जिसको हटाया बढ़ाया जा सकता है। ऐसा केवल काल-विशेष का दृष्टि में रहकर किया गया है। 'शुद्धकालीन' निकाल देने से वह शुद्ध भारतीय हो जाता है। इस प्रकार 'शुद्धकालीन आर्थिक जीवन' में हम भारतीय आर्थिक जीवन को ही परिष्कृत करते हैं। और वह इसीलिए क्योंकि ब्राह्मणों का पुनः सम्बद्ध उनको मिला था जिससे उनका वृषलात्न जाता रहा।

धार्मिक स्थिति

पृष्ठमूमि—पू्व वैदिक काल का वह धर्म जिसमें मानव अपने इष्ट देव का प्रायना और स्तुति करता है। रिक्ता होता या कालान्तर में ब्राह्मण क्रमकाय और रुद्धिपादिता के कारण बुरा हो गया। इन अवस्था में ब्राह्मणों का दबदबा बड़ा क्योंकि वे ही धर्म के जानकार माने गए। उनका गौरव देवताओं का था ही गया, वे भूदेव कहे जाने लगे। इन 'भूदेवों' ने यज्ञों की एक शृंखला २२२ वर्षों पारमाण्य भी बढ़ा दी। इनको अथर्व वेदों से लेकर बर्षों तक की शाने लगी। पुराहित धर्म सहायकों के साथ यज्ञ-मण्डप में विधि-क्रियाओं की रचना-रचना करने लगे। होत उद्गाता अथर्व और ब्रह्मन् उनमें मुख्य थे। ब्रह्मन् जनता उन पन्थावियों को क्या समझना जिनमें से एक में भी किञ्चित्मात्र भुक्ति से उसके लिये अनंत पारसादिक रूपों पन्थावियों का विधान था। उसमें धर्म का पूर्णतया ब्राह्मणों के हाथ में आस दिया। उसने धर्मना पुन्याय गाहक आत्मविराग और अकितरतरी डासा। बरतुत धर्म का आत्मा इमके नीचे रह गया थी और नैतिक विज्ञान का माम अवगुह हो गया था। अतएव ऐसे धर्म के विराय में एक नीचे-सादे, गामाधिक और लक्ष्मण धर्म की गात्र स्वभावतः पल पड़ी।

उत्तर वैदिक काल के धर्म में प्रतिक्रिया उनी युग में लिख प्रारम्भिक और उरनिगद् ग्रन्थों में शुरू हो गयी थी। उरनिगदों ने यज्ञों के प्रमाय के बरतने अनुभव, उरनिगद देवर के ग्यान में धर्म और अनिबन्धीय प्रथ और यज्ञों को जगद नैतिक आनरण पर पल दिया। परन्तु उरनिगदों का धैर्य शानतिक था, जो अनिबन्धीय के विषय युगम में भी उनकी नीति समझते और समझ की थी, अतएव

उसके विरुद्ध हो गये थे। वही कारण है कि उसकी अपने कोप से पन ध्यय कर उस ताल को बनवाना पड़ा।

शुक्रकालीन आर्थिक जीवन पर इस प्रकार यदि हम एक सम्पन्न दृष्टि टालें तो भारतीय आर्थिक जीवन और शुक्रकालीन आर्थिक जीवन में कोई भेद नजर नहीं आयेगा। यदि अन्तर कोई मन्तर आता है तो वह नामकरण का है जो कि केवल सदृशिवत के लिए किया है जिसका हटाया सदाया या सकता है। ऐसा केवल काल-विशेष का दृष्टि में रलकर किया गया है। 'शुक्रकालीन' निरुक्त देने से यह शुद्ध भारतीय हो जाता है। इस प्रकार 'शुक्रकालीन आर्थिक जीवन' में हम भारतीय आर्थिक जीवन का ही परिलक्षित करते हैं। और वह इसीलिए क्योंकि ब्राह्मणों का पुनः सम्पर्क उनको मिला था जिससे उनका पुनरुत्थान होता रहा।

धार्मिक स्थिति

पृष्ठमूमि—पूज वैदिक काल का वह धर्म जिसमें मानव धर्मन रूप
 देव को प्राप्त और स्तुति करके ही रिग्ना होता था कालान्तर में
 ब्राह्मण क्रमकाय और रुढ़िवादिता के कारण दुर्बल हो गया। इस
 धर्मशा में ब्राह्मणों का दायदा बढ़ा क्योंकि वे ही धर्म के जानकार
 माने गए। उनका गौरव बढ़ताओं का सा हो गया, वे 'मूर्ख' बड़े
 जाने लग। इन 'मूर्खों' ने वर्गों की एक शृंखला बान थी, परिमाण
 भी बढ़ गया। इनकी अधि कुछ दिनों से लेकर बगों तक की जाने
 लगी। पुरोहित धर्मन सहायकों के साथ बह-मण्डप में विधि-विधानों
 की बेस-रेल करन लगे। शीत, उद्गाम, अश्वयु' आर ममन् उनमें
 मुख्य थे। धर्ममीर जनता उन पवीरिनों को क्या समझती जिनमें स
 एक में भी किचित्तमात्र बुटि से उसक लिय धर्मनत पारलाधिक दयइ
 फनशाओं का पिबान था। उसने धर्मन को पूसतवा ब्राह्मणों के हाथ
 में डाल दिया। उठन धर्मना पुरपाय, साइस, आरमदिरवात आर
 शक्तिर या डाला। बस्तुतः धर्म को धर्मना इनक नीध दब गयी
 थी और नैतिक विकास का मग अवरुद्ध हो गया था। अतएव ऐंठ
 धर्म के विरोध में एक तीपे-सादे, ग्यामाधिक आर सबसुलम धर्म की
 घोष स्वमाचत चल पड़ी।

उत्तर वैदिक काल के धर्म से प्रतिक्रिया उमी युग में खिल आरण्यक
 और उपनिषद् ग्रन्थों में शुरू हो गयी थी। उपनिषदों ने वर्गों के
 प्रमाथ के बरस अनुभव, शक्तिगत हरबर के स्थान में धर्मन और
 अनिबन्धीय मय और यथों की जगह नैतिक धर्मनरथ पर बल दिया।
 परन्तु उपनिषदों को शैला वाचनिक थी, जो जनताधारण के लिये
 सुगम न थी उनकी नौनि समझीते आर समन्धर की थी, अतएव

परंपरागत धर्म का जोरदार विरोध नहीं हो सका। किन्तु उपनिषदों के बाहर कई एक सम्प्रदाय हुए जो प्राचीन धर्म के कड़े आलोचक और उग्र तथा क्रान्तिकारी विचारों के प्रवर्तक थे। इनमें सबसे पहले आर्वाकों का उल्लेख किया जा सकता है जो वैदिक प्रमाण और धर्म काण्ड के पीर विरोधी, मौक्तिक और भोगवादी थे। इसके अतिरिक्त ईश्वर-मोक्ष-माग-संबंधी विभिन्न विचार वाले, नास्तिक, संवेहवादी मौक्तिक भोगवादी, तपीमार्गी आदि सम्प्रदायों का उदय उत्तर वैदिक काल से प्रारंभ होकर जनपदों के समस्त तक होता रहा। इन सम्प्रदायों ने बौद्धिक और नैतिक जगत में काफी उपलब्धि-युक्त मन्त्राबा। इन सब के अंत में ईसा पूर्व छठी शती में जो ऐसे सम्प्रदायों का उदय हुआ जो पहले के सम्प्रदायों से अधिक स्पष्ट, संपादित और स्थायी हुए। वे भ्रमण सम्प्रदाय थे। इन सम्प्रदायों ने जन-बोली में अपने धर्म का प्रचार किया। फलतः लोगों का ध्यान श्वर आकृष्ट हुआ। परिस्थान स्वल्प अधिकाधिक लोग भ्रमण-धर्मावलम्बी होने लगे। सम्राटों ने भी इतकों प्रभय दिया। अशोक के काल में तो बौद्ध धर्म अपने देश की जाहार-बाजारी लांघकर दूसरे देशों में प्रवेश कर गयी किन्तु अशोक मौर्य के उत्तराधिकारी अयोग्य एवं धर्म के नाम पर अत्याचार करने वाले निकले। भिक्षु संघ भी ऐश्वर्यशाली हो गया था। तबत्र विद्यालय वैभवपूर्ण विहारों की स्थापना हो गयी थी जिनमें बौद्ध भिक्षु बड़े आराम का जीवन व्यतीत करते थे। मनुष्यमात्र की सेवा करन वाले, भिक्षु-वृत्ति से वैदिक मान्यन प्राप्त करने वाले और निरंतर धूम-धूमकर जनता की कल्याण के मार्ग का उपदेश करने वाले बौद्ध भिक्षुओं का स्थान अब सम्राटों के आश्रय में सब प्रकार का सुलभ मागन वाले भिक्षुओं ने ले लिया था। वैदिक सम्प्रदाय में इतकी प्रतिक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। इत काल बहुत से पराम प्रणियों का पुनर्निर्माण हुआ। गाथा और नारायणधियो फिर से मिली गयी। संस्कृत को पुनरुज्जीवित करके के लिये आत्मानन और पतञ्जलि प्रभृत

विद्वान् पाणिनि के व्याकरण पर मान्य मिले ।

किन्तु बचन-शक पहलवादि आन्मसों ने उस इतिहास को जो गुण-आल मिलाने का रद्द का मिटा दिया । ब्राह्मणों को उत्तरी भारत छोड़ कर के छत्तवाहनों की शरण में जाना पड़ा ।

बौद्ध धर्म—बौद्धिक प्रतिक्रिया के काल में भ्रमणों (बौद्धों) को परवर्धित किया गया ।^१ भ्रमणों ने विनयी जाति-जाति और वर्ग-वर्ग का विचार नहीं था बौद्धिक मार्गियों से बचना सेन की दृष्टि से विदे शियों को 'धर्ममति'^२ कहकर अपनी ओर मिलाया । विदेशी आन्मसकारियों ने किन्हीं ब्राह्मण धर्म में कोई धान नहीं मिल सका था पहल भ्रमण धर्म का ही आश्रय ग्रहण किया । भारत में शकों का पहला शासक बौद्ध ही था ।^३ लक्ष्मिला में 'योग के क्षत्र बौद्ध थे ।

मथुरा के क्षत्र सपातिवादी बौद्ध थे ।^४ महाक्षत्र रेसुसुल की आश्रमद्विती ने सर्वास्तिवादिनों के लिये स्तूप और संपरम का नियामक, करवाया था^५ । लवास्तिवाद परवादी शाला थी । तिष्यती अनुभूति के अनुसार इस वंश का संस्कारक राहुसम्राट् था ।^६ इसका प्राचीन केन्द्र मथुरा थी । बाद में यह गंगार और कर्मीर में गया । पूरे उत्तर भारत में इसका काया प्रचार था और अष्टोक एवं कनिष्क के कालों में तो इसका और प्रभाव बढ़ा ।

१ दिग्माध्वान, कावेल और नील का संस्करण, पृ० ४३४ ३४-पौ म भ्रमणशिरो वाच्यति त्र्याईं शीनारयतं वास्यामि ।

२ सुगपुराण, धर्ममात तया-पद्मा जने भोक्षगन्ति निमवा' ।

३ अ० रा० ए० लो०, १६१४, पृ० ७६१ ।

४ ए० ई० ४१५५ (भगवत शकमुनिग शरिरं प्रतिवपेति संपरमं च लवक्षुषन पुष्य)

५ ए० ई० ६१४१ (पुष म संपरम च पतु-दिमल तयल लवस्ति वपन १ एपरे)

६ दि एच आरु ईपीरियल मुनिटी, पृ० ३५० ।

वहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि इस काल का बौद्ध धर्म प्राचीन बौद्ध धर्म नहीं रह गया था। ईसवी पूर्व द्वितीय शती में जी वैदिक पुनर्जागरण (ग्रन्थोत्थान) हुआ था उसमें वैदिक धर्मों ने बौद्ध और जैन धर्म की बहुत ही अप्पहार्यों को आत्मसात कर लिया था। बौद्ध विचारों का प्रभाव इस काल के ग्रन्थों और धार्मिक विश्वासों पर भी पड़ा क्योंकि त्रिष प्रकार बौद्ध, सुष्टि के कृत्ता के रूप में, किसी ईश्वर को नहीं मानते, उसी प्रकार अन्य भारतीय ग्रन्थ भी ईश्वर को सुष्टि-कर्ता के रूप में नहीं मानत। किन्तु बौद्ध वहाँ ईश्वर की सत्ता को मानते ही नहीं वहाँ अन्य भारतीय ग्रन्थ ईश्वर की सत्ता से पूछत मुक्त नहीं हो सके हैं। सांख्य योग तथा मीमांसा ईश्वर-कृतत्व में तो विश्वास नहीं करते, परन्तु उसकी सत्ता में विश्वास करते हैं।^१

धार्मिक क्षेत्र में भी इसी तरह परिवर्तन हुआ। वैदिक धर्म में प्रकृति की विविध शक्तियों के रूप में ईश्वर की पूजा की जाती थी। पर अब उनका स्थान उन महापुरुषों में ले लिया गिनका कि नक्षत्राधारण में अपने लौकोत्तर गुणों के कारण अनुपम आधार था। श्रृंग-काल में त्रिष सनातन-वैदिक धर्म का पुनरुद्धार हुआ, उसका उपास्य देव ब्रह्मदेव, संकर्यस्य और शिव थे। बौद्ध और जैन धर्मों में जो स्थान शक्तिशाली और तीर्थकारों का था, वही स्थान इस सनातन धर्म में इन महापुरुषों का हुआ। इन धर्मों के अप्पहार्य गुणों को अपना लेने से वैदिक धर्म का प्रभाव बढ़ गया था। परन्तु हम कई विद्वानों का वैदिक धर्म में हीनत्व पाते हैं। देखिबाहार पंशय हो गया था।^२ इस प्रकार बौद्ध अपना प्रभाव लो ग्ने थे। इसका उद्देश्य हुआ था। अपनी लोर्ड हुई कीर्ति का पुन प्राप्त करने लिये व दिग्गार विमर्श

१ म्या० सू० ४।१।२।

२ डी सी० ठरकाट, डिसेम्बर ईरकृष्णत, १।१०-११।

करने लग गये थे। तर्वास्त्रिवादिबो (वेरवादिबो) को धरने विचारो मे परिवर्तन करना पडा। तर्वास्त्रिवादी अधिकतर पुस्तक-सिद्धान्तररक थे। "तक और दशन जन-विश्वास मे दूर होता है। जनता धरने उपास्य के व्यक्तित्व का सबसोकन साफार रूप मे करना ब्यादा पमम्ब करती है। इस तम्ब को तर्वास्त्रिवादिबो न तमम्ब।^१ परिलामस्वरुप बुद्ध का अनेकानेक उपास्य मूर्तियाँ कौरी जाने लगी।

मिथु संघ मे बह मतमेर बुद्ध को मृत्यु क बुद्ध ही कालाररन्ध्र प्रारंभ हो गया था। बह मिथु संघ किसकी स्थापना बुद्ध न एक संघठन के रूप मे की बा अशोक क कस्त तक आत आत १० भागो मे बँट गया। इनमे दो दल थे—महासायिक और वेरवादी। वेरवादी पाठेय्यक कह गये और महासायिक प्रार्थानक।^२ द्वितीय महासंगीति मे प्रार्थानक मिथु अपर्मबारा आर पाठेय्यक बमबादी निदिधत क्रिय गय। मिथु धर संघ क बाहर मी रह नकठ थे। ततीय बौद्ध संगीति मे इस अनुशासनधानता पर रोक लगाया गया। राजा अशोक मीय वेरवादी (पाठेय्यक) विचारो का था। स्वर्ब उक्तम अपर्ने थिला खेत मे पीरणा किया कि ना मिथु आर मिथुमि संघ क नियमो का पालन नही करेग, उनको मिथु संघ स निष्काधित कर दिया जायगा।^३

१ महापान का जन्म होने पर तर्वास्त्रिवादिबो को हा दानबानी फहा जाने लगा था। बाद मे तर्वास्त्रिवादी महापाना हो जाने हैं। अनुर्थ महासंगीति के बुद्ध से आभार्य पहले तर्वास्त्रिवादी थे, बाद मे महापानी हो गये। अनुर्थु पहले तर्वास्त्रिवादी थे बाप मे महापानी हुए धरदपोर और अरुण मी पहले तर्वास्त्रिवादी था।

२ भरतनिह उपास्यार, बौद्ध दशन तथा अन्य माय्ताय दशन, पृ० ५४६।

३ ए थुला भिगू बा भिगूनि संघ मास्त्रि स कोदत्तानि बुमानि संभारगिवा आनावात्तवि, धावात्तवि। इत्थिय, धारनाय मयि लेण।

किन्तु यह मतभेद बढ़ता ही गया । एक ही संघाराम में कई मठाबलम्बी रहते थे जो भिन्न-भिन्न नियमों का पालन करते थे । हीनयानियों और सर्वास्तित्वाधियों की दृष्टि में जो अनुचित या वह महायानियों और महासाधकों की दृष्टि में उचित था । क्या हीनयानी घोषहर के बाद के मौखन को पसन्द नहीं करते सीना-भासा-मूल का अपने शिष्ये उपबोग थे वर्ण समझते थे, परन्तु महासाधिक इतको उचित समझते थे । इस प्रकार एक ही संघ में कई मठाबलम्बी रहते थे और यदि कोई भिक्षु संघ को खान करना चाहता था तो वह जिस मठाबलम्बी को खान देना चाहता उसका नाम भी उल्लेख करता था । इसके कतिपय उदाहरण शक अभिलेखों में मिलते हैं । शक रंजुबुल की अभिमहिषी ने एक स्तूप और संघाराम की सर्वास्तित्वाधियों को खान में दिया था^१ ।

ब्राह्मण धर्म के भक्तिवाद का स्पष्ट प्रभाव इस काल में दृष्टि गोचर होता है । हीनयान को कि ज्ञानप्रचाम मार्ग था उसके स्थान पर महायान (भक्तिमार्ग) का प्रादुर्भाव हुआ । साधारण जनता के भक्तिवाद में भक्ति पहले राम बाद में प्रवेश करती है । बौद्ध मूर्तियों के अभ्युदय का रहस्य इसी भक्तिवाद के प्रचुर प्रचार में अंतर्हित है ।

परन्तु हो सकता है कि बुद्ध-प्रतिमा को पत्थर पर क्यों कोरा गया जब कि बुद्ध में अपनी मूर्ति-पूजे आने का विरोध किया था । इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि इस काल तक बौद्ध भिक्षुओं में बहुत परिवर्तन हो चुका था—य अब अमण नहीं रहे थे । आप वे मठों और विहारों ही में रहते घूम-घूमकर सेवा करने की भावना उनसे दूर होने लगी थी—वे बिल्लाठी हो चले थे । ब्राह्मणों को अब सर मिला । उन्होंने एक आन्दोलन किया । जिसमें भिक्षु-जीवन का विरुद्ध भावना को उभाड़ा गया ।

आभ्रम व्यवस्था प्राचीन आयों के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग थी, परन्तु जैन और बौद्ध संप्रदायों के प्रादुर्भाव में यह व्यवस्था विच्छिन्न हो गयी—युवा, वृद्ध, मासिक, अशिक्षित, वैश्य और शूद्र सब प्रकार के लोग भिक्षु बनने लगे थे। इन्होंने अपनी आजीविका के निश्चय स्वयं परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं पहचानी थी, क्योंकि पत्नी और राजा लोग इनके पालन पोषण के लिये धन की पानी की तरह बहाने थे। इसका इसी से पता चलता है जब अशोक के आदेश देने पर भी उसके मंत्रियों ने बौद्ध भिक्षुओं की और धार्मिक दान देना अनिच्छित कर दिया था।^१ कलत भिक्षु बिलासी हम लोग। वैदिक समाजमें या तो अश्वत्थ की तलाश में पड़ा। उन्होंने यहस्थाभ्रम धर्म का प्रतिपादन किया। यहस्थाभ्रम धर्म आभ्रमों में उल्टा है, उल्टीसे सब आभ्रमों का पालन होता है, इस विचार पर बल दिया जाना लगा था। मनु ने कहा है, जैसे ज्ञान का आभ्रम पाकर सब जन्तु जान हैं, उस प्रकार यहस्था का आभ्रम पाकर सब आभ्रमों का गुणाग पालना है।^२ मनु के अनुसार एक आभ्रम से प्रथम दूसरे आभ्रम में प्रवेश

१. विष्णुवचन, पृ० ४३० और आगे। सम्राट अशोक मूर्ति अथवा राष्ट्र को हानिकार वाली मूर्तियों को कुच दे दिया करता था। अमान उगले काय में धर्म में यथा हुआ और निवृत्त पत्न होता था यह सब धान दे दिया करता था। इस प्रकार के कृपा विच्छिन्न धर्म का मंत्रा लोग विरोध नहीं करत थे, क्योंकि ऐसा धर्म करने का सम्राट को अधिकार था। परन्तु यदि वह फिर इसी प्रकार कोई और धर्म करना चाहता था, तो मंत्रा लोग उसका विरोध करत थे; और ऐसा ही करना अशोक के मंत्रियों ने करना कर्तव्य समझा था।

—दिन्दू राज्य-तंत्र १।२।२ नोट।

२. पञ्चाङ्गानु समाहित्य बतन्ते तत्र जन्तवः

तथा यहस्थामाभ्रम बतन्त तत्र आभ्रमा ॥ मनु० ३।३३।

कर, तथासमय होम-हवनादि अनुष्ठानों को समाहित कर पूछ मितेन्द्रिय होने के बाद परित्राजक होना चाहिए। इस काल में तीन श्रुतियों की भी कल्पना की गयी।^१ जब तक इन श्रुतियों से परित्राज नहीं हो जाता, व्यक्ति मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार एहस्याभ्रमधम का प्रतिपादन किया गया। लोगों का ध्यान भी इधर आकृष्ट हुआ। परिशामम्बस्य हीनयानियों के अर्हत् और प्रत्येक बुद्धों का महत्त्व बढ़ने लगा।

इसके अतिरिक्त उन्होंने ब्राह्मण धर्म के प्रवर्तकों को अवतार का रूप दिया और उनके धर्म की आत्मसात करना शुरू किया।^२

ब्राह्मणों के इस सतत प्रहार से हीनयानियों के अर्हत् और बुद्धों की प्रतिष्ठा को बचका लगा। कुण्ठित हो चले बौद्धों के लिये यह पुनर्जाती थी। अतएव इन एकान्तवासी देवताओं के स्थान को महाभान के बोधिसत्वों में प्रहल किया जिसका जीवन हो परीपकार, प्राणियों के सुलोपशमन की बेसी पर अर्पित रहता था^३; जिसकी पूजा अर्चना कर एहस्थ भी मुक्ति प्राप्त कर सकता था। इस काल में बौद्ध-देवमण्डल की भी रचना हुई। उनके देवमण्डल में बुद्ध तथा अनेक बोधिसत्वों ने स्थान ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त जितने विदेशी थे उनके बेसी देवता भी बौद्ध हो गए और उन लोगों ने भी बौद्ध-देवमण्डल की रचना की।^४ कलांतर में इसमें भी कमकाएड का विधान हुआ।

१ श्रुत्यानि श्रीएवयाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्

अनुयाकृत्य मां च तु सेवमानो ब्रजस्ययाः ॥ मनु ६।१५।

२ वैशिये, ब्राह्मण पुराण ५।१२।

३ डी मुकुकी, आठव लाइन्स आठ महाभान बुद्धिधर्म, पृ० ६२ ६५।

४ भरतसिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ० ५०६।

“एहलव, शक, कुशाण, ग्रीक, पार्थियन और स्कीथियन आदि प्राणियों के कुछ देवताओं को बोधिसत्व का रूप दे दिया गया है।”

इस प्रकार वह बौद्ध धर्म जो कि ज्ञानप्रधान था और ब्राह्मणों की विज्ञातिका और कर्मकाण्ड का खरडन करके प्रकार में खया या कालान्तर में वह भी उलीका थिकार हुआ।^१ वह भी विलासी हो गये थे। ब्राह्मणों के आघात से उनको अपना पुराना पीला छाड़ना पड़ा—ज्ञान की जगह भक्ति का उमावेश किया। उनको महापान के रूप में प्रकट होना पड़ा—ब्राह्मण धर्म के अनुसूय बनना पड़ा। वही कारण है कि इस काल में बौध्दियों की अनेकानेक मूर्तियाँ खोरी गयीं।

जैन धर्म —बौद्धों की भांति जैनियों का भी इस काल में प्रकार एवं प्रकार हुआ। मधुरा में जैनों के बहुत से अमिलेल एवं अबागपट मिले हैं। वहीं पाये गये ११२ अमिलेलों की, लूडर की, लूडो में ८४ केवल जैन हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मधुरा में बौद्धों की अपेक्षा जैनियों का अधिक प्रभाव था क्योंकि बौद्धों के वहाँ लूडर की लूनों के अनुसार केवल ११ अमिलेल मिले हैं। इसकी पुष्टि कनिष्क के उस कथन से भी हो जाती है जिसमें उसने अमरेश मधुरा में बौद्ध लूनों का होना बतलाया है।^२

मधुरा की भांति उज्जयिनी में जैनों का उन्द था। यदि अशीक के पौत्र संघति की कथा में विश्वास किया जाय तो ज्ञात होगा कि उसने जैन धर्म के प्रकार के लिये मिशनरियों का भेजा।^३ इक्ष्वाकु के प्रदेशों में उसने इन मिशनरियों के द्वारा ही धर्म का प्रचार किया। उज्जयिनी और मलावा में जैन धर्म करोड़ ईसवी पूर्व द्वितीय शती में

१ सुबुद्ध के मातृवर्षा का हाल द्वारा संस्करण, पृ० २६७।

कमिपम्प्रीउमिउम्य इव अगिउभुतिपवनवशनीभपव।

२ इ० पं० १६०२ पृ० ३८३।

३ वि एव अरु इमारिपल मूनिटी, पृ० ४१६।

ही पहुँच गया था। पहली शती ईसवी पूर्व में भी जैन धर्म मानवा में फल-फूल रहा था। इसका पता 'कालकाव्यय कथानक' से चलता है। इस कथा के अनुसार कालकाचार्य और उसकी बहन सरस्वती दोनों जैन मिथु और मिथुनी थे। सरस्वती बड़ी कमवती थी। उष्य यिनी का राजा उठके रूप पर मुग्ध था। उसने उठकी बखाट उठवा लिया। लोगों ने मिथुनी को खोज देने के लिये समझाया किन्तु बिसासी राजा ने मुना-अनमुना कर दिया। जनता ऐसे राजा से कुपित थी, अतएव उसने शकों की (बर्मनीठ) बहकर आमंत्रित किया। शकों ने गद्दमिल का नाशकर मुम्बवस्था को पुनस्थापित किया।^१

बाद में वे शक उष्ययिनी से मासवों द्वारा निकाल बाहर किये गये। तमवत इस काल में जैनियों की वही बया हुई हो जैस गुर्गों के काल में शौदों की हुई थी। उष्ययिनी में जैनों को हम पुन अष्टन बंध के स्थापित हो जाने पर पाठे हैं। जयदामन के पौत्र (वामपठर अथवा अरविह प्रथम) का अनागद अमिष्ठल^२ एक 'केवली ज्ञान प्राप्त अशक्ति का उल्लेख करता है जो कि अरामरथ से मुक्त हो गया है। वह लेल एक गुहा में पाया गया जो कि जैन मिथुओं के प्रयोग में आता था जैसा कि उसमें पाये गये विभिन्न चिन्हों से मालूम होता है। जैस स्वास्तिक, मद्रासन, मीनबुगल आदि।^३

शौदों में बोधिध्वजों की भाँति इनमें भी तीर्थंकरों की पूजा होती थी। शक काल की इनकी कितनी ही मूर्तियाँ और अयागण्ड पाये गये हैं। मूर्ति-पूजा का प्रचलन इनमें पहले हो से था। इसका एक प्राचीन उदाहरण नन्द-काल में मिलता है जब नन्द राजा अक्षिग से

१ वेस्तिये स्टोरी आण्ड कालक नामन ब्राउन।

२ एपि० इ० १६। १४१।

तथा पुरमिव अशक्ति ज्ञान तमप्रसाता.....अरामरथ।

३ दि एन्ड आण्ड इपीरियल यूनिटी, पृ० ४१६।

जैन-मूर्ति को उठा लाया था जिसकी बाव में कलिंग स्वप्ति धारवेस पाठलिपुत्र से उठना ले गया ।^१

मक्ति आन्दोलन—इस काल की महती जन मक्ति आन्दोलन थी जिसने वैदिक और अद्वैतिक दानों यमों की आन्दोलित किया । जन विस्थापन तर्क और पशान से दूर होता है । वह अपने स्वता के प्रति भद्रा मक्ति का पूरा आचरण करना चाहता है । पूर्व वैदिक काल में वह अपनी मक्ति और भद्रा को स्वता का स्तुति और प्रायना कर प्रदर्शित करता था । वह स्थिति अधिकांश दिनों तक नहीं रही । उत्तर वैदिक काल के कमकाण्डों में उसका स्तुति और प्रायना करने का अवसर ही नहीं दिया । इस कमकाण्ड के नोभे लोगों का आत्मविस्थापन जाता रहा और उनके आत्मस्वातन्त्र्य को भावना करने लगा । ईश्वर के नाम पर किम ज्ञान बाल इन कमकाण्डों में लोगों का पीरे-पारे पूजा होने लगी । परिणाम-स्वरूप छठी शता ईसवी पूर्व में अद्वैतिक आन्दोलन हुए । इस आन्दोलन में ब्राह्मण कमकाण्ड के साथ-साथ उनका ईश्वरवाद भी उलट गया । ईश्वर की मया आख्या की गयी । सृष्टि कला के रूप में इतने ईश्वर का नहीं माना । फिर उसका पूजा-प्रायना से क्या लाभ ! इस संबंध में जैन शास्त्रकारों का कहना है कि ईश्वर की उपासना ईश्वर का प्रसन्न करन के लिये नहीं की जाती यद्विषु हृदय की, अपने जित का शुद्धि के नियम का जाती है । सभी दुःखों के उत्साहक राग डोष-का दूर करन के लिये राग दोष रहित परमात्मा का अवलम्बन करना परम उपायों एवं आदर्शक है ।^२

अद्वैतिकों के इस आन्दोलन में वैदिकी (माध्यमि) की आराधित कर दिया । उनमें जो पहले से जायतक बचता रहता वे ही अवलम्बन रहते हो गए और 'असौख्येय' की स्थापना का निष्ठा में लग गए । उन्होंने इस की स्थापना के लिये सामंजस्यकारी नीति का प्रवृत्त किया । उन्होंने

१ बही, पृ० ४२६ ।

२ जैन दशान, भा० भा० मुनि धर्मशास्त्रिकरणी, पृ० ५५ ।

अवतारों की कल्पना को जिसमें सभी अवैदिक धर्मों को आत्मसात् कर लिया और उनके प्रवक्तव्यों को विष्णु का अवतारी रूप बतलाया^१ एवं भक्ति और साधानामार्ग का प्रचार किया। उनके अनुसार भक्ति ही इस दुःखमय संसार से जीव को मुक्त कराने का एकमात्र साधन है। भक्तवत्सल भगवान की अनुग्रह शक्ति ही जीवों को मरणक से उद्धार कर सकती है। भगवान से निरचल रूप से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि मैं अवराधो का अस्तय हूँ, अकिञ्चन हूँ तथा निराश्रय हूँ। हे भगवान आप ही मुझे उद्धार करने के लिये उपाय बनिये। इस प्रकार वह ईश्वर का शरणागत होता है।^२ वह भक्ति भावना की मिन्नता के कारण मिन्न-मिन्न देवताओं के साथ का जा सकती है।

ईश्वर के शासन में सब बराबर होते हैं, भेदभेद का प्रश्न वहाँ नहीं रहता। ईश्वर की शरण में जो आवेगा प्राण पावेगा। इस प्रकार की भावना का प्रचार कर और शक्ति अवैदिक धर्मों में विदेशियों को शरण मिली थी और वह विदेशियों का काल था, या देश में बसते जा रहे थे, ब्राह्मण धर्म में इस प्रकार की व्यवस्था करना अनिर्धार्य हो गया था। इस प्रकार इस भक्ति आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य विदेशियों को धर्म में दीक्षित कर उनमें अहिंसा का प्रचार करना था।

बौद्ध धर्म में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। जब साधारण हिन्दू जनता बौद्ध धर्म में दीक्षित हुई तो भक्ति मार्ग से परचे होने के कारण

१. मात्स्यः कूर्मो बराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः। रामो रामश्च कृष्णश्च बुधः कन्की च तं दश। बाराहपुराण ४।१।

२. अहमस्म्यराधानामास्तयोऽकिञ्चनोऽगतिः स्वमेवोपायमूर्तो मे मथेति प्रापना-मतिः। शरणागतिविमुक्ता सा देवऽरिम्न् प्रपुष्पताम् ॥ अहि० उ० ३०।३१।

उस एक बड़ी कमी का शोध हुआ। माइसो ने इनके प्रवक्तों का पूजना भी प्रारंभ कर दिया था जिससे उनको प्रसिद्धि को पकड़ा लगा था। अतएव महाबान, हिन्दुओं के मकितमाग से अनुप्राणित, इसका परिष्कार हुआ।

मागवत धर्म—मारा रूप लेल से विवित होता है कि शक-रूपति मागवत धर्मावलम्बी भी थे। मोरा राँष मयुरा से साठ मोल की दूरी पर स्थित है। लेल इस प्रकार है—

महाध्वज राजपुत्र के पुत्र स्वामि....मागवत दृष्टि पंचपीरो की प्रतिमा शिला पर कोरी गया....जो कि तारा का मध्य अद्वितीय शिला यह है...पूजा क पीच प्रकार जो कि कमकवार परवर क बने म, यह ही मुद्रा ।^१

डा० जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने बाभुपुरास क आधार पर इन पंचपीरो को संकर्षण, बाभुबब, प्रद्युम्न शक और अनिरुद्ध यतलाया है।^२ वह पंचरात्र अनुभूति क बहुत समीप है। और मयुरा, वह ही मागवत मत्वायलम्बियों का प्राचीन यद् ही था। कृष्ण क जीवन का अधिकांश माग मयुरा ही में व्यतीत हुआ था।

शकों के मागवत धर्मावलम्बी होने का एक दूसरा प्रमाण भी मिलता है। मयुरा में जब शक राज्यों का शासन था, तब वैष्णव धर्म का इन मन्त्राल में विशेष सम्प्रधान हुआ। शोकास के लम

१ महाध्वजस राजपुत्रस पुत्रस स्वामि....

मागवता दृष्टिना पंचपीराना प्रतिमा शिलावेवप....

यस्तोपाया शील भीमद्रव मनुलम वपनमपार....

आवशिष्टा शिला पंच कालत इव परम वपुया....

२ ज० ई० नो० का० आर्ट, १९४२ पृ० १५, १८; ई० वि० का० १९४४, पृ० ८२, ८० ।

कासीन एक लेख^१ से हाठ होता है कि वसु नामक व्यक्ति ने महा-स्मान में मगवान बामुदेव का एक बहु-शाला मंदिर, तोरश तथा बरिका (बौकी) की स्थापना की थी। मथुरा में कृष्ण-मंदिर के निर्माण का यह पहला पुरातात्विक प्रमाण है।

अब प्रश्न मागवत धर्म के अस्तित्व का उठता है। इसका उत्तर मार्क साहब ने दिया है—कृष्ण संभवतः महाकू और अत्राक्ष्य जाति के नेता थे जो कुछ के बहुत कास पहले हुए थे। वह अपनी जाति के नेता थे इसलिए नहीं कि बीर में बलिष्ठ इसलिए कि उन्होंने एक नये धर्म की स्थापना की थी—ऐसे धर्म की जिसका बरिक्त अनुभूति और एकेबरवाद से कोई मेल न था जिसमें मुरतया नैतिक उत्थान पर बल दिया जाता था। इस धर्म के अनुयायियों को मागवत कहा गया है। बाद में इसने अम्ब नाम भी ग्रहण किया। कृष्ण अपनी जाति में अर्ध-देवता में देवता का रूप धारण करने लगे। साक्ष्य भवानुयायियों ने तब इस धर्म को जो नैतिक उत्थान पर बल देता था अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया और कृष्ण का विष्णु का अवतारी बतलाया। इस प्रकार ब्राह्मणों ने मागवत धर्म को अस्मत्गत कर लिया..

श्री रामप्रसाद चव्वा ने इस विद्वान लेखक के कुछ बातों से अतिसहमति जतायी है। वे पूरे मागवत धर्म का ब्राह्मण धर्म में अस्मत्गतीकरण नहीं मानते।^२ मागवत धर्म की एक शाखा 'गंचरात्र' अब मां अर्वादि की। अर्वादि अथवा अत्राक्ष्य 'पांचरात्र' के देवता—संकपण बामुदेव, प्रद्युम्न शंभ और अनिरुद्ध अब भी वस्तुओं द्वारा पूजे जाते हैं। इसका मीरा-कुर-सेख प्रमाणिक

१ वसुना मगवती बामुदेवश्च महारवान... बहु-शालां तोरशं बरिकाः प्रतिष्ठापितौ प्रीतोमवतु बामुदेवः स्वामिस्व महावचपस्व शीघ्र-तस्व भवर्तपातम् ।

२ इन्ताइक्सोरीदिया रिलिजन एण्ड इथिक्स, २ । २३३ २३६

३ कि चव्वा-साहब नेमन्त्र, १ । ४।

करता है।^१

पाँचराश्र मठ का विशिष्ट निरूपण महाभारत के शाठिस्य के नायक श्रीभीष्मस्थान (३३४ अध्याय—३२१ अध्याय) में किया गया है। इस संप्रदाय का प्रधान उपास्य देव वासुदेव हैं। वे ही पट्टगुणों से विशिष्ट होने का कारण 'मगवत्' शब्द से अभिहित किए जाते हैं।

श्रीभीष्मस्थाना—श्रीभीष्मस्थाना बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। इसका आरंभ वेदों से है और उसी समय में पीरे-पीरे इसका विकास होता आया है। ऋग्वेद में शिव 'इन्द्र' थे। उनका कल्याण प्राह्निक कल्पों का मानवीकरण से की गयी थी। ऋग्वेद के सूक्तों में इन्द्र का नाम स्पष्ट रूप में बिल्लापी पड़ता है उसके कितने पद हैं और वे किसके प्रतीक हैं इस विषय को लेकर बहुत से अनुमान लगाये गये हैं। कोई उसे ऋग्वेद का प्रतीक तो कोई विनाशकारा शक्ति का प्रतीक समझता है। अतः इस प्रत्यक्षकारी स्वरूप के कारण इन्द्र अथर्ववेद में 'महादेव' हो गये, वह पूर्ण अंतरिक्षादि में व्यापक पतलाय गये, आकाश-पृथ्वी के ईश समझे गये, मय में सप्तर्ष्या सप्तर्ष्याएक एवं नाशक की मानना की गयी और शक्ति को भी आपमान, ब्रह्म, इन्द्र और महादेव नाम लेकर उसका गुणों का संक्षेप इन्द्र से बिल्लाया गया।^२

इन्द्र के शृंगारमय शिव पदायों की छार महज का अर्थिक होने के कारण लोग इन्द्र की ममानकता से डरते थे और विष्णु की उपासना का शिव समझते थे। इस मानना का हवाने के निष्पत्ती द्वारा अथर्वशिरमोरनिन्द प्रस्तुत हुई, उसमें इन्द्र को पौरित करना पड़ा—
 "मैं ही नायमी हूँ, मैं ही सत्य हूँ।" इन्द्र-भक्तों में भी प्रकृत किया,
 "जो इन्द्र है वही मगवत् है, ब्रह्मदेव है, महादेव है।"^३

१ म० आर्क० तर्क १ २। १६५-१६६।

२ अथर्ववेद २। ७। ७; ११। २। १ ; ११। २। २०२

३ ११। २। १५।

४ अथर्वशिर उगनिन्द १ से ५।

उस काल के सिक्कों का अनुशीलन करने पर विरहित होता है कि उस काल में शिव की अनेकानेक मूर्तियों को कोरा गया। तच्चणिला व शक नृपतिओं के सिक्कों पर शिव-यावती एवं अम्ब देवी-देवताओं की मूर्तियाँ पाई गयी हैं।^१ इसके अतिरिक्त शक राजाओं का नाम करवा भी कुछ ऐसा हुआ है जिससे उनके शिवभक्त होने में संदेह ही नहीं रह जाता। स्रदामन स्रसिंह आदि कुछ ऐसे ही नाम हैं।

सूर्यपूजा—प्रकृति के देवताओं को आर्यों की भाँति अन्य जातियों ने भी पूजा। भारत में विष्णु अथवा आकाश के प्रकृत सूर्य की पूजा का निःसन्देह आर्यों ने प्रचलित की किन्तु उसे मूर्ति बनाकर शकों और कुषाणों ने ही सर्वप्रथम पूजा। इस संबंध में साहित्यिक और पुरासात्विक दोनों प्रमाण उपलब्ध हैं। कुषाणकालीन सूर्य की मूर्तियों (उस युग से पूर्व की सूर्य-मूर्तिमार्पे, भारत में नहीं मिलती) का पहला मन्वर्णनार्थ है—बोगा, लखार, ऊँचे पुटनों तक लूत, बगल में कटार। स्पष्ट है कि भारत में सूर्य की मूर्ति-रूप में पूजा शका ने बसाई और जब वहाँ के ब्राह्मण उसकी पूजा न करा सके तो शक पुरोहितों की भारत में बुलाना पड़ा। पुराणों^२ के अनुसार कृष्णचर्या शास्त्र ने सूर्य का पहिला मंदिर तिब में बनवाया और उसके सिधे उसने शकद्वीप से पूजा के सिध 'मय' नामक ब्राह्मणों को आमंत्रित किया। शक ब्राह्मण ही संभवतः सूर्य-पूजा का विधान करत थे। जब बरहार्थ लेख से विरित होता है कि ममबरान बालादित्यदेव ने सूर्य मित्र नामक 'मात्रक' ब्राह्मण का सूर्य की पूजा के निमित्त एक गाँव दिया था। बाद में वह राजा अर्बतिवमन द्वारा मात्रक श्रुतिमित्र को दान कर दिया गया।

य शक-नृपति सूर्य-पूजक थे, वह उनके लेख से स्पष्ट है। उन्होंने ऐसे नाम धारण किये थे जो उच देवता के नाम होते थे। प्रमाण

१ प० म्यू० के १।२६।

२ भविष्य, शांख, बराह आदि।

स्वरूप स्वामि श्रीशिवामन का कान्त्येरा^१ लेख लिया या सकता है, जिस पर निम्न लेख है—जिद ॥ भगवतस्मिन् गण-मेनापतर्भित-सेनस्य स्वामि महासेन महातेज ... भावित्यवीर्य्य श्रीशिवाम

भावित्य ग्य का नाम है । इस प्रकार 'म लेख का अर्थ हुआ—सिद्ध । भगवान् स्वर्ग के सनापति, अथवा सनावाले, स्वामि महासेन के समान महत् तमवाले सूर्य-मुख्य परानम वाले शिवदाय (फा) -

कार्तिकेय पूजा—कार्तिकेय ५ गिठा शिव अथवा अग्नि के माता उगा, गंगा, स्याहा आदि पतलाई गई हैं । कार्तिकेय देवनाथों के सनापति थे । इतीसिण महासेन मा कहे गये । कार्तिकेय का पूजा शुभ काल तक बहुत लोकप्रिय हो गई थी । भास्वरपमन कार्तिकेय मछ वा यह उसके लाल से स्पष्ट है ।^२

अथर्वि बह वैदिक प्रतिक्रिया का काल था जिसमें कमकाएडों का विरोध भी हुआ किन्तु सभी कमकाएडों पर रोक लगा दिया गया ऐसी बात न थी । यम और हान अथ भी हान थे । हान कलियुग में धार्मिक जीवन का मुख्य पहलू था ।^३ एदर्याभम पर हम काल बहुत यल भी दिया गया था जिनके हान पर ब्रह्मचारियों की शुभरा होती थी ।^४

किन्तु स्थानों पर हान करना चाहिए और कहाँ हान करने पर कितना पुण्य होता है इस पर भी हम काल विचार किया गया । यम शास्त्रों के अन्वयन से पता चलता है कि घर पर किय गये हान में एर

१ एति० ई० १६ । २३२ ।

२ एति० ई० १६ । २३२ ।

३ तत्र पर कृतपुग त्रेतायां ज्ञानमुपगत

द्वारे यत्तमवाहुवानमर्च कती पुग ॥ मनु० १।२६ ।

४ हानमेव एदर्यानां शुभरा ब्रह्मचारिणाम् ।

गुना फल मिलता है गोष्ठियों में बान करने पर शताधिक पुण्य-प्राप्ति होती है और पुण्य तीर्थों पर बान करने से सदस्र गुना फल की प्राप्ति होती है। उसमें भी अधिक पुण्य की प्राप्ति तक होती है जब व्यक्ति शिव प्रतिमा के निकट कोई बान करता है।^१ उन तीर्थस्थलों का भी वर्णन किया गया है जहाँ पर बान करने से अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है।^२

पुण्यतीर्थ के रूप में प्रमाथ का उल्लेख शक अभिलेखों में हुआ है।^३ तीर्थ के रूप में महामारत में भी इस उल्लेख आया है। 'उत्तपो तीर्थम्' के रूप में इसका उल्लेख हुआ है।^४ नहान क कामाता उपव द्वात में उस पुण्यस्थली पर ब्राह्मणों को तीन साल गौर्षे और १६ माँव बान में द्विजे एवं एक लाख ब्राह्मणों को प्रत्येक वर्ष भोजन कराया और आठ ब्राह्मणों का विवाह अपने स्वर्ग से करवाया।^५ महामारत

१ एहे दशगुणं बानं गोष्ठे वैव शताधिकम् ।
पुण्यतीर्थेषु सदस्रमनन्तं शिवशाम्निनी ॥ बानमयून्व ५ ८ ।

२ बाराशली कुक्षेत्रे प्रयाग पुष्कराशि च । गंगासमुद्रतीरं च नैमि
वामरकप्टकम् भीमर्षतमहाकालं माकल वेदपथठम् । इत्याद्याः
कीर्तिता देवा मुरसिद्धनिपेविता । सर्वे शिवास्वया पुण्या तथा
नय सधाराः । गोष्ठियमुनिवाठारव देवा पुण्या प्रकीर्तिता
एतु तीर्थेषु बहत्तं फलम्बानम्य ह्यन्वेत ।

—हेमाद्रि (बान० ५० ८१)

३ एपि इ० ७।११।५७ ; ८।१ । ७८ ।
४ मुयष्ट्रेणपि बक्ष्यामि पुष्वान्वायतनानि च ।
—प्रमाथं श्रीरक्षी तीर्थं शिवशानां मुषिष्टिर ॥
तत्र विहारकं नाम प्रायसाचरितं शिवम् ।

एपि० इ० ८।१।७८ ।

—इ० एं १८१५ ५० ११

धनपत्र में इस प्रकार का विवाह कराने के महत्त्व को बतलाया गया है। उसके अनुसार वा कन्याओं को ब्राह्मणों को ब्रह्म के रूप में देता है वह भूमि को इन्द्र के समान मोगला है।^१

इस प्रकार यदि हम इस काल का धार्मिक-स्थिति का उपसहर्नम्ब संश्लेष करें तो इती निष्कल्प पर पहुँचते कि वह काव धार्मिक समन्वय यथाद का वा मितमें वैदिक आर अवेदिक यमों का समिभण्य हुआ तथा दान के महत्त्व को बतलाया गया।



^१ यो ब्राह्मणानां तु ब्रह्मणि कन्या भूमिदानं वा कथेति विदे ।
 ब्रह्मणि दानं विधिना वा दत्तं तं लोकमाप्नोति पुण्ड्रकम् ॥
 ॥
 ब्रह्मसूत्र १.८.१५।

भाषा और साहित्य

राजों के अभिलेखों की भाषा और साहित्य का विस्तार बहुत व्यापक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः साहित्य की दृष्टि से तो किसी विदेशी जाति का साहित्य भारतीय सीमाओं में विशेष रूप से अपना महत्त्व का नहीं है। इयहो-ग्रीक पहलव, कुपान्त और एक चारों जातियों के अभिलेख कम या अधिक मात्र में उपलब्ध हैं जिनसे संस्कृतान प्राकृत और संस्कृत भाषा के क्रियाकलाप समझा विन्वात पर प्रकाश पड़ता है। अभिलेखों में पहले तीनों राजकुलों के संक्षेप में अत्यन्त सीमित हैं। इयहो-ग्रीक राजाओं में तो अभिलेख रूप में उल्लेखनीय साहित्य विरचा ही नहीं जा कुछ उनके संबंध का उपलब्ध है प्रायः साग सिक्कों पर ही है। सिक्कों का निर्माण, बाह्य की शुद्धता और देवताओं में विरचाल विशेषकर कुपान्तों के सिक्कों पर उत्कीर्ण मण्यधियाई धर्मों को ध्यान करने वाले आलेख संस्कृति पर कुछ प्रकाश डालते हैं, पर उनसे इयहो-ग्रीक सिक्कों के हिमापी आत्मों के बावजूब उनका साहित्य की विरा में विशद संकेत नहीं है। ऐसा समझा जाता है कि भारतीय भाषा में कुछ शब्द वे छोड़ गए, जैसे—मला, कलमी पुस्तक, ललित मुर्तिया आदि।^१ पर इनकी संख्या मूल्य है।

कुपान्तों के अभिलेख से भी भाषा समझा साहित्य का विशद निर्देश नहीं होता क्योंकि पहले तो लानों की सीमाएँ यहाँ संक्षुभित हैं, अभिलेखों में पूजनीय मूर्तियों पर लिखी जान संबंधी हैं, और जो हैं भी उन्हें जन-बोली पर ही समझ लें, पर उनको न शुद्ध संस्कृत कह सकते हैं न प्राकृत, साहित्य तो वे ही नहीं। संस्कृत और प्राकृत

^१ प्रोफेसर इन वैदिकवा एरट इंडिया, ४ १०१-०।

दीनों ही उनकी विकृति है।

वही बात शकों के संबंध में निःसंदेह नहीं कही जा सकती। वह सही है कि उनके भी घनेक फुटकर खेल भाषा की दृष्ट से सर्वथा ह्रास नहीं है, पर कम से कम महाकाव्य रुद्रवामन प्रथम का खेल अत्यन्त महत्व का है, भाषा और साहित्य दोनों दृष्टियों से।

एक जब तक भारत के परिषमौत्तर सीमा-प्रदेश में रहे तब तक वही की भाषा सिन्धि का सहारा लिया। भाषा ही उनकी प्राकृत रही पर सिन्धि पारोप्टी थी। जैसे-जैसे वे मध्यदेश की ओर बढ़ते गए (भारतीय हृष्य के निकट पहुँचते गए) उनकी भाषा और सिन्धि में भी परिवर्तन होता गया। मथुरा आते-आते उनकी सिन्धि में परिवर्तन हो जाता है। मथुरा का वह शीर्ष क्षेत्र इसका अर्थवाद है। उनकी प्राकृत भाषा आदिशाषिक संस्कृत मिश्रित होने लगी तथा सिन्धि भी प्राप्ती हो सकी। महाराष्ट्र एवं उज्जयिनी के शकों के काल में काफ़ी परिवर्तन हुआ। वह अब प्राकृत न रहकर संस्कृत मिश्रित प्राकृत का रूप धारण कर लेती है। संस्कृत के प्रति उनकी यह निष्ठा इतनी बलवती हुई है कि रुद्रवामन का अनागद लोग शुद्ध संस्कृत भाषा में लिखा गया।

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में समसामयिक प्रवृत्ति की भी जान लेना चाहिए। यदि उक्त काल की भाषा और साहित्य का अनुशीलन किया जाय तो समसामयिक प्रवृत्ति का ज्ञान जा सकता है। उक्त काल में भाषा दो तरह की थी—साहित्यिक और बालबाल की। साहित्यिक भाषा सुगठित शानी थी। बालबाल की भाषा प्राकृत थी, दूरी बूटी शान्ति था। इसको सर्वप्रथम लिखित शैली शती ईसवी पूर्व में किया गया। इसका मुख्य कारण आर्थिक बर्षों का वैदिक धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। वैदिक धर्म का भाषा संस्कृत थी, जो

जन माया नहीं थी, पर इन नए सुधारवाधों को माया प्राकृत थी, जो जन-माया थी। इन्होंने इसको न केवल प्रसार का साधन ही बनाया बल्कि अपने साहित्य का ध्वजन भी उसमें किया। फलस्वरूप, बर्म प्रसार के साध-साध 'प्राकृत' का भी प्रसार हुआ। वह इतना लोकप्रिय था कि अशोक के काल में वह 'राज्यमाया' हो गयी। किन्तु इससे वह न समझ लेना चाहिए कि संस्कृत का स्वया लोप हो गया। संस्कृत भी। उक्त काल के कई ग्रन्थ संस्कृत ही में लिखे गए। कौटिल्य का अर्थशास्त्र शुरू संस्कृत में है। रामायण और महाभारत के कुछ भाग इसी काल में संपादित हुए।^१ पर्वजति का महा माय्य इसी काल में लिखा गया। ब्राह्मण धर्म तथा संस्कृति को मानने वाले संस्कृत का ही प्रयोग करत थे। शुंग-काल में संस्कृत को राज्य माया के रूप में पुन प्रतिस्थापित किया गया। परंतु उसके बाद सिद्धे शिवों ने, अिंतको कि आनुबन्ध (बैदिक धर्म) में कोई स्थान नहीं मिल सकता था, प्राकृत का ही प्रयोग किया। इस प्रकार विदेशी आक्रमणकारियों के काल में प्राकृत पुनः धरना स्थान ग्रहण कर लगी है। लोकियन माया को संस्कृत-गमित करने की प्रवृत्ति गयी नहीं थी।^२

उक्तों ने अपने लेखों में दो प्रकार की लियियों का प्रयोग किया है—सरोप्टी और ब्राह्मी। सरोप्टा लिपि का प्रयोग काशी बड़े भूभाग में हुआ है—उत्तर में स्वातपाटी से लेकर दक्षिण में मुई-विहार और मोई-बीरको तक, पूव में मधुय से लेकर परिषम में बादक और लाहारी तक।^३ इन सभी क्षेत्रों की माया प्रायः एक ही थी थी।^४

इसी परिषमोत्तर पठान प्रदेश (मूनुजगई) में पाणिनि-ध्यादि

^१ डा. पाण्डव; विक्रमादित्य आष उन्नयिनी; पृ २००।
^२ वही।
^३ डा० इ ई० कोनी; प्रामदिकल स्केन, पृ १५।
^४ वही।

आदि व्याकरणशास्त्रों के बावजूद वे। तदुचितता विद्या का केन्द्र थी। महास्तिबाही जो कि संस्कृत का प्रमूत प्रयोग करते थे इस प्रदेश में काफ़ी प्रभावशाली थे।^१ यदि लरोप्टी कमिलेणों का अनुशीलन किया जाय तो उक्त पर संस्कृत और मध्यदेशीय तथा शौरसेनी प्राकृत मानाओं का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देगा।^२ मथुरा का सिंह शीघ्र लेख शौरसेनी प्रभाव में है।^३ पतिक का तदुचितता वाचपन लेख भम्मपाद के निबन्धों तथा संस्कृत से प्रभावित बीसता है।^४ नम, नगरे, नवक मिह और उचरेण, शकमुचिठ, रोहिणिमिबेण आदि शब्दों का अपन भम्मपाद के निबन्धों के अनुसार हुआ है पर उची में पनेमन, महदनपठि, लवबुवन आदि शब्द संस्कृत के अनुसार हैं। इससे पता चलता है कि संस्कृत के निबन्धों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति दो अला सी।^५

शकों द्वारा प्रयुक्त सूचरी निरि जाती थी। इस लिपि में लिखे गए शकों के प्रारंभिक लेख प्राकृत में ही हैं, परन्तु बाद में चलकर वे संस्कृत मिश्रित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए मथुरा के शक कुल में शोडाल के लेख को लिया जा सकता है। अमोहिनी अयापरह प्राकृत में लिखा गया है। परन्तु शोडाल के कोषापरह (गंजबरेण) का लेख संस्कृत मिश्रित है। इसी प्रकार महान का प्रारंभिक लेख प्राकृत में है, बाद में वे संस्कृत मिश्रित हो जाते हैं। इस प्रकार प्राकृत को संस्कृत गर्भित करने की प्रवृत्ति हाथकी सी। इस प्रवृत्ति को अप्पन-बंध में राग्याभव प्राप्त हुआ। उनक काल में शुद्ध संस्कृत का प्रयोग होने लगा था, जहाँ शुद्ध संस्कृत का प्रयोग नहीं हुआ है

१ वही।

२ वही० पृ १०२।

३ वही।

४ वही पृ ११३।

५ वही।

उसकी माया संस्कृत मिश्रित प्राकृत होगी है। इसके विपरीत छात-बाहनों के लेख जो कि ब्राह्मण वे—विदेशी नहीं—प्राकृत माया का ही प्रयोग करते थे, परन्तु वह माया संस्कृत मिश्रित होती थी इस प्रकार इस काल से संस्कृत माया की ओर लोगों की रुझान होने लगी थी। इससे यह मालूम होता है कि जन-साधारण की माया प्राकृत थी। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह भी बात हाता है कि साधारण जन की माया तो प्राकृत थी किन्तु उच्च वर्ग साहित्य में संस्कृत का ही प्रयोग करता था।^१

संस्कृत मिश्रित प्राकृत माया को विद्वानों ने 'शाखा संस्कृत' की संज्ञा दी है। मिश्र अथवा 'शाखा संस्कृत' संस्कृत का वह रूप है जो पाश्चिमी के नियमों के अनुसार नहीं चलता पर प्राकृत व्याकरण के कसों एवं शब्द-समूह से यत्नतः प्रभावित मिलता है। डा० मीसा शंकर श्याम ने इस प्रकार की माया के उत्पन्न होने के संबंध में दो कारणों पर प्रकाश डाला है—

(१) "कुछ लेखकों ने किसी मध्यकालीन भारतीय ग्राम माया को संस्कृत वा साहित्यिक रूप देने की चेष्टा की हो तथा उसमें संस्कृत शब्दों की बहुलता मर रही हो।"

(२) "संस्कृत में कई अपाशिनीय शब्दों प्रयोग स्वभाविक रूप से मिल गए तथा उनका वह रूप पाश्चिमी संभव न होने के कारण मिश्र संस्कृत बन गया। उदाहरण के लिए बौद्ध मिश्र संस्कृत में हमें 'मिधुस्व' जैसे रूप मिलते हैं। वह रूप अपाशिनीय है क्योंकि 'मिधु' शब्द के पठ्यो एकवचन में 'मिधो'; रूप हीना प्वादिप। संभवतः वह रूप रामस्व, देवस्व आदि के तादरस्य पर बना लिया गया है। अफगान्द प्रत्य शब्दों में संस्कृत विभक्ति-विभक्त 'स्व' है, किन्तु इकारान्त, उच्चा

दि एव आद्य ईपीरियल मुनिटी, पृ० २८० ।

दि० ता० ५ इ०, प्रथम भाग, पृ १०२ ।

एपि० इ० ५१७१ ।

राज्य में यह 'अस्' (कर्म, विष्णो मिश्रीः) है। मिश्रु शब्द का साथ यह अकारान्त शब्दों का पष्ठी एक बचन का विभक्ति निन्ध 'स्व' जोड़कर 'मिश्रुस्व' रूप बना दिया गया। ऐसा भी ही सकता है कि प्राकृत रूप 'मिश्रुस्व' का संस्कृतमूल रूप (मिश्रुस्व) रहा हो। प्राकृत में मिश्रु शब्द के पष्ठी एक बचन में 'मिश्रुस्वो, मिश्रुस्वो' ये दोनों वैकल्पिक रूप पाये जाते हैं। इस प्रकार प्राकृत के प्रभाव पर बनाए गए संस्कृत रूपों की प्रचुरता मिश्रु शब्द की जन्म देती है। "तत्के अतिरिक्त-प्राकृत शब्दों तथा प्राकृत मुद्राकारों का प्रयोग भी इस भाषा का विशेषता है। इस भाषा के तीन रूप पाये जाते हैं—बौद्ध मिश्रु या पौद्ध संकर संस्कृत (बुद्धिस्त इत्यदि संस्कृत) जैन मिश्रु संस्कृत तथा हिन्दू मिश्रु संस्कृत।"

इस प्रकार छत्र-काल में, विशेष कर पश्चिमी भारत के छत्रका क, प्राकृत का स्थान संस्कृत भाषा ले रही या बौद्ध साहित्य लानत विस्तर तथा महाबलु आदि में प्राकृत की संस्कृत में बदलन का प्रभाव किया जा रहा था। शुद्ध संस्कृत का प्रयोग दिग्भाषान में मिलता है जिसका काल-निर्धारण द्वितीय शती-ईसवी किया गया है।^१

शुद्ध संस्कृत का बहा और तुम्हरे प्रयोग महाकाव्य कुरुक्षेत्र प्रथम के अनुगाइ लेख में मिलता है। शृंगों के बाव उना का राज कीय लेख शुद्ध संस्कृत में मिलता है। यह गद्य में लिखा है पर काम-शैली का भी कही-कही पुट मिलता है।^२ इसका एक उदाहरण उलो के लिए भी मिलता है जिसमें यह गद्य और पद्य दोनों में प्रयोग बतलाया गया है—

....मय-पय-काम्यदिनां पर्यन्तम्....

माचीन साहित्य, प्राकृत और संस्कृत दोनों, अधिकार, प्रायः ३

१ दि० सं० सि० कीय, पृ० १५।

२ कीय० दि० सं० सि०, पृ० ५६।

मूलतः, पद्य में हैं। बस्तुतः ब्राह्मणों और आर्यवर्णों के गद्य साहित्य के बाद पूर्वों को छोड़कर अरबामन के गिरनार-प्रशास्ति लेख के पहले संस्कृत गद्य का कोई पाठवाही स्वरूप हमें नहीं मिलता। संस्कृत गद्य के विकास में अनेक शताब्दियों का यह अंतराल बस्तुतः समझ में नहीं आता। जैसे गद्य अथवा सूत्र पद्धति का आभाव हमें कौटिल्य अभशास्त्र भारत के नाट्य-शास्त्र और वात्स्यायन के कामसूत्रों से मिल जाता है, किन्तु पहले तो यह आभाव मात्र है, दूसरे इन ग्रन्थों का अरबामन का पृथक् हीना निरूपणपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वात्स्यायन तो निरूपण अरबामन के पीछे के अथवा आसपास के हैं भारत के नाट्यशास्त्र के कुछ ही अंश संभवतः उक्त शताब्दियों से पहले रसे जा सके और बचपि अभशास्त्र अविकास में उससे पहले का हो सकता है उसके गद्य को हम विशिष्ट साहित्य की दृष्टि से नहीं देख सकते। इसके ब्राह्मणों के बाद पहला गद्य संबंधी उदाहरण हमें अरबामन की इस प्रशस्ति में ही मिलता है।

इसके पद्य की विशेषताओं को योंही समझ लेना चाहिए। श्री डी० बी० हिस्कास्कर ने अपनी पुस्तक 'सिलेक्टस प्राग संस्कृत संस्कृत्यम्' में अनागद लेख क गद्य की विशेषताओं को बतलाते हुए कहा है कि यह काम्य-शैली में तथा बेबर्मी रीति क अनुहार लिला गया है।

“अभिलेख की भाषा में क्रियाओं का अत्यंत ही आभव विस्तार पड़ता है। जितना लेख प्राप्त है उसमें केवल दो सङ्गमक क्रियाएँ मिलती हैं—बतत और आसीत। अनुमानतः पूरे लेख में इत प्रकार की चार और क्रियाएँ रही होंगी। क्रियाओं का यह आभाव संस्कृत साहित्य के गद्य-काम्य के पाठकों के लिए कोई आश्चर्यजनक नहीं है। बचपि संस्कृत-व्याकरण में क्रिया-पद के रूपों को बहुत विस्तार में दिया गया है तथापि संस्कृत गद्य समक बहुत ही प्रचलित और क्रिया के सरल रूपों का प्रयोग करते हैं। दूसरी तरफ यह लेख

सर्वोत्तम गद्य कृतियों से समानता रखता है, क्योंकि इसमें सरल शब्दों की प्रयोज्यता समासों के प्रयोग को अधिक महत्त्व दिया गया है। पूरे लेख में इन समासों के साथे और सरल रूप का ही प्रयोग किया गया है, जिससे उनके समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।”

“लेखक की विषय-बनान को ऐसी सरल और प्रवाहमयी है। लेख का उद्देश्य महाद्वयपद्मवामन द्वारा मुद्ररत्न तडाक के पुनर्निर्माण का वर्णन करना है, इसलिए अमिलेन ‘इदं तडाकं मुद्ररत्नं’ से प्रारंभ होता है और यही पद ६ वाक्यों में कर्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिनमें लेखक ने विषय का वर्णन किया है।”

“इस तडाक को पद्मवामन ने इस तरह मुद्ररत्न बनवाया कि वह लंबे में बसा हुआ ना लगता था। वह तडाक मौर्य राजा पन्द्रगुप्त के राष्ट्रिय (राज्यपाल) देव पुष्यगुप्त द्वारा बनवाया गया था और मौर्य राजा अशोक के प्राचीन शासक बबन गुप्त में उसमें नालियों और लोहियों का निर्माण कराया। मयंकुश लोही और बर्ग के काल में पलायिनी और स्वयंस्तिष्ठा नदियों में बाढ़ आ गयी और उसके वेग से भोल का बीजार में बार ली बं स हाथ लीका उनना ही लंबा तथा पल्लवदार हाथ गहरा दरार पक गया जिसमें भोल का लारा पानी बाहर निकल गया और मुद्ररत्न तडाक मुद्ररत्न हो गया। इससे स्पष्ट है कि लेख का अर्थिकार्थ भाग भोल के पुनर्निर्माण का वर्णन करता है। इसमें लेखक ने पद्मवामन के व्यक्तित्व का भी गुणगान किया है।”

‘भोल के इतिहास को एक ही वाक्य में लेखक ने चंदे मुद्ररत्न लंग से चित्रित किया है, दूसरी तरफ मयानक मुद्ररत्न का निर्माण वर्णन है, जिसमें लेखक की कल्पना प्रविष्टता की उत्कृष्टता का पता चलता है। लेखक ने मुद्ररत्न तडाक के बर्णनकारों का प्रयोग किया है जिनका प्रयोग बाद के टिप्पणियों में बहुत अधिक मिलता है। अर्थालंकार

मूल्य, पद्य में हैं। बस्तुतः ब्राह्मणों और आर्ययजुं के गद्य साहित्य का विकास का कोई धारावाही स्वरूप हमें नहीं मिलता। संस्कृत गद्य का विकास में अनेक शताब्दियों का यह अंतराल बस्तुतः समझ में नहीं आता। जैसे गद्य अथवा सूत्र पद्धति का आमास हमें कौटिलीय अथवा मारुत के नाट्य शास्त्र और बालस्यामन के कामधुनों से मिल जाता है किन्तु पहले तो यह आमास मात्र है, दूसरे इन ग्रन्थों का अन्वयान का पूर्णवर्ती होना निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। बालस्यामन तो निश्चय अन्वयान के पीछे के अथवा आसपास के हैं मरुत के नाट्यशास्त्र के कुछ ही अंश संभवतः उस शुद्धकालीन से पहले रसे जा सकेंगे और यद्यपि अर्थशास्त्र अधिकार में उससे पहले का हो सकता है उसके गद्य को हम विशिष्ट साहित्य की दृष्टि से नहीं देख सकते। इससे ब्राह्मणों के बाद पहला गद्य संबंधी उपाहारण हमें अन्वयान की इस प्रशस्ति में ही मिलता है।

इसके पद्य की विशेषताओं को धोना समझ लेना चाहिए। श्री डी० वी टिप्पणकार ने अपनी पुस्तक 'सिलेक्टस क्राम संस्कृत इन्स्पिरान्त में अनागद लेख के गद्य की विशेषताओं को बतलाते हुए कहा है कि यह काम्य-शैली में तथा बैदमी रीति के अनुसार लिखा गया है।

"अभिलेख की माया में क्रियाओं का अत्यंत ही आमास दिखाई पड़ता है। अितना लेख प्राप्त है उसमें केवल दो लक्ष्यक क्रियाएँ मिलती हैं—बतत और आसीत। अनुमानत पूरे लेख में इस प्रकार की चार और क्रियाएँ रहीं होंगी। क्रियाओं का यह आमास संस्कृत साहित्य क गद्य-काम्य के पाठकों के लिए कोई आश्चर्यजनक नहीं है। यद्यपि संस्कृत-भाषाकार्य में क्रिया-पद क रूपों को बहुत विस्तार में दिया गया है तथापि संस्कृत गद्य लेखक बहुत ही प्रचलित और क्रिया के सरल रूपों का प्रयोग करते हैं। दूसरी तरफ यह लक्ष

मूलतः, पद्य में है। बस्तुतः ब्राह्मणों और आर्यवर्षों के गद्य साहित्य के बाव सुबो की खोजकर ब्रह्मामन के गिरमार-प्रशस्ति लेख के पहले संस्कृत गद्य का कोई भारतवाही स्वल्प ही नहीं मिलता। संस्कृत गद्य के विकास में अनेक शताब्दियों का यह अंतराल बस्तुतः समझ में नहीं आता। जैसे गद्य बनना एक पद्धति का आमास हीं कौटिलीय अर्थशास्त्र भारत के नाट्य-शास्त्र और वाग्ज्यामन के कामगुणों से मिल आता है किन्तु पहले तो यह आमास मात्र है, वृत्तरे इन ग्रन्थों का ब्रह्मामन का पूर्ववर्ती होना निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वाग्ज्यामन ही निश्चय ब्रह्मामन के पीछे के अथवा आसपास के हैं, भारत के नाट्यशास्त्र के कुछ ही अंश संभवतः उक्त शताब्दियों से पहले रले जा सकेंगे और अर्थशास्त्र अधिकांश में उससे पहले का हो सकता है उसके गद्य की हम विशिष्ट साहित्य की दृष्टि से नहीं देख सकते। इससे ब्राह्मणों के बाव पहला गद्य संबंधी तथ्यारस हीं ब्रह्मामन की इस प्रशस्ति में ही मिलता है।

इसके पद्य की विरायताओं का योजा समझ लेना चाहिए। भी डी० बी० किरकाकर ने अपनी पुस्तक 'दिलेकलंत काम संस्कृत संस्कृत' में अनागद लेख के गद्य की विरायताओं की बतलात हुए कहा है कि यह काम-शैली में तथा बेदमी रीति के अनुवार सिखा गया है।

"अभिलेख की भाषा में क्रियाओं का अत्यंत ही आसन्न विस्तार पड़ता है। कितना लेख प्राप्त है, उसमें केवल ही नकलक क्रियाएँ मिलती हैं—बतते और आतीत। अनुमानतः पूरे लेख में इस प्रकार की चार और क्रियाएँ रही होगी। क्रियाओं का यह आमास संस्कृत साहित्य के गद्य-काल्य के पाठकों के लिए कोई आश्चर्यजनक नहीं है। यद्यपि संस्कृत-भाषारस में किरा-पद के रूपों की बहुत विस्तार में विमा गया है तमार्ति संस्कृत गद्य लेखक बहुत ही प्रचलित — क्रिया के सरल रूपों का प्रयोग करते हैं। दूसरी तरफ यह लेख

नवोत्थम गण कृतियों से समानता रखता है, क्योंकि इसमें सरल शब्दों की छपेछा समाजों के प्रयोग की अधिक महत्त्व दिया गया है। पूरे लेख में इन समाजों के सीधे और सरल रूप का ही प्रयोग किया गया है, जिसमें उनके समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।”

“लोक की विषय-वस्तु को सौली सरल और प्रवाहमयी है। लेख का उद्देश्य महाशयप ब्रह्मामन द्वारा सुवर्धन तडाक के पुनर्निर्माण का वर्णन करना है, इसलिए अमिलेख ‘इय तडाक सुवर्धन’ में प्रारंभ होता है और वहीं पर ६ वाक्यों में कर्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसमें लेखक ने विषय का वर्णन किया है।”

“इस तडाक की ब्रह्मामन ने इस तरह सुन्दर बनवाया कि वह शीघ्र में बसा हुआ सा लगता था। यह तडाक मौर्य राजा अन्द्रगुप्त के राष्ट्रिक (साम्यगल) देश पुष्यगुप्त द्वारा बनवाया गया था और मौर्य राजा अशोक के प्रान्तीय शासक यवन गुप्तास ने उसमें मालियों और सीधियों का निर्माण कराया। मर्यकर आंभी और कर्पा के कार्य पलाशियों और स्वल्पसिद्धा नदियों में बाढ़ आ गयी और उसके पग से भ्रष्ट की बीमार में बार से बस हाथ चौका उठना ही जंवा तथा पनहतर हाथ गहरा दरार पड़ गया जिसमें जील का तारा पानी बाहर निकल गया और सुवर्धन तडाक सुवर्धन हो गया। इससे स्पष्ट है कि लेख का अधिकांश भाग भ्रष्ट के पुनर्निर्माण का वर्णन करता है। इसमें लेखक ने ब्रह्मामन के व्यक्तिगत का भी गुणगान किया है।”

“मत्स्य के इतिहास की एक ही वाक्य में लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग में चित्रित किया है, दूसरी तरह महानक तृहान का विस्तृत वर्णन है, जिससे लेखक की काम्य प्रतिभा की उत्कृष्टता का पता चलता है। लेखक ने कुछ इन प्रकार के वर्णनकारों का प्रयोग किया है जिसका प्रयोग बाद के टिलामेणों में बहुत अधिक मिलता है। अध्यात्मकार

का प्रायः अभाव ही है। केवल मुद्राण शब्द पर शब्द-कीटा और दो एक अन्य स्थानों पर उपमासंकारों का प्रयोग दिखायी पड़ता है। दूसरी तरफ शब्दासंकारों के प्रयोग में लेखक विशेषकर ने पढ़ दिखायी पड़ता है। शब्दासंकार का यह रूप जिसमें एक ही वाक्यांश के निकटस्थ शब्दों में प्रयोग होता है विशेष रूप से दिखायी पड़ता है। उदाहरण के लिए—महरण वितरण, सममायां, त्रिपदायां, अविधेयना बोधेयाना, नाम्ना .. दाम्ना .. अरुदाम्ना, शकतेजपान्तेन चरत्तेन बस्मिन्नेनावेण्णाहायेयं सेतुवम्बनोपरस्ततुप्रतिष्ठित प्रशाली परी बाहमीठविधान (कीलहार्न)।^{१०}

संस्कृत-काम्य के उदय एवं विकास पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेनी चाहिए। संस्कृत काम्य के उदय तथा विकास के प्रसंग में मैक्समूलर का 'काम्य के पुनर्जागरण' का सिद्धान्त प्रसिद्ध है।^{११} मैक्समूलर के अनुसार विक्रम का आरम्भिक चार शताब्दियों में विशेषी शकों के प्रबल आक्रमणों के कारण भारत की आंतरिक तथा निगात अस्थिरता थी, राजनीतिक बातावरण एकदम क्षुब्ध था जिसके कारण काम्य पनप न सका। साहित्य-रचना के लिए आवश्यक शान्त बातावरण की कृपा भी इस युग में दृष्टिगोचर नहीं होती। कलात पर धर्मकारमव युग संस्कृत काम्य की पीर निशा का काल है और इसका अंत तथा कल्पना का मंगलमय प्रभाव तब उदित हुआ, जब गुप्त साम्राज्य के वैभव का स्वक संतनाए उद्घोषित हुआ। अतः गुप्त काल में ललितकला का अम्पुदन उन्नत होने से संस्कृत काम्य का पुनर्जागरण हुआ। इस प्रकार विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी का युग, मैक्समूलर के अनुसार काम्य के अभाव का युग था।

परन्तु डा० बूचर ने समयाय सिद्ध किया है कि इस युग में भाषमनीय स्तुतिकाम्यों की रचना हुई थी।^{१२} यह युग गद्य तथा पद्य

१० ब० एलवेर उपाध्याय, सं० छा० ६०, पृ० १३७।

११ ई० ए० १६१३।

उभयविध काव्यों के प्रणयन का था। शक सत्रय रत्नरामन का गिर नार शिलालोल अपनी शैली की रोचकता, मानप्रबलता आदि के हेतु एक सप्त गद्य-काव्य का आनन्द देता है। यहाँ रत्नरामन स्फुट, सप्त, मधुर, चित्र, कान्त, शब्द-समय-संस्मन, उदार तथा अलंकृत गद्य-वच की रचना में प्रवीण बतलाया गया है।^१ गद्य-वच के गुणबोधक ये शब्द, नितांत पारिभाषिक हैं और किसी माय्य आलोचना सिद्धान्त की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं।^२ इस प्रकार मैक्समूलर ने ईतबी की आरंभिक दो शताब्दियों में शकों के आक्रमण के कारण संस्कृत के साहित्यिक प्रयत्नों में हास की कल्पना की थी, परन्तु इतिहास के साक्ष्य के आधार पर परिपक्वी शक संस्कृत के उन्नायक सिद्ध होते हैं, न कि विप्लवक।^३

इस चेतना को सामने रखते हुए रत्नरामन के गद्य का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। प्रकट है कि समकालिक अन्य जातियों इस देश में आकर भी, यहाँ की माया और धम का अंगीकार करके भी, माया के अवनतान में वह प्रवीणता प्राप्त नहीं कर सकी जिसे शकों ने अपनी निष्ठा से प्राप्त किया था। संभवतः विदेशी राजकुलों की स्थानोन्नत प्राकृत अथवा संस्कृत की पकड़ इसलिए भी दुबल थी कि एक ही उमका देश से संस्कृत इतनी माया और सीमा में न हो सका और संभवतः इतसे भी कि वे देश की प्रतिनिधि जातियों के विजय होने के कारण प्रतिनिधि भाषा के भी सप्तु हो गए। शकों का शक्ति विस्तार अपेक्षाकृत विस्तृत था, प्रायः मिय और मेजम की घाटी से ममबा की घाटी तक, गिर मानबा के पूर्वी तिर से काठियावाड़ और

१ स्फुटसप्त मधुरचित्रकान्तशब्दसमयसंस्मनद्वारा अलंकृतगद्यवच—(काव्य विज्ञान प्रवीणे) म।

२ मूलर, ई० ए० १९१३।

३ ५० बलदेव उपाध्याय, सं० भा० ६०, पृ० १४०।

महाराष्ट्र तक। ग्रीक स्वीडिय के शब्दों का संस्कृतीकरण शकों के ही काल में, विशेषतः उल्बकिनी के केन्द्र में हुआ। नहपान और उषव बात स्वयं सांस्कृतिक दृष्टि से इस विचार के पोषक हुए और स्ववामन को संस्कृत को राज्याभय व और राजमाया के पद पर प्रतिष्ठित कर पुष्पमित्र शुंग और ब्राह्मणों का समानधर्मा बन गया। कुल्ल आश्चर्य नहीं जो शकों के आक्रमणवाहनों के निरंतर प्रतिस्पर्धी बने रहने के बावजूद, दोनों के बीच संबंधों संघर्ष बने रहते हुए भी भाषा और साहित्य संबंधी राष्ट्रीयता के कारण ही संभवतः एक अराष्ट्रीय नहीं करे जा सक और देश से निकाले न जा सके। इस परंपरा को शकों में इस ओर से पकड़ा बचपि स्पष्ट प्रमाण इस बात के नहीं हैं, कि बुद्ध और महावीर द्वारा आक्रांत संस्कृत के पक्षपाती होने के कारण वे अमर्य विराधी और समाज के नेता ब्राह्मणों के, उनकी देवमाया संस्कृत का पल्लवन करने के कारण कुर्यापात्र बन गए हों। यह परंपरा शकों के आचरण में इतनी रुढ़ हो गयी कि जब मुत्तों के प्रबल से उन्हें देश छोड़ना पड़ा और प्रयाग स्वाम के समुद्रगुप्त के प्रशस्ति लेख ने उन्हें काबुली सीमा-माल पर निर्दिष्ट किया तब से संबंधों के उत्तर बर्ती काल में साहि राजकुल के कर्म में उन 'साहिशाहासुसाहि शक मुसबहों' ने भारत के सिंहद्वार की उसके आक्रामता तुकों से १ वी २१ वी सदी तक रखा की।

संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति उनका यह अनुराग इतने महत्व का इस कारण और भी ही जाता है कि उस काल के प्रायः सभी राजकुल संस्कृत में न लिखकर प्राकृत ही में अपने लेख लिख बाते थे। स्वयं आक्रमणवाहनों ने तो प्राकृत की अपना संरक्षण इस भाषा में ही कि न केवल उस काल का बल्कि समूचे प्राकृत साहित्य का महानतम् काव्य-मग्य 'गाहास्तसर्' (गाथा उत्तरी) की रचना आक्रमणवाहनों स्वयं द्वारा हुई। इस भाषा उत्तरी का

प्रभाव अभी सिद्धते दिनों तक, विहारी की हिन्दी सतर्क तक पर पड़ता रहा है।^१

साहित्य से भी अधिक शक राजाओं को सरदा ब्राह्मण विद्वान का मिली। उज्जयिनी उस काल का 'मानसिन्' बनो और वही नद्व विद्या और गणित का चन्द्र पना था अभा हाल तक किसी न किसी रूप में बना रहा है।^२ यद्यपि यवनो का भारतीय पर प्रभाव है तथापि उनका प्रभाव इस देश को राजनाति में प्रमुख रहन उतना नहीं पड़ा। बस्तुतः यवन क्रांति का यह भारतम्बुल संक्रमण शक शासन के मध्यम में पहला और तीसरो क्रांतियों के बीच हुआ। शक ही बाद बराहमिहिर ने क्रांति-विदेशी ब्राह्मण का प्रकृतित पौत्र विद्वान्ता की अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ब्रह्मसिद्धांतिका' में संवरीत किया। इसके अतिरिक्त भी 'बृहत्संहिता' और 'हीराण्यसूत्र' में उन्हीन गणित और कलित ब्राह्मण का अख्यान प्रस्तुत किया।

भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण सत्त्व शक संवत् है। शक संवत् परिपमोत्तर भारत में नहीं मणभारत में प्रथमतः प्रकृतित हुआ। इसका प्रथमक उज्जयिनी नगर का अथवा मध्यम था।^३ शक संवत् का प्रथमतः काशी जाता है। इनके बाद ता एकमात्र, पंचांगी और अम-यज्ञी में अखण्ड होता है। भारत का राष्ट्रीय कैलेंडर शक संवत् में ही है। यह संवत् इतीमिद् क्योंकि क्रांति-विद्या में व शक का ही प्रभाव है। नक्षत्र और गणित का इनको अधिक ज्ञान था। उज्जयिनी इस काल विद्या का चन्द्र थी।



१ डा० उवाप्पाय, विश्व साहित्य का अखण्ड, पृ० ५०२।

२ दि० ला० वृ० १०, प्रथम भाग, पृ० ७०६।

३ डा० पाण्डेय, इतिहास पत्रिका, पृ० १६२।

कम से कम शैली की दृष्टि से, मयुरा से गए हों। साधारणतः ये मूर्तियाँ कुपासकाशीन कही जाती हैं। वं स्वभा कुपास ही है, वा वे शक नहीं हैं इस संबंध में निश्चित और अंतिम राय नहीं हो जा सकती क्योंकि जैसा पहले लिखा जा चुका है कुपासों और शकों की शैलियों में कोई अंतर नहीं है और जो कुछ बताया भी जाया है वह या तो नगरेण है या कृत्रिम। सी वर्ष के भीतर का अंतर कला की दृष्टि से जब तक कि ठसमें नबाबदुल कासि ने अपने महत्त्व के लोग वान द्वारा अपना आलोचकता विशेषता द्वारा क्रांति न उत्पन्न कर ली हों, कोई अंतर नहीं होता।^१ ये मूर्तियाँ इत भाव में शक भी कहना सकती हैं।

मध्यदेश पर भी इसी प्रकार पहले शकों का फिर कुपासों का शासन स्थापित हुआ। मध्यदेश से यहाँ तात्पर्य गंगा-जमुना के परिषमा काठ से है, प्रयाग और काशी तक और जब-जब पाटलिपुत्र तक। शक शासन का एक केंद्र बाराणसी भी थी, यहाँ शकों का बनसर नामधारा छत्र शासन करता था। कुछ पहले, शकधारा क पहल प्रयाग में अम्लाठ नामक शक ने जैसा मुगपुराण से प्रकट होता है, मगध के हर्षन पाटलिपुत्र तक आक्रमण कर उसे आक्रमण कर दिया था बघनि कला की दृष्टि से इत आक्रमण को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता। बाराणसी में शकों का होना निश्चय धारनाय का कला पर उनकी संरक्षा प्रतिष्ठित करता है, जो मयुरा की शांति पूर्व में कला का एक चन्द्र बन गयी। यहाँ की अनेक शोषि सनादि की मूर्तियाँ मयुरा परंपरा में हैं—शक-कुपास शैली की परिवर्तक हैं। बाराणसी से पूर्व पटना और काशी क बीच, बनसर में जो

१ डा मगधतशरय उगाप्पाव, वि० एम० अंक; सं० २० ३
 २ १६१-८०।
 ३ यहाँ।

कुषाणकालीन मूर्तिमूर्तियाँ मिली हैं, उन पर भी शक-कुषाण-शैली की छाप स्पष्ट है^१। बस्तुतः शैली का संक्रमण सामाजिक प्रवृत्तियों की संक्रमण की ही मति जातिवों के दूर के संरक्षक से भी हुआ करता है^२। यदि इस दृष्टि से हम देखें तो पटना संघहालय में रखा अनेक मिट्टी की मूर्तियाँ उस शैली की ओर संकेत करती जो मथुरा और वारनाम की थी, जिस पर शक-कुषाण शैली की मुहर थी^३।

शकों का तीव्र प्रादेशिक विभाग और उत्तम शासन का प्रधान विस्तार मासवा और नमदा की पारी से काठियावाड़, गुजरात और महाराष्ट्र तक हुआ। आरम्भ है कि इन स्थलों में शकों के शासन काल की विशिष्ट कला-मूर्तियाँ विशरतः नहीं मिलती। उग्रप्रिनी की सुवापी में उत्तम उपलब्ध सामग्री बहुत उत्साहवर्धक नहीं करी जा सकती। उठी तरह स्वासिपर, साषी, मलना-मरहुत आदि बम्ब या ता शकों के पूर्व कहीं या उनके कुछ बाद के गुप्तकालान। जैसे उग्रप्रिनी, बाप, अर्जता, मूमरा, मोह आदि। शकों और गुप्तों के बीच बाकादको की स्थिति थी और उनके प्रभाव से भी बना कुछ कलाकृतियाँ उपलब्ध हैं, पर शकों का परिणामी भारत में निर्माण-काय प्राय बहुत थोड़ा है। ईं, अमरावती स्तूप के ऊपर की संगमरमर की सांस्कृतिक परिष्कारों का कुषाणकालीन बतलायी जाती हैं उनका गीषा संरक्षक निरन्तर कुषाणों ने उठाना न रहा हावा अितना शकों से। पद्यरि कमा की दृष्टि में आकृति-नयनों का आग्रह मथुरा की ओर था, उग्रप्रिनी की ओर नहीं, क्योंकि यह निरन्तर है कि मथुरा से दक्षिण जान वाला मार्ग उग्रप्रिनी से शहर ही जाता था, या शकों का इस दिशा में प्रधान केन्द्र था।

१ वही।

२ वही।

३ वही।

इस युग में भारतीय कला में एक ऐसी नवीनता और खोज समावेश हुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। वह तो ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि किन-किन कारणों से प्रेरित होकर कला अपने पुराने तथा जीर्णोद्धार काव्य की लोडकर नवीनता की ओर मुड़ने लगी है, पर इतिहास इस बात की तारी है कि किसी महान् पदना, गार्जनीयिक उपलब्धि-युवक के साथ ही कलाकारों के दृष्टिकोणों में भी अंतर आने लगा है उनके हृदय के कोनों में बिप्रे हुए जीर्णोद्धार कला के सिद्धान्त नई स्फूर्ति से प्रेरित होकर युग की कला को एक नये ढंग में ढालते हैं। राजा और प्रजा की समन्वित में बहते हुए सांस्कृतिक आनंद को वे कलाकार मूठ-कण देते हैं। ठाढ़ारण के लिए गुप्त-युग को लीजिए। कुषाण साम्राज्य के अंतिम दिनों की आरम्भ कला उठ टिमटिमाते हुए दीपक के समान है जिसका तल जल पुका है फिर मो उठती बत्ती उलटती जाती है जिससे उठ दीपक का प्रकाश पड़े वह कितना ही सीमा क्यों न हो बोझी देर तक चहते हुए महल में उमाला रत लके। लेकिन गुप्त-युग की कला को लीजिए तो मामूिम पड़ता है कि दीपक तो बही पुराना है लेकिन नवीन तेल बत्ती से सुशोभित होकर अपने आपवन्वमान दिनम्ब प्रकाश से वह विश्वासों को आपूरित करने लगा है।^१ वह इसी युग की प्रेरणात्मक शक्ति का कल है जिसम अनुमाश्रित होकर भारतीय कला देश-की नदार-बीबारी लांघत हुए अफगानिस्तान मन्वप्यतिना, चीन, जापान, कोरिया बरमा लंका, मलाका इत्यादि में जा पहुँचा।

(२) मूर्तिकला :

जिस प्रकार गुंगकाल में चीनी और मरुत कला का क्षेत्र वे उनी प्रकार शक काल में मयुरा भारतीय कला का महान क्षेत्र बनी। मयुरा में प्राप्त शक कालों का सिद्धांत पर के लरोप्टी सेलो से पना

१ वि० रमू० प्र० से २ १, पृ० ८१।

पसता है कि प्रथम शती ई० पू० के शक-क्षत्रप शौद्र बर्म और कला के पौरव ५^१ । मयुरा के तक्षस कला के अप्पयन से पता पसता है कि मयुरा कला पूरातः भारतीय कला थी । यद्यपि इतका प्रेरणा-स्रोत मरहट्ट और ताँची को कला को तथापि स्पूनाधिक वह उच्च परिचयी कला (गंधार कला) से भी अनुप्राणित थी (शामन कला का जो भारतीयकरण हुआ उसका नाम गंधार शैली है) । परन्तु योग्य के मतानुसार मयुरा-कला में गंधार कला का भारतीयकरण हो जाता है^२ । यानी मयुरा कला गंधार के किसी शक प्रकार से मेल नहीं खाती^३ । मयुरा की इस मूर्तिकला में एक नवान दिशा दिगई देती है, जिसमें बुद्ध-विग्रह का अंकन अधिक उस्तोस्तनीय है । इस काल का मयुरा को बुद्ध और बोधिवत्स को मूर्तियों का निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

“मूर्तियाँ या जो चारों ओर कुरेदकर अथवा बहुत गहरी कुरेदकर बनाई गई हैं, व कलाकृत के लाल रेतियों पर की बनी हैं, तिर पुटा हुआ दिखाया जाता है और उस पर पुंपराले बाल नहीं होते । चारों ओर उष्णीय होता है प्रसभन होता है, भौंहों के बीच ऊणा तथा मूँ नही होती, बायाँ हाथ धमप-मुद्रा में उठा रहता है और बायाँ हाथ को मुड़ी खींची रहती है, जो बैठी मूर्तियों में बाँप पर रखा रहता है । कप गुप्ते हुए रहते हैं छासन पर कमल नहीं होता बरन् वह निहासन व म्म में लुट-लुटे परिणतो रहित होता है । लडा मूर्ति की बरा में तिर पैरों व बीच रहता है, गुप्तकालान बुद्ध मूर्तियों व नमान मुक्त पर शक्ति एवं शोभना व मात्र व स्थान पर पौरव एवं शील का भाव हास है और प्रमामयदस नावा हास है या किनाटे पर लडा

* एनि० ई० ६ । १४१ ।

२ मयुरा म्म० डेटसाम, पृ० ११ ।

३ रि० म्म० प्र , सं० २००१, पृ० ८०४ ।

सुदायो का काम होता है। वह विशेषतः 'विन' मूर्तियों में भी पायी जाती हैं।" उदाहरण के लिए तारनाथ संमहात्म्य में कनिष्क के राज्य के तीसरे वर्ष में मिथु बल द्वारा निर्मित बोधिसत्व की विशाल प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है, जिसका हृत् अत्यधिक अलंकृत है, पेटों के बीच में तिह्र है तथा मूर्ति अत्यंत मन्द तथा अक्षिपूर्य है। ऐसी ही एक प्रतिमा मिथु बल द्वारा निर्मित इषिबन्धन स्मृतिवचन में है, जो जेजवन में पायी गयी थी। कनिष्क के राज्य-काल के दूसरे वर्ष में निर्मित एक सुन्दर बुद्ध प्रतिमा जिसका एक हाथ टूट गया है, अभी हाल में कोशाम्बी में मिली है और अब इलाहाबाद संमहात्म्य में है जिसके निर्माताका भी मिथु बल ही थे।

मथुरा कला की सबसे बड़ी विशेषता बुद्ध-प्रतिमा की देन है। परन्तु हा सकता है कि बुद्ध-मूर्ति का अंकन क्यों किया जा। परिनिर्वाण प्राप्त करते समय बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था, "आनन्द ! जिस धर्म और विनय का मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, जिसे मैंने तुम्हें बताया है, वही मेरे बाद तुम्हारा शास्ता होगा।"^१ इसी प्रकार श्रीमद् बककलि मिथु से जिसमें मगवान के दशनों की इच्छा व्यक्त की थी, और जिसकी इच्छा पूर्ति के लिए मगवान स्वयं गए, कहा था, "बककलि ! मेरी इत गंभी कला के देखने से तुम्हें क्या लाभ। बककलि ! जो धर्म को देखता है वह तुम्हें देखता है, जो तुम्हें देखता है वह धर्म को देखता है।"^२ बुद्ध मानव-गुरु ही रहना चाहते थे इसी लिए वह अपने शिष्यों की इत प्रकार का उपदेश दिया करन थे। एक उदाहरण भी है—

१ वि० रत्न० सं , २००१, पृ० ८०४।

२ महापरिनिर्वाण सुत्त (शीघ्र, २।३)

३ अर्ल बककलि कि त पूर्णिकानेन दिद्दुत्तं । नो ली बककलि धम्मं पत्तति, तो मं पत्तति । नो मं पत्तति ली धम्मं पत्तति (तंमुत्त निपाय)

तथाप्येवाप्य निष्पत्तौ तुवमिदं पण्डितैः ।

परीक्ष्य मित्तं प्रार्थय मद्बन्धु न तु यौरवात् ॥

अर्थात्—ये मित्तुगन्तु । जिन प्रकार सोम सोन को अग्नि में तथा कर, कठौड़ी में कसकर और अर्ध्सी तरह ठोड़-गाड़कर पूव परीक्षा करने के बाद उछे लरा मानते हैं उन्ही प्रकार अग्न लीग भरे बचनों को ज्ञानाम्नि में तथाकर, बुद्धिकगी कठौड़ी में कसकर तथा उनकी दृष्टकार पूर्म परीक्षा करके ही उन्हीं ग्रहण करना, कबल मेरे प्रति आदर और भद्रा क कारण ही उम्हें तस्य मत मानना ।

यदि बुद्ध प्रतिमा के आधिर्भाव के कारणों की रीज की जाय ता निम्नलिखित कारण इमार ध्यान आकर्षित करेंगे—

(क) पहले को हम सामाजिक कारण कहेंगे । एक वैदिक प्रति क्रिया क काल में भारत आये थे । बादके धर्मात्मन्नी करने अपौरयेय धर्म का अवेदिकों के सामन नीचा नही दग्ना पावत थे । उन्होंने भमण-वरपरा क विरुद्ध, जो कि इत काल तक विज्ञापी हा वलें थे, आ-दोषन किया—यदरथाभम धर्म का प्रसार किया और पठसावा कि तस्य मुर और स्वग की प्राप्ति उछी में है । इतथे उम नवबुवकों और नवमुरतियों पर आभमण धर्म का बहुत तबी स ग्रहण करने लगे थे एक अचरोध लगा और इनिमानियों के अहतों और प्रदेक बुद्धों का प्रतिष्ठा को धक्का । परिणामस्वरुप म्हाशान क शोधित्तों का अधिभाव हुआ तथा बुद्ध की मूर्ति भी कंठी जाने लगा जितका पूजा-अचना कर पररथ भी मुक्ति प्राप्त कर सकते थे ।

(ग) दूसरा कारण धार्मिक था । जन-शिक्षास तक और इतन गे पर होता है । ऐसी जनता क लिए व्यक्तिगत दयता अनिर्धार्य हाता इ अितका वह अचना हु-रा गुना तक, अचन अरति काल में अितर्की पर शरण ले सके । दिदू धम क मन्दि-भाग में ता भद्रा-भक्ति का पूरा आचरण किया जा सकना था परन्तु बौद्ध धम में इसको अ्धरथा म हा सकी थी । जब तापारण्य जनता में बौद्ध धम में शोधित्त हुई तो

मक्ति मांग में परचे होने के कारण उसे एक बड़ी कमी का बोध हुआ। प्राचीन बौद्ध बुद्ध को केवल मानव गुरु, आत्मा और पंच-प्रदशक के रूप में मानते थे। उनकी प्रतिष्ठा अभी देवपद पर नहीं हुई थी। बौद्ध धर्म का यह प्रारंभिक रूप हीनवान काल में हुआ। क्योंकि मक्ति-मायना कहलाने समय महात्मान काल में हुआ। क्योंकि मक्ति-मायना का उद्देश्य सबप्रथम इसी में हुआ उसक पहल तो वह 'महान्तरा' थी। महात्मान में बुद्ध की मूर्ति के लाम-लाम अनेक 'बोधितत्वों' की कल्पना हुई, उनकी भी मूर्तियाँ बनी और कालांतर में हिन्दुओं को ही मूर्ति बौद्धों में भी देवमदक बना जिसमें अधिकतर हिन्दू देवता—शक्र ब्रह्मा, कुबेर आदि—अपने पुराने नाम से अथवा नाम बदलकर लिये गये। बुद्ध, बोधितत्वों और अन्य देवताओं की तहसों मूर्तियाँ कोरी गयी और लामारय बौद्ध जनता की उपासना का केन्द्र बनी।

(ग) इस काल की बुद्ध अथवा बोधितत्व की प्रतिमाओं का बहिःप्रसक्तन किया जाय तो तीसरा कारण भी स्पष्ट हो जायगा जिसको हम भारतीय कारण कहेंगे। ये मूर्तियाँ तत्कालीन मायना का पूरा अंकन करती हैं। वह काल विदेशी आक्रमकों का था। शक्ति और पला का ही सारो तरह बोलबाला था। विदेशी स्वयं शक्तिशाली अश्रेष्ठता का मापदण्ड उनमें पौरुष और शील था। इसीलिए पौरुष और शील का—बुद्ध एवं बोधितत्वों के मुखों पर—उद्देश्य शला दिखाया गया है। इस संबंध में यह भी जान लेना चाहिये कि शक लोग अमू हरिवा की पाटी में बतने स पूर्व बबर, डाकू, लाना बदीर थे। लानाबदीरों का न कोई धर्म होता है और न धर्म। यहाँ धामे पर उनका ईरानी और ग्रीक संस्कृतियों से संरक हुआ जो मूर्ति-पूजक थे।

१ टी आर की मूर्ति, रि सेंट्रल रितावकी आर बुद्धिम ४ ६.१

इस प्रकार बुद्ध प्रतिमा का मूर्तन एक ऐसी जाति के द्वारा संभव हुआ जो बुद्ध के लिए हमेशा उत्तर राखी थी जिनके बचता यम और देराकस्त—मृत्यु के देवता—बर्बरता के द्योतक दबता थे। परन्तु भारतीय सीमा में प्रवेश करने ही व शक्ति की प्रतिमा बुद्ध से प्रभावित हुए बिना न रह सके। इसकी इन विदेशी शासकों के मिश्रके और अभिलेख प्रमायित करते हैं। इस प्रकार यम और शक्ति का समन्वय हुआ। वही कारण है कि बुद्ध की प्रारम्भिक प्रतिमाओं में पौरुष और शक्ति का उद्रेक हाता दिलाया गया है। जैसे जैसे विदेशियों की बुद्ध-सिप्ता छोड़ होती गयी, यम का वास्तविक अर्थ व समझने लग। बुद्ध प्रतिमा के अंकन में परिवर्तन भी हाता गया—पौरुष और शक्ति के स्थान को शान्ति और नीम्यता प्रकृत करवा गया।

इस प्रकार मथुरा कला व बौद्ध कला का अन्त काल में विकास का भरपूर अवसर प्रदान किया। कनिष्क के अनुसार यहाँ यही भी वह उत्तरी-पश्चिमी भारत में यथे सोकरी के रेत से परपर में यम बोधि वस्तु की मूर्तियों को पाया। इन्हें निर्मित हाता है कि मथुरा बौद्ध कला का बहुत बड़ा बन्दू था। कनिष्क के इस कार्य का समयन उस काल का अभिलेख भी करता है^१।

ताननाथ में प्राप्त कनिष्क के बौद्ध मूर्ति पर लेख से पता चलता है कि बोधिसत्व को एक प्रतिमा, महाउदय परपत्तान के अन्त बनपर में जो कि वाराणसी का अन्त था, कनिष्क के शासन काल के हातरे यम में उत्तका भेद किया था। जितनी विष्णुवत्त म बनाया था। कागल के अनुसार वह मथुरा का निवासी था^२।

१ मथुरा म्यू० कैरलाग, पृ० २५ ।

२ एपि० ई० ८ । १७१ ।

विष्णुवत्तस्य मेरिडकरय बोधिसत्वो प्रतिप्राप्तितो ।

महाउदयेन परपत्तानेन तथा अन्तपन बनपरेन ॥

३ मथुरा म्यू० कैरलाग, पृ० २८ ।

शक धर्मप बोद्ध कला के विकास ही में नहीं समे के बल्कि वे पमलहिष्णु के और अन्य बर्मों का भी विकास का अवसर देते थे। इतकी मयुरा में पाये गए जैन स्तूप अथागपट्ट आदि प्रमाणित कर देते हैं।

(४) भारतीय कला की व्यापकता

भारतीय कला सभी सभ्यताओं का सर्वतोनिष्ठ एक ही मूल था। अतएव कोई मूर्ति जैन है अथवा बौद्ध इतका हम तब तक निर्धारण नहीं कर सकते हैं जब तक उस पर इत बात का कोई चोटक लेल नहीं मिलता। अथागपट्ट की ही लीजिए। ऐसा कहा जाता है कि अथागपट्ट जैनो के होते हैं किन्तु इसकी असारता तब हो जाती है जब हम यह जान जात हैं कि अथागपट्ट बौद्ध बनवाते थे। इसका ज्ञान हमें अमरावती के क्रिस्तुष्ठा नामक स्थान होता है^१।

भारतीय कला पर किसी बर्म विशेष का एकाधिक प्रमाण नहं या इसका समथन 'अभयनामरडडीका भी करता है जहाँ कनिष्क अमस्वरूप जैन स्तूपों को बौद्ध स्तूप समझ लेता है। वह बात नहीं तक लागू नहीं होती। यदि प्राचीन भारतीय कला में प्रयोग किये गये कुछ चिन्हों, जो केला जाय तो बात होगा कि वे समान रूप से सभी बर्मों में प्रयुक्त किये गये हैं। उदाहरण के लिए 'मिश्रण को लीजिए। साधारणतया मिश्रण शिव धारण करत हैं और इतके शैव बर्म का शेष होता है। पर प्राचीन कला में वह समान रूप से सभी बर्मों में प्रयुक्त हुआ है, जो मिश्र-मिश्र बर्मों और प्रबोजनों के साथ पकट देने हैं^२। इसी तरह 'स्वस्तिक' स भी साधारणतया जैन मन का शेष होता है। किन्तु 'त्रिशूल' की ही मूर्ति यह भी सभी बर्मों

^१ लुआ, सी० पी० ई० हि०, पृ० १११ ।

^२ एनि० ई० २। १११ ।

द्वारा अपनाया गया है—पवित्र और भाव्यशाली प्रतीक के रूप में।

वहाँ जो भ्रम पैदा करने वाली चीज है वह है 'चमचक्र'। इसका जैनों में ठठना ही प्रकार किया जितना पीड़ों ने। करने का तात्पर्य यह है कि इस प्रतीक का जैनों और बौद्धों ने अपनी कला में प्रमूत प्रयोग किया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मथुरा तक्षक कला है। यह कोई आश्चर्याम्बित कर देने वाला बात नहीं है, क्योंकि 'चक्र' प्राचीन रामनीति-शास्त्र और हिन्दू जन विश्वासों में बहुत महत्त्व का स्थान रखता था। संस्कृत कौश 'चक्र' का अर्थ 'राष्ट्र' भा करते हैं। चक्र का अर्थ समझ लेने पर ही राजा-बन्धवटी पना का महत्त्वकावा रहता था।

इस प्रकार कदासीदीला क य तक्षक इस बात का प्रमाणित करते हैं कि जैनों की प्राचीन कला बौद्ध कला से पूर्णरूप से अलग नहीं लगती थी। दोनों संप्रदाय एक ही प्रकार के धाम्प्युक्तों का प्रयोग करते थे, एक ही जैसे कलात्मक 'मोटिफ' और पवित्र प्रतीकों का प्रयोग करते थे। उनमें यदि विषमता थी तो छद्म-छद्मि पाठों में। यह प्रश्न ही रहता है कि एक संप्रदाय का मानने वाला दूसरे संप्रदाय की बातों की क्यों अपनाता है, इसके लिए कहा जा सकता है कि दोनों भारत की राष्ट्रीय कला से प्रभावित थे और एक ही कलाकार ने अपना पात्रों का निर्माण करात थे^१।

(४) भारतीय कला की सर्वग्राहिकता

एक दिग्दर्शी की आश्चर्यकता इतना ही अनिपाय है गई कि जिस हम एक कला करेंगे बस्तुतः शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि में थे, म प भारतीय कला है। य ली लरी ईतपो पूर म लेकर तातरो लर। ईसवी तक की भारतीय कला उनमें भिन्न एक-कला नहीं। जैसे 'नाथारण्य' विधि क्रम और 'ध्यानमेरु' के कारण हम एक-कला, कुराण-कला आदि में

^१ जूलर, एनि० ई० १। १११।

बार था। इन छोटे कमरों को कुटी भी कहते थे। तारनाथ के विहार में बुद्ध की कुटी का नाम पीछे मूलगंधकुटी पड़ा और उसके विहार का नाम मूलगंधकुटी विहार। उन कुटियों के बीच बड़े पैमाने में डोठ स्तूप होता अथवा संप्रदान विरोध की पूजा-मूर्ति प्रतिष्ठित होती थी। हीनयान विहार के पैलों के सामने की दीवार पर अर्थात् में संप्रदाय का प्रतीक उभरा रहता था।

ईट-सबरो से बने प्राचीन विहार का अब न रहे पर पर्वतों की काठ कर बनाये प्राचीनतर विहार आज भी लड़े हैं। गोदावरी छत्र के निकट के प्राचीन नहयान विहार, लख नं० ८२, हीनयान संप्रदाय का था। उसके सामने ठिकाने आघार और पट पर लड़े हैं और उनके शीर्ष बटेनुमा आकृतियों से मण्डित हैं। उसके भी ऊपर विराहित है, जिस पर हृष्य है, काले के स्तंभों के अनुकरण में। नहयान विहार के अतिरिक्त इसी नहयान का अमितेवो से बुद्ध की अल्प विहारों का भी पता चलता है। एक है काले का गुहाविहार और दूसरा है बुन्दर का।

नहयान विहार के अलंकार काले के पैल-ग्रह में अधिक विकसित हैं। काले की लोह मारतीय शालुक्य के उत्कृष्टतम उदाहरणों में है। इस लख के नाम १२५-८२ कुछ है। लख को बहिकाओं से परिवर्धित है तथा ऊपर का लकड़ी का पुराना छत्र अब भी सुवर्धित है। नाभिक की तरह पैल-ग्रह का मुलका हो लकड़ी में विभाजित है। निचले खण्ड में तम्र द्वार है तथा ऊपरी खण्ड में एक बड़ा अग्रयाता वातापन है। पैल-ग्रह के दोनों ओर गलियारे झाड़ते हुए स्तंभों की पंक्ति है। इनके सिरे से ठठठी हुई काठ की विस्मिया अथवाकार दण्ड का द्योती थी। नीचे के खण्ड में द्वारों के अंत्यस्थों में मूर्तियां अंकित हैं। निचले दरवाजों के आगे निकसता हुआ एक वृत्त द्वारा है जिसके मंगल में कई सफट तक बालु अलंकरण (इमारती सिलाबट) अंकित है। इनमें सबसे निचली इमारती सिलाबट को हाथियों की

मूर्तियों अपनी पीठों पर संभाले हुए हैं। परंपर में बहुत से गड़दे इस बात के साक्ष्य हैं कि सिद्धार्थ के पहले कोई लफड़ा का दरवाजा रहा होगा। शैल्य के बाहर एक समसक से मण्डित ध्वजस्तंभ है।

प्रारंभ में कारीगर पत्थर के ऊपर लकड़ी के टीप के रूप में व्यवस्था पूरक लकड़ी के सिद्धार्थ एवं शैल्य-मंडप बनाते थे। ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी के प्रारंभ में परिपक्वी भारत के बौद्ध एवं जैनो में ईसवी पूर्व तीसरा शता में अग्योक द्वारा 'बराबर नामक पहाड़ी में बनवाई। आजीवकों के गुहानिवालों के समान गुहाओं का निर्माण किया। इस गुहा के पुरोभाग में पीढ़े के माल के आकार के लोग ही इसके एकमात्र अलंकरण हैं। इसमें संदेह नहीं कि ईसवी पूर्व नृपरो एवं पहली शताब्दी में भाजा, अडन्ना, विदिद्या, नामिक एवं काले आदि के शैल्य मंडप बराबर की सामग्र्य श्रुति की गुहा की अनुरक्ति में बनाए गए हैं। उनके पुरोभाग में या नाम के आकार के संरक्ष हैं। परन्तु उनपर मानव आकृतियाँ एवं अन्य दृश्य अंकित करके उन्हें अधिक सुन्दर बना दिया गया है।

शैल्य मंडपों की रचना ईसाई गिरजाओं से मिलता जुलता हुई जाती है। शैल्य में समामरदन होता है, उसमें पूजास्थल पर ठाठ स्तूप होता है। यह सब या तो अष्टान को काटकर बनाया जाता है या लकड़ी और हथका बना होता है। समामरदन के चारो ओर प्रसंख्यारथ होता है।

(३) मन्दिर

एक रूपति बौद्ध और जैन धर्म तथा कला का ही विकास करके भी संभव नहीं है, बल्कि वे धर्म के अन्त में परिष्कृतता प्राप्त थे। उनका काल में अनेक धर्मों का कला का भी विकास हुआ। मागधन-महिरो और मूर्तियों का इस काल में निर्माण हुआ, इनका पना तात्कालीन अभियोगों में चलता है। यदि तथीक मेवात पर

दृष्टिगत किया जाय ता पता चलेंगा कि भगवान् बामुदेव की प्रवृत्तता के लिए तथा स्वामि महाद्यमन शोडश के राज्य के संबन्धन एवं विकास के लिए 'बहु-पाला', 'तीरथ' और 'वेदिका' का निर्माण किया गया ।

(उ) लाकिक प्रकार

यदि शुक्रकालीन अभिलेखों पर दृष्टियस्त किया जाय ता इतका पता चलेंगा कि उस काल में कितना धार्मिक स्मारकों पर बल दिया जाता था उतना ही लौकिक स्मारकों पर भी ध्यान दिया जाता था । बारी, तडाक, कुं, धर्मशास्त्रा आदि बनवाने के दृष्टान्तों से शुक्र कालीन अभिलेख मरे पड़े हैं । ऐसा करना पुस्तकर समझा जाता था और अधिक संख्या में राज्य और राज्यतर व्यक्ति इन्हें लोचबाकर प्रस्तुत करते थे । अद्रगुप्त माय के समय में शौराष्ट्र प्रांत का राष्ट्रीय पुष्पगुप्त ने मिरनार पर्वत पर ही नथियों की बाँधकर एक सुंदर झील बनवा दिया था । अशोक के काल में यदुनराज दुभास्य ने ठसे अनेक नाथियों से अर्जकृत कर लिया था, जिनका प्रयाजन जल का प्रवेश और निष्काशन रहा होगा । यह झील प्रायः चार सौ बर्ष परवान् १५० इसवी में सूख गयी । चार सौ बीस हाथ लम्बे, उतने ही चौड़े और ७५ हाथ गहरे सुद हो जाने के कारण इतका सब पानी निकल गया था । इन भागों से पता प्रतीत होता है कि वास्तव्य अति विद्याल रहा होगा । यदुवामन ने इतका पुनर्पदार करान्या और अब इसका सम्भार, चौकई विगुनी कर दा गया ।

१ बहुना भगवतो बामुदेवस्य महास्वान् बहु-पालं तारकं वेदिकाः प्रतिष्ठापिता प्रीतिं महनु बामुदेव स्वामिस्य महाद्यमनस्य शोडा तस्य संरतेपाठम् ।

२. एदि० इ० ८ । ४२ । प्रयातिमिरल्लहृत् ।

३. बरी ।

तालाब के तैयार कराने में धारा (मृत्तिका) और पत्थर (उपल) का काम में लाया गया था। इसके विस्तार और आयाम में पालि काओ (मोहिङ्ग) को बनाकर उसकी मजबूती को और बढ़ कर दिया गया था। उसकी संविर्षा सुरिक्षण थी। सीदियों को भी व्यवस्था थी।

अट्टालिका, उपतह, द्वार, शरण, चतुःशाला, आराम, उदपान कूप आदि का भी निर्माण होता था। अट्टालिका, उपतह, द्वार, शरण आदि स्थापत्य कला संबंधी शब्दों का हम इन्द्रवामन के शृनागद लेख में पाते हैं।^१ उसी प्रकार चतुःशाला, आराम, उदपान का बयान उपर्युक्त क अमिलेय में मिलता है^२।

(६) वस्त्राभूषण

सभी शक जातियों का प्रायः एक ही सा लिबास होता था। वे एक समान शीशरकाट पहनते थे जो ठीक आजकल के 'मार्निंग ड्रज' की तरह होते थे, जिस पर ऊर लगा होता था। पैर तथा कटि-प्रदेश का ढकने के लिए वे लम्बा जूता तथा छलवार पहनते थे। शिर पर वे डोरी भी रगत थे। डोरी ऐसी होती थी, जो उनके कान तथा गाल के कुछ हिस्स को ढक रहती थी। उनके अरण में एक लम्बा छलवार होता था जो उनके कमर पर एक बेल्ट के सहारे हमेशा लटकता रहता था। उनके कमरबंद पर लान का काम किया जाता था। इस प्रकार का एक कमरबंद ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है, जो कि आधुनिकता की गुंजायौ में प्रायः एक निधि में मिली है। शकों का ऐसा वस्त्राभूषण उनके उत्प्रेर प्रवेश के होने की और अनायास ही हमारा ध्यान आकर्षित करता है। प्रोफसर हजरोट के अनुसार^३

१ गिरि शिखर-लक शृनागदकालक-द्वार-शरणपुस्तक ।

२ एरि ई० ए। १५। ७८।

३ मे० आर्से एवे ई० १४। ५।

ऐसा मेरा प्रायः सभी राज आविर्भावनाए हुए थी जिससे मालूम होता है कि राज अपने देश को भूले नहीं थे। हमारे यहाँ भी पुरातत्व संवहासनों में सुपडित इन राजों के आरम्भक स्टैम्प और टस्पीरें प्रोफेसर हजकीश के कमिषन बास्य की ओर। हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं।



उपसंहार

एक विशाल स्त्रीपिबन जाति की एक शाखा से जिसका मूल निवास मध्यएशिया का भूमि प्रदेश था। बृहस्पिणों के मंत्र से उनकी अपनी मूल भूमि की छोड़ना पड़ा। उनकी वह निवास भूमि जहाँ वे बसे 'शकरमान' कहलाई। कालांतर में मगधात द्वितीय के मंत्र से उन्हें वह स्थान छोड़ना पड़ा। यालन हरेँ को पार कर वह क्षिप में पहुँचे और उन्होंने वहाँ अपना केंद्र डाला। उनका वह आवास 'शकरीय' कहलाया। इन शकों में कालान्तर में, भारत में, कई राजवंशों की स्थापना की और भारतीय संस्कृति को प्रायः ६०० वर्षों तक प्रस्तुत एवं पुष्पित किया। क्षिप, लखण्डिता, मयुघ, महाराष्ट्र और उज्जयिनी उनका शासन केंद्र बने। समूचा उत्तरी और पश्चिमी प्रदेश उनके अधिकार में आ गया।

उन्होंने पहले अपने को ईरानी पार्यब लघाओं का 'घन' कहा फिर वे 'महाघन' कहलाए और अंत में 'शाहिशानुशाहा'।^१ परन्तु एक दिन के लिए भी उनकी लघा ईरानी लघाओं के अधीन नहीं रही, वे प्रारंभ से ही भारत में स्वतंत्र शासक की हैसियत से शासन करने लगे थे।

शकों का पश्चिम में उत्कर्षकाल तीसरी शती ईसवी तक था, यद्यपि वहाँ उनका राज्य चौथी शती के अंत तक बना रहा। दूसरी शती ईसवी में महाराज का शासनकाल उनकी शक्ति का परम अकृष था। पूरे पश्चिमी जगत् का भारतपर आहार उनका हाथ में आ गया और उनकी लघाई नगरी उज्जयिनी आगरा, कम्पा और विद्या का केंद्र बनी। उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम जाने

१. समुद्रगुप्त का प्रथम स्तंभ का मशहुर लेख।

वाले ब्रह्मिण्यय उपजयिनी ही में मिससे थे ।

इस दीर्घकाल में अनेक प्रकार से उन्होंने यहाँ की राजनीति समाज, धर्म, भाषा-साहित्य और कला आदि को प्रभावित किया। इन्हीं की शक्ति से टकरा लेने के कारण इस देश में बिक्रमादित्यो की परंपरा चली।^१ एक ओर तो वे शातवाहन सम्राटों के छाय भूमि के लिए लड़ते थे, वृत्ती और भारत की संस्कृति को संवारते थे। शक धर्मी प्रकार से मारतोंक हो चले थे। भाषा और साहित्य को उनकी संरक्षा से बड़ा आभय मिला। एक नई चेतना, एक नया उद्दीपन उस दिशा के साधकों को मिला।

हमारे संस्कृत साहित्य को अनेक कृषियों में उनके कृत्यों की प्रति प्वनि उठी। गागीं संहिता के युगपुराण में उन्हीं के शक सेनापति अम्हाड के पाटलिपुत्र पर भीषण आक्रमण का विवरण दिया हुआ है।^२ मगध पर शुंगों के परचात काबलायनों का शासन हुआ था फिर उनके हाथ से ब्रह्मिण्य के आग्र्य शातवाहनों ने छया खीन ली। किन्तु जब शकों के परिचामी भारत पर अधिकार कर लेने पर आग्र्यों को उस नई विपत्ति का अपने पर में ही सामना करना पड़ा, तब उच्चर का अधिकारबद्ध उनके हाथ से निकल गया। उची समय शक अम्हाड ने मगध पर भीषण आक्रमण किया और मध्यप्रदेश को रीं चठा पाटलिपुत्र तक का पहुँचा। यहाँ उन्होंने इतनी मारकाट की कि नमर और जनरद नरबिहीन हो गए। युगपुराण क अनुसार उस नरसंहार क कारण पुर्य उल पया से तबका लुप्त हो गए। तारे कार्य सिध्यों को ही करने पड़े। तलवार से लेकर हल तक उन्हीं के हाथों में आ गये। इस उल काल की राजनीतिक उपल-मुपल का भी पठा चलाता है। इतका समाज पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इतका अंदाज लगाया जा सकता है। स्वामाविक है कि बर्ण-भ्यवरया टूट गयी होगी और श्लेष

१. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विरलेपक, पृ० १७४-२४।

२. अ० वि० उ० रि० लो० १९।२७६६।

करे जाने के बावजूद विजयी होने के कारण शकों को समाज में निम्न स्थान स्वीकार नहीं हुआ होगा, जिससे उनको बर्तों के उतरते स्तर पर कहीं रत्नना पड़ा होगा। समाज में ब्राह्मणों में एक ऐसा परिवार मिलता है जो अपने को 'शाक्यी' कहने में गर्व का अनुभव करता है।

शकों का इतना रोचक भी बम और कला पर अज्ञानपूर्ण गहरा प्रभाव पड़ा। तात्पर्यतः मी इतनी विभिन्न जातियों पर शासन करने के नाते उनको विश्वास के संबंध में सार्वभौम और उदार होना चाहिए था। इसीलिए उनके देवमण्डल में मध्यएशियाई देवता सूर्य, चंद्रमा और बुनानी देवी-देवताओं के साथ ही भारतीय बुद्ध की भी आकृतियाँ बनी हैं। यही ठिकठे गुप्तों के ठिकठों के लिए आश्चर्य बने थे। गुप्त ठिकठे कुषाणों के ठिकठों से प्रभावित थे, यह उनके ठिकठों को देखने से स्पष्ट मालूम पड़ता है।^१

इस काल में बौद्ध धर्म के विशिष्ट संघराय महायान का जन्म हुआ, जिसने आदि मार्ग के अनुकूल वैयक्तिक देवता का सूत्रन किया और परिणामरूपरूप भारत को बुद्ध की पहली प्रतिमा मिली। तत्काल भारतीय लघुक धर्मगणित संस्था में बुद्ध की मूर्ति कोरने लगे। मयुरा लघु कला का केन्द्र बनी।

भारतीय कला की मुद्रा अधिकतर मूक, गम्भीर और विन्तन प्रदान थी। इस विदेशी कुषाण भाष कला ने उसे अपनी प्रकृत्य मुद्रा प्रदान की। बुद्ध के मूक और शान्त रूप पर बोधिसत्व की अमिराम प्रमत्त लुटा दिटकी।^२ स्तूप 'निवाण' के प्रतीक थे, पर उनको घेतने वाली रेनिमों पर उल्लेखित अनिर्दिष्ट जीवन लक्ष्यता था और जीवन के उक्त उल्लेख को महायान में गति थी। स्तूपों की रेसिंग (बधिनी, बरिडा) स्तंभों के शिखर पर और सामन लंकाय

१. डा० अस्तुंकर, बगाना हीट।

२. दि० सा० ब० इतिहास १।७१४।

मान हथड़ों पर, हाथोंरखों पर जीवन उत्कृष्ट बना, उत्कृष्ट ईश्वर प्रतीक तत्काल ही गए। बस की बात पकड़े मुन्ही शासकभित्तियाँ, ब्रह्मचरनन यक्षिकाएँ अनंत रूपों में अभिव्यक्त हुईं।

आज के हमारे राष्ट्रीय परिवान—अथकन श्रीर पाजामा—का मूल और अभिव्यक्ति हम पहले-पहल इस देश में शकों ने ही प्रस्तुत किया।^१ प्राचीन से प्राचीन काल में भी भारतभय में बसने के क्षेत्र में केवल दो बस्त्र—पोली और शाह मा पावर प्रयुक्त होते थे। आर्यों ने टप्पीय, द्रापी और मारिबों के लिए एक प्रकार के कंबुक का प्रचलन किया। इनमें द्रापी आर्यों के मध्यप्रदेशियाई संघर्ष का परिणाम थी। प्राचीन हिन्दू काल में भी प्रायः टप्पीय उत्तरीय और अन्त-वस्त्र का ही प्रयोग रहा। इनकी बिना छिले ही प्रयोग में लाया जाता था। परन्तु पश्चात्कालीन वह शारी भारतीय बेय-मूया जो आज राष्ट्रीय कुरी आने लगी है, वास्तव में अमरतीय है और भारतीय इतिहास क विविध आक्रामकों की देन है। अथकन, बिते मुगलों में परिष्कृत कर प्रायः आज का रूप दिया वास्तव में प्रथम शती ईसवी में कुपायों ने भारत में बलाया था।^२ कुपायकालीन कुपाय-सैनिकों के बेय से यह रूप है। नागाहु नीकोडा में प्राप्त एक शक सैनिक के बेय से यह प्रमाणित हो जाता है। पाजामा भी बिसका आधुनिक रूप मुसलमानों ने भारत में संभारा, उन्हीं शकों की देन है। पगड़ी का कोई न काह हम शारे मध्यप्रदेश में प्रचलित रहा। भारत के प्रथम सूर्य प्रतिमा में हम इसी परिवान को परिष्कृत करते हैं। इस प्रकार का परिवान कोई भारतीय देवता नहीं पहनता, पगड़ी और जूते तो कभी नहीं। सूर्य की प्रतिमा कभी लंकर धारण नहीं करती और यदि सूते हाथ में कमलदण्ड न होता तो मूर्ति का प्रमथय शक

१ हिन्दी साहित्य का बहय इतिहास, ११०-६।

२ भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ० २२८।

या कुशाग्र नृपति की प्रतिवृत्ति मान लेना स्वामाजिक या और एकाध विद्वानों को पहले वह भ्रम हुआ भी था ।'

इस विदेशी संघर्ष का भारतीय जीवन पर अपूर्व प्रभाव पड़ा । लोगों के सामाजिक दृष्टिकोण में प्रमूढ अंतर पड़ा । वहीं विदेशी भारतीय जीवन और विचारों से आह्वित होकर उठक बर्म और संस्कृति की अपनाने और उसकी लाक्षणिक कला संवारने लग, वही समाज का एक अंग नई सामाजिक व्यवस्था के संगठन में लगा । स्मृतिवा और बमशास्त्र नए सिरे से लिख गए । उनक नए संस्करण में बर्गों की पवित्रता की रक्षा के लिए उनक विधान और कठोर कर दिए । उनको नए अनुबंधों से जकड़ दिया, यद्यपि विदेशियों के निरंतर आयातों से वे अजर ही उठे व । बाल-विवाह का विधान किया गया जिसमें तदर्थ कम्पाओं की विदेशी लुट्टों से रक्षा हो सके, क्यों क पति का अपना पत्नी को रक्षा कर सकना अनेक बच्चों वाले रिता की अपेक्षा सहज था । परंतु इन विधानों के रक्त हुए भी पयात्र मात्रा में धम्मिभय हो चुका था । धम्मिभय राजन के सारे प्रयत्न निष्फल हुए । क्योंकि विदेशी विजिता ये उन्हें न तो अनुबंधों का डर वा और न धोखे करने वाले अनुबंधों का । इस प्रकार उनका भारतकरव हाता था रहा था । वे अपने का भारतीय समझन लग व । ब्राह्मण पण उनसे प्रसन्न था क्योंकि उन्होंने ब्राह्मणों का माया में अग्न लेग लिएबाय एवं उसको 'राजभाषा के पद पर आर्षिन किया । संभवतः उनक भारतीय विचारों के प्रति इसी प्रेम से उनको अराष्ट्रात्वं में बनन दिया । यह परंपरा आपको क आचरण में इतना रुढ़ हुए कि जब गुप्तों के प्रयत्न से उनको देश हाइना पड़ा और प्रयाग स्तंभ के समुद्रगुप्त के लेग में उन्हें काउन्ती साम्राज्य पर निर्दिष्ट किया तब स तद्विन के उलगवती काल में 'शाहि' राजकुल के रूप में उन 'पारिषाहानुवाहि राजमुपदरो' में भारत के सिंह द्वार का उठक आक्रान्ता युद्धों से १ की — १२वीं सदी तक रचा का ।

शक-अभिलेख

१ मैरा अमिलेख

मापा : माहृत
लिपि : खरोष्ठी

तिथि : ५८ (६० ई पू०)

- अ
- १ संकरमित खण्डपुरीखिलत
 - २ अतिबलन यपदन

- ब
- १ एत सम २० २ १० ४४ ।
 - २ रूप - १० ११ ...
 - ३ ... मि अमयमि दिव
का० ई० ई०, कोनी, माय १, पृ० ११ ।

२ वमिजद का शहदीर लेख

मापा : माहृत
लिपि : खरोष्ठी

तिथि : ५० (६५ ई पू०)

- १ रजनी वमिजदत लकन ... पच्छिम २० २० २
- २ मित्रवपनपुत्र दिव विप्रमतप्रतर
का० ई० ई०, कोनी, माग १, पृ ११ ।

आ

३

पतिक का तदशिला ताम्रपत्र-संज्ञ

माया : माहृत

लिति : तारोष्ठी

तिथि : ७८ (७७ ई० पू०)

- १ (संज्ञा) रये अठसतिसप्त २०२०२०१०४४ महारयस महंतस
(मा) गत प (मे) मस मसत विषसे पंचमे ४१ एतये पूर्वये
अर (त)
- २ पुन्तस च अत्रपत लिखको कुमुलुको नम तस पुत्री (पतिकी)
तन्मशिलाप नगरे (।) उत्तरंय प्रमुदेसो सेम नम (।) अत्र
३ (६) से पतिकी अमतिद्वित मगवत एकमुनिस हरिं (प्रति-
पति) (स) परमं च तत्र-बुवन पुषए मस पितरं पुषव (ता)
- ४ अत्रयस त-पुत्र दरस अमु-बल-बर्षिए अठर सच (च) (मतिग)
(वि) पवत न पुषयता (।) महानरति पतिक तत्र उच (म्)
ए (मि)
- ५ रीद्विशिमिभेण य इम (मि ?) संपरम मसकमिक (॥)
- ६ पतिक अयत लिखक (॥) परि० ई० तयए ४ पू० ५५ ।

४

मयुरा सिंह शीर्ष अभिलेख

माया : शौरमना शाहू

लिति : गरोष्ठी

तिथि : (नयमग २२ ई० पू०)

पृ. प—१

अ (क)

१ मरुत (च) वन रजुनन

२ अममदेति कबमिअ

- ४ लरं (ह) ओस्तो पुवरम
 ५ मत्र नबहि (सि ?) अकठ (?)
 अ (ल)
 ६ तत्र मत्र अमुहोस्त (प)
 ७ विप्रमहि विप्रसिद्ध अ-
 ८ अ इमुअरन तत्र इन वि (न)
 ९ अतेउरेन होरक-प-
 १० रिबरेन इम मबुवि-अने
 ११ अे निसिमे शरिर प्रबिठविधो
 १२ भरुवत्रो शकमुनिठ कुवठ
 १३ म (?) कि हि (?) रवठ शप [अ] मुठवित (?)
 १४ पुव अ तपरम अ पनु
 १५ विप्रत तपठ लरं
 १६ छिबत्रन परिमहे

ब

- १ कष्टर अ
 २ बरवो [१]

स

- १ नठहृथो [१]

मुप-२

६

- १ महधनवठ
 २ बजुलस्य पुत्र
 ३ शुदसे धत्रये

अ (अ)

- १ लरं (ह) ओस्तो पुवरम
 २ ललमत कुमर

३ मय कनिठ

४ समनमात्र

घ (ष)

१ ऋ करित

ऋ और स

१ अवरिचस

२ बुधनेवस

३ उत्रएन अविमित (त !)

इ

१ गुरुविहर

इ (ऋ)

१ धमदन (!)

ए

१ बुधिलस मकरघस

२ मिगुस लर्बस्तिवप्रत [१]

म

१ महाघ (ऋ) वस्य कुतुलघस परिकस मेव (!) दिन

२ मिदिक्त धववत पुपए [॥]

इ (ऋ)

१ कमुरछो [१]

पुप—३

म

१ ध्रुवे शुद्धिमे

१ इमा वदुदि

३ प्रबभो

य

१ वेपउदिन कधारा बुला

- २ रो कव
३ बरो
४ विवड

१ बं.....पसिदिन (१) ख (१—२)

२ निठिमी करित निवदिनो

ख (१)

१ सवस्तिवजन परि (१) प्रदे

न

१ अयदिघस बुभिसत नकरकस मिसु

२ स सवस्तिवजन पम

३ न महसदिघन म

४ ब (१) म विवदे लहलत [॥]

बो

१ सवसुपन पुव [१] बमत

२ पुव [१] लपत पुव [१]

प

१ सवस सवस्त

२ नत पुवप [१]

ब

१ लवसत

२ सवसत [१]

१ र (स १) विलत र

२ कानिनत [१]

ख (अ)

१ लवसतयु—

२ सा [१]

मिलेवड ईसुप्यान्त, डी० सी० सरकार तं० १ ५० ।

ॐ

५

मोरा रूप लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिरि : ब्राह्मी । तिथि : (लगभग २२ ई० पू०—१६ ई० पू०)

- १ महात्तमपठ राज्ञुल्लस पुमस स्वामि....
- २ भगवता बुप्पीना पंचवीराणा प्रतिमाः शैलदेवप...
- ३ बस्तोरायाः शैल भीमदृष्ट मनुल्लम बभत्तमभार...
- ४ आचदिया शैला पंच ज्वलत इव परमबपुया....

भा० ठ० प्र० हि० शो० लण्ड २४—२५ पृ १३० ।

६

मथुरा अयागपदु लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिरि : ब्राह्मी

तिथि : ७० (१४ ई०)

- १ नम अरहतो बर्षमानस (।)
- २ एव (।) मिठ महात्तमपठ शोडासत स () बस्तरे ७० हेमंत मासे रिबस हरिति पुत्रत पालस भयाये लम (नं) त (।) बिक्राय
- ३ कोद्विमे अमोहिनिये सहा पुत्रे हि पालपोपेन पीठपोपेन धन-धोपन आयवति (प्र) विघारिता प्रिय....
- ४ आयवति अरहत पूजाय (॥)

एरि० ई० लण्ड २ पृ० ११६ ।

एरि० ई० लण्ड ६ पृ० २७३—४४ ।

शौडास के समय का मथुरा प्रस्तर लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

तिथि : (लगभग १६ ई० पू०)

- १ स्वामिस्व महाद्यनरुव शौडासस्य गं ब्रह्मरेण ब्रह्मखेन शेषव-सगौभवा
(पुष्क)
- २ रशि इमारं बमड-पुष्करशीनं परिचमा पुष्करशि ठरपानी आरामी
स्तम्भो ह (मी)
- ३ (शिला) पहा च ... (॥)

एपि इ० खण्ड ९ पृ० २४० ।



शौडास के समय का मथुरा प्रस्तर लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

तिथि : (लगभग १६ ई० पू०)

६. वमुना भगव (ता वासुदे)
७. बस्व महारथान ... (पत्रु-गा)
८. नं तारुषं वे (शिलाः प्रति)
९. प्ठारितो प्रीता म् (अथु वासु)
१०. वेवः स्वामिस्व (महाद्यन)
११. पस्य शौडास (स्य)
१२. संवर्ष (~) यावम् ।

मे० आर्के० सर्वे इ० नं० ५, पृ० १६९ ।

मथुरा में प्राप्त जैन-मूर्ति पर लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत
लिपि : ब्राह्मी

तिथि : अज्ञात

१ नया अरहता वपमानस्य गोविपुत्रस्य षोडशशत

२ कालबालक

३ कौशिकिय शिमित्राम अवागपटा प्रा

एपि० इ० गं १ न० ३३ पृ ३६५ ।

१०

मथुरा-जैन-मूर्ति-लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : अज्ञात

१ तिलम् । नमोस्तव ईश्वर्यः

२ महाराजमहाबल म

एपि० इ० गं० १ न० ३ पृ० १६६ ।

११

कनिष्क का बौद्ध मूर्ति पर अंकित लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

तिथि : ३ (८१ ई०)

(१)

१ महाराजस्य कनिष्कस्य सं ३ दे ३ दि २०२

२ एतापे पूषये मिषुग्व पुष्पपुत्तिस्य तदपेपि

हारिस्य मिषुग्व बलस्य वेरिदकर

१२

- ४ बोधितत्त्वो लक्षणपिठि (५) प्रतिष्ठापितो
 ५ बाराशक्तिषु प्रयत्नतो च () क्रमे सहा भार
 ६ विविदि सहा उपद्रवपात्रयेहि सद्यवेतिहारि
 ७ हि अष्टेवाधिकेहि च सहा बुद्धमित्रये त्रैपिटिक-
 ८ ये सहा अत्रपेय बन्धनेन सारपस्तान-
 ९ नेन स सहा च च (६) हि परिग्राहि सवत्सवनं
 १ इति सुखाय (॥)

(२)

- १ मिश्रस्य बलात्त्र त्रैपिटिकस्य बोधितत्त्वो प्रतिष्ठापितो ।
 २ महाअत्रपेन सारपस्तानेन सहाअत्रपेन बन्धनेन ॥

(३)

- १ महाअत्रस्य च (शिष्कस्य) ल ३ दे ३ दि २ २
 २ एतये पूर्वके मिश्रस्य बन्धस्य त्रैपिट (कस्य)
 ३ बोधितत्त्वो लक्षण (पिठि) (५) (प्रतिष्ठापितो ।)

एति ई० ल० ८ पृ० १७३ ।

१२

नहपान-वंश के अभिलेख

नासिक गुहामिलेख (अ)

माया : प्राकृत मिनिष संस्कृत

तिथि : माघी तिथि : ४१, ४२, ४३ (११६, १२०, १२३ ई०)

- १ तिर्थ [॥] बसे ४० २ बमाण-मास राजी अहारात अत्रपस
 नहपानस जामातरा बनिाक पुत्रेन उपवरातेन संपत् प्रागुदितस
 हर्म लैय निपातिर्त [१] इत थानेन अत्रक-निवि काहाण-सहस्र
 २ नि ब्रान्ति ३००० संपत् प्रागुदितस मे इममि संयो बसावान

[] मयि संति विवरिक कुशाखमले च [१] एते च क्वहार
 प्रनुवा गोवचनं वापवापु भेषिपु [१] कोलीक-निकाये २००
 इपि पडिक-शत अपर-कोलीक-निका—
 १ वे २०० वाच पा [मू] न- [प] द्विक शत [१] एते च
 क्वहारणा [अ] पडिदातवा इपि मोजा [१] एतो विवरिक
 सहस्रानि वे २००० वे पडिक शते [१] एतो मम लेखे बरतुमान
 मियुनं बीत [१] च एकीकम विवरिक वारतक [१] च सहस्र
 प्रयुतं पापुन-पडिक शत इतो कुशन—
 मल [१] कापूरादारे च मामे निरसपद्रे इतानि नाडिगेरान मुल
 मसमा॥य इव ८० • [१] एत च लव मावित [नि] मम
 लभाय निवप स पलकदारे परित्रतो ति [१] मूकोनन इतं वषे
 ४०१ कातिक-शुष पनरत पुषाक पस ४०५
 पनरत नियुतं मगपता [] देषानं ब्राह्मणानं च कायावण-सह
 साणि सपरि ७ • • प [] पवि [] शक सुवण कृता विन
 सुवका-महसरां मूल्यं [॥]
 एतकपारे परित्रतो ति [॥]

एति० इ० ल० ८ नं० १२ १० ८२ ।

नासिक गुहामिलेख (ब)

भाषा : प्राकृत मिथिन संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

मिति : (११६—१४ ई)

१ मिदम् [॥] राज्ञः क्षहराजस्य नरानस्य जामात्रा श्रीनीकपुत्र ए
 उररवानन विग-शतकद्वयदन नया बागा-लायां मुर्गा-शानतापक
 रोग देवाम्भः ब्राह्मण्यनरप पादशमामदेन अनुवर ब्राह्मण शत
 शाहमाभीजावपित्रा
 प्रमास पुट्यपाये ब्राह्मण्यम् अष्टमापाप्रदेन भरुडपुड इरुपुरे
 गोपने शोशारणे च मनुयाशाहकवर्तिभवनहन अग्राववडाग

- उत्पानकरेण इषा-पारादा-बभ्रु-तापी-करवेना (शा)-बाह
मुक्ता-नावा पुस्यतरकरेण पठावां च नवीना उमता तीरं समा—
- १ प्रयाकरेण पीडीतकावडं गोबधने सुबर्णमुले शौरारगे च रामतीर्थे
परकपर्यम्नः प्रामे नानगोले झात्रीसतनालीगेरमूलतदस्त्र्यदेन गोब
धने विरमिम्यु पबतेपु धर्माःमना इषं लेखं कारितं इमा च पोडिबो
मदारका अजातिपा च गतोस्मिं बर्पांरतुं मासये [दि] इषं उक्त
ममाद्रं मोचयितु
- ४ ते च मासका प्रनादेमेव अगमता उठमम्रकानं सुभियानं चर्षे
परिग्रहाकृता ततोस्मिं गतो पोखरानि ठत्र च मया अमितेको कृतो
वीथि च गोठहस्तानि दतानि प्रामो च इत आमेत क्षेत्रे प्रास
एव वापहिपुत्रस अशिवमूर्तिष इये कीर्तिता मुलेन काहापससह
सेहि चतुहि ४००० म सपिठुसतक नगरसीमाव उत्तरापराव बीछाप
एतो मम लेखे इत—

- ५ तानं वास्तुदलित मिश्रुतपस मुक्ताहारो मविषति
एपि० इ० ल० ८ नं० १५ पृ० ७८ ।

नासिक गुहामिलेख (स)

मापा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

क्रिपि : ब्राह्मी क्रिपि : (१११-१४ ई०)

- १ शीर्ष [॥] राजी अहरावस चत्ररत नदपानस बीदि
२ तु [बीनीक पुत्रत उपबदाठत कुडु विनिव इतमिनाय देववम
चीवरको [॥]

एपि० इ० ल० ७ नं० ११ पृ० ८११ ।

नासिक गुहामिलेख (द)

मापा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

क्रिपि : ब्राह्मी क्रिपि (१११ १४ ई०)

- १ किङ्कम् राजा छहरावस छत्रपत नहगान
- २ स इतिद्वि शीनीक पुमस उपबरातल
- ३ कुडुविनिय बलमिभाव देयपमं ओवर को
एपि० ई० ल० न० ११ ५ ८५

नासिक गुहामिलेख ()

भाषा : प्राकृत मिभित संस्कृत
लिपि : ब्राह्मी लिपि : (११६ २४ ई)

- १ ... टस छत्रपत नहगानत जामा—
- २ ... शकस उपबरातल नेत्यकेतु
- ३ ... वेधिम बाहनूकानगर वेकापुरे
- ४ ... ए अनुगामिदि उजेनिय कात्याय
- ५ ... ती प्राप्पया भुवते कतकाह—
- ६ ... बता प्राप्पयानं गवां कतल
- ७ ... भगवता देवान प्राप्पयानं प बता
- ८ ... वेवतुप पनरस छहरा—
- ९ ... गवा ! त लहसदेन उप—
- १० ... मवाय बणाठया इ—
- ११ ... सुवण तिप थ मपते तल
- १२

एपि० ई० ल० न० १४ (अ) ५ ८५-८६।

१३

फाल्गुनामिलेख (अ)

भाषा : प्राकृत
लिपि : ब्राह्मी लिपि : (११६ २४ ई०)

- १ मिथ [॥] रजो गहरातल गतल महगानत आ [म] तया
[शीनीक]-दून उतमराजेन ति

- २ गौ सतसहस्र [दे] वा मदिया बशाषाया [सु] बश [ति]
 यक्रेन (वैश्वान) ब्रह्मयान च षोडश गा—
- ३ म-वे (न) पमासे पूत-ठिवे ब्रह्मखाण, अठ-भाया-य (देन)
 [अ] गुवातं पितु सतसहस्रं मौ—
- ४ अपमित बभूवैशु शेष-वाठिनं पबभितानं आतुदितत तपत
- ५ पापखय गामौ [क] धमिको बसो स [वा] न [वा] स वासि
 तानं

प्रपि० इ० ख० ७ न० १३ पृ० ३७ ।

कार्ले गुहामिलेख (ब)

भाषा : प्राकृत

लिपि : ब्राह्मी लिपि : (११६ २४ ई)

- १ वैशुकाक्या उसमवत पुतत मितदे—
- २ बयकस यमो वानं

प्रपि० इ० ख० ७ न० ११ पृ० ३६ ।

१४

जुन्नर गुहामिलेख

भाषा : प्राकृत

लिपि : ब्राह्मी लिपि : ४९ (१२४ ई०)

- १ [रामो] महात्तयत लामि-नहपानत
- २ [धा] मतत बह-सगोनत अयमत
- ३ [दे] [यवम] च [पो] ति मठपो च पुमयय वासे ४००६
 कती [॥]

आर्क० सर्वे च० इ० तपट ४ पृ० १०३ ।

चष्टन-वण के अभिलेख

१५

बन्दठ प्रस्तर लेख

भाषा प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

तिथि- ५२ (११० ई)

(१)

- १ [राशो] [पाष्ट] मग ध्यामानिकपुत्रत राशो इन्द्रवामस जयवाम पुत्रत
- २ व [पें] द्विप [] पाश [५०] २ पगुग बहुलत व (द्वि)
- ३ विप व २ मरुनेन सीदिस पुत्रेन [म] गिनिय केष्टरीराय
- ४ [ली] दि [स-धि] त जायशति ना गोपाय लष्टि उषारित

(२)

- १ राशो व [१] प्टनम ध्यामानिक
- २ पु [व] ल राशो (व) इन्द्रवामस
- ३ जयवाम पुत्रत वपें द्वि-यं
- ४ [वा] स ५० २ पगुग बहुलत
- ५ द्विपिर्ष व २ मरुगभरेवत
- ६ सीदिस पुत्रत जायशति-स-गोपस
- ७ भाष [१] मरुनेन [सीदि] स पुत्रेन
- ८ लष्टि उषारित

(३)

- १ राशो पाष्टनम ध्यामानिक पुत्रत राशो इन्द्रवामस जयवाम पुत्रत
- २ वपें द्वि-यंनारा ५० २
- ३ पगुग बहुलत द्विपिर्ष वा २ मरुगभरेवत सीदिस सीदिस शनिक
- (गिनिक) मगोपाय शामरुपिय
- ४ मरुनेन सीदिस पुत्रेन कुन्दिनिये [लष्टि] उषारिता

- १ राज्ञो वाप्यनस स्वामीतिक पु [वल] [राज्ञो] व [धामस]
 अथवा
 २ पुत्र [स] वर्ये ५ १ फलु [न] बहुलस द्विविधं व २
 ३ अथमदेवस श्रेष्ठवत-पुत्रस श्योगशति-शोत्रस
 ४ पित्र [१] श्रेष्ठवतेन भागस्य [१] रेन कश्चि उवाचित
 एपि० इ० ल० १६ पृ० २६ प्० ।

१६

रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़-ग्रन्थ-लेख

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

विधि : ७२ (१५० ई०)

१ छिदं [१] इदं तद्वाचं मुबयनं गिरिनगरात् [पि]--
 [मुचि] कोरल-विस्तार कापोष्ण-निःशन्नि-वद-वद-सवपात्री-कृत्वा
 शम्भत-पा-

२ व-अतिपदि-सुरिल [प्] [वच] [वा] वातेनाइपि
 येश सेनुवनेनोरभं मुप्यतिविरित-मनाली-पटीवाह

३ मीद विधानं च विस्क [म्] --नादिमिरनुम [रे] मंहस्यु
 पचये वसतं [१] तद्विदं राजो महाछत्रस्य मुपही--

४ व-नाम्न : स्वामि-वाप्यनस्य पौत्र [स्य] [राठ : ध्रुपस्य
 मुपही वानाम्न : स्वामि जयवाम्न] : पुत्रस्य राजो महाछत्रस्य गुद-
 मिरम्पस्त-नाम्नो व [इ] वाम्नो वर्ये द्विमसतित [म] ७ २

५ मागर्हा-बहुल प्र [ति] [पदि] --सुप्युधिना पचव्यन
 एकावबमूतावामिच वृषिम्पा कृत्वाया गिरिकुच्यत : मुबयतिकता--

६ पलाशिनी प्रमृताना नदीमा अतिमाचोद्वृत्तैर्व्येगे : सेनुम....
 [यमा] शानुक्त-मठीकारमपि गिरि-शिलर-तद-वदाशालकोरत [स्य]
 वार-शरशोष्ण-विर्वाठिना पुगनिवनतद--

७ श-यरम-भौर-बोगेन वाकुना प्रमथि [ठ] उभिल-विहित
 अर्जरीकृताव [बी] [व] [छि] प्वाय-भूष-गुहम-कृताप्रदान
 आ नदी [ठ] साधिस्युद्राटितमासीत् [।] प्वायति इस्तद्यत्तानि बीयदु
 घराभ्यापतेन एतावत्येव [वि] स्ती [यो] न

८ पंचप्रति-इस्तानवगाडेन मेदेन निस्सुत-सर्व-शोष मरु पन्त
 क्कामतिभुशं दु [र] [।] [स्व] [ये] मीयस्य राज : पन्त
 [गुप्तस्य] राष्ट्रियव [वे] इमेन पुष्यगुणेन कारितं अशोकस्य मीय
 स्व [क] ते वचनराजेन दु [पा] इच्छनाभिच्छाय

९ प्रथ [।] स्त्रीमिरल [] कृत [।] [ठ] ल्कारित
 [पा] प राजानुदय कृत-विधानया तस्मिं [मे] वे इष्टवा प्रमाह्या
 वि [र] त से [उ] ग्ना आ ययमप्रमृष्यः [इ] तन्मुदि [व
 रा] पलाहमी वारणा-गुणतस्तम् पथैरभिगम्य रघुगार्थं पठित्वा वृत्तन
 [आ] प्राणोप्लान्नास्तुभ्यारपनिवृत्ति-कृत—

१० सत्यप्रतिभेन अस्य [व] नमामप्समिमुन्नागत-वदश शत्रु
 महत्त्वं नितरन्त्यत्वा विगुण रि [पु] ...त-कादरयन स्ववममितव्रतन-यत्
 प्रणियति [ता] [बु] प शरशब्देन इत्यु-स्यात्-मुय-नोगाविमिरुप
 सृष्टपूष-नगर निगम—

११ वनराजानां स्वबोधादिगतानामनुरक्त-उक्ता प्रवृत्तानां पूर्वाप
 राक् राव-त्यनूनी-वधानत-गुराष्ट रप [छ मरु-कृष्य-नि-पु-नीषां]
 र कुकुरापरं निपासा-र्त्तानां समयायां ताप्रयावाय [यावत्मात
 धमाय] काम विपयाणां विपयाणां पतिना मरु-धप्रविष्कृत—

१२ वार उर्ध्वं जा [ती] तस्कादिदेवानां शीघ्राना प्रमद्यात्मावचन
 इच्छित्वाय रतरगतं र्त्तैरिति-मात्वा-मन-जोम्यावचन संबंधा
 [पि] दूर [त] या अमुतावनाप्रत-दयता [वार] ...
 [प्राप्त] रिज्जेन अष्टरात्र प्रतिष्ट-पन्न पगास्य-इत्यो

१३ इदकारित धमानुशान्त शम्बाध-याप्रप-म्यापादानां विद्वानां
 महर्तानां पाण्य धारण विद्वान-प्रयोगावाज-विपुष-कीर्तना हरण

(४)

१ राजो वाप्यनस यामोष्ठिक पु [वस] [राजो] ४ [फामस]

अपहाम

२ पुत्र [व] वर्षे ५० २ पद्गु [न] बहुवस द्वितीयं व २

३ श्रुपमदेवस त्रेप्यदठ-पुत्रस श्लेषशक्ति-गौरस

४ पित्र [१] त्रेप्यदतेन यामस्य [१] रेन लष्टि उषापित

एषि ई० अ० १६ पृ० २६-२५ ।

१६

रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ प्रस्तर-लेख

माया : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

दिपि : ७२ (१५० ई०)

१ लिख [१] इयं तडाकं मुद्रयनं गिरिनगराद् [पि] ..

[मसि] कौपल विस्तारा यामोष्ठय-निःशम्भ-वद-दद-कर्णपाली-कला
शप्यत-या-

२ इ-भक्तिपदि-सुरिण [प्य] [वस्य] [वा] जातेनाकृदि

मेय सेतुबन्धेनारपयं मुप्यठिभिहित-मनाली-परीवाह

३ मीढ विधानं च विस्व [ग्व] नादिमिरनुम [ई] मंहसु

पचय वर्तते [१] तदिदं राजो महाध्वजस्य मुद्रही—

४ ठ-मान्न : स्वामि-वाप्यनस्य पीत्र [स्व] [राजः] क्वपस्य

मुद्रही वानाम्नः स्वामि अवराम्न] पुत्रस्य राजा महाध्वजस्य गुरु-

मिरभ्यस्त-नाम्नी ४ [इ] वाम्नो वर्षे द्विगतसित [म] ७० २

५ मागशीर्ष-बहुल प्र [ति] [परि] .. सुप्यदृष्टिना पञ्चम्यन

पकाशकमृतावामिब श्रुपिष्ठां कृताया गिरिकुम्भतः मुद्रसतिष्ठता—

६ पलाशिर्ना प्रमुठाना नर्दीना अदिमात्रोद्गृहीर्ष्येगे : सतुम....

[वमा] द्यादुस्य प्रतीकारमपि गिरि-शिवर-तद-तदाहालकोरत [स्व]

द्वार शरशोष्ठय-विष्वक्तिना पुगनिपनयद—

* श-परम-धीर-योगेन वायुना प्रमदि [त] सक्षिप्त-विदित
 अर्द्धरीडुताव [र्वा] [र्ख] ... [छि] प्यारम-वृष-गुरुम-कृताप्रदान
 घा नदी [त] लादित्युद्धाटितमाठीर [।] अरवारि इस्तयतानि शीयडु
 चराम्पासतेन एतावत्येव [वि] स्ती [खे] न

८ पंचसप्रति-इस्तानवगाडेन भवेन निस्तुन-सर्ध-तोर्म मरु बन्व
 कल्पमतिमुगं दु [र] [।] [ख] [मे] मीयस्व राज पन्त्र
 [गुतस्व] राष्ट्रवत् [खे] श्येन पुष्पगुप्तेन कारितं अशोकस्व मौर्ध
 स्व [ह] त बचनराजेन तु [या] स्फनाधिष्ठाय

९ मख [।] लोमिरस [] कृत [] [।] [त] स्कारित
 [वा] प रामामुख्य इत-विधानया तस्मिं [मे] वे दृष्टया प्रनाम्ना
 वि [र्तु] त स [तु] त्या आ गमात्ममृत्य व [ह] तसमुदि [व
 रा] अलक्ष्मी-पारणा-गकातस्तम्ब बरीरभिगम्य रत्नशाप पतित्य वृत्तन
 [आ] प्रासाध्यानात्पुरुषयपनिवृत्ति-कृत—

१० कल्पप्रतिबेन अन्य [प] मप्रामध्वभिमुष्पागत-सदृश-राजु-
 प्रहरण-नितरकला विगुण्य रि [पु] त-काकयन रक्षयमभिगजतन-यद
 प्रणियति [ता] [पु] प शरकवेन इत्य-व्याल-मुग-रोगादिमिरनुप
 सप्तपूष-नगर निगम—

११ जनरक्षाना स्वदोष्यद्वितानामनुरक्त-सर्ध-प्रकृतानां पूषाप
 राक राधन्यमूर्धनी-बखानस-मुगष्ट रव [अ मरु-कल्प-किन्पु-मीर्वा]
 र बुकुराररा निराशा-दीनां समप्राणां तत्प्रमाबाप [वासभात
 वमाप] काम विपयागा विरपाया पतिना मख अत्रविष्कृत—

१२ बार शर्दी जा [ता] रतकाविपरानां धीषयानां प्रकशात्मावचन
 र्दितगावय रतरलातकणोर्दिरनि-मीष्पात्रमवजोव्यावजास्य संर्दपा
 [वि] दूर [त] या अमुरशरनात्प्रात-यशुता [वाह] ...
 [माप] विजयन अष्टरात्र प्रतिष्प-पवन यथात्य-इत्या

१३ पदुपात्रित-यमानुशमेन शरकाप-मान्धव-व्यापावानां विधानां
 मार्तनां पारण बारण विधान प्रयागावाप-विपुन-कीर्तिना सुरग-

गङ्गा-रथजप्यति-धर्मं नियुद्धय... ति परबल-शापव-शौष्ठव द्विदेष
अहरहर्हानि-मानान—

- १४ वमान धीशेन स्पृक्षलक्षेण पवावत्प्रमैर्पक्षिशुल्कमागैः कानक-
रजत-वज्र-वह्न्यै-ररनोपषय विष्यग्दमान-कीरोन स्फुट-कामु-मधुर
चित्र-कान्त-शब्दतमयोदारा लंकृत-नाच-पद्य [काम्य-विधान
प्रवीणे] न प्रमाद्य-मानोन्मान-स्वर-गति-वर्ण्य-तारसत्त्वादिभिः
१५. परम-लक्ष्य-स्य-जनैरुपेत-कान्त-मूर्तिना स्ववमचिगत महाद्यत्रप
नाम्ना मरेंद्र क [म्वा] स्वयंबरामेक-मात्थं प्राप्त-वान्न [१]
महाद्यत्रपेश रुद्रबाम्ना बर्षतहसाम गो-त्रा [छ] [य]
[१५] धर्माकीर्तिबृद्धवर्षं च अपीडयि [ल] कर-विष्टि
- १६ प्रणयतिमामिः पीरजानपरदं धनं स्वस्मात्कोद्या महता धनौषेन
अनतिमहता च काशेन त्रिगुण-वृद्धतर विस्तारामं सेतु विद्या [ब
स] ध्वंश [डे] ...[सु] बर्षान-तरं कारितमिति [१] [अरिम]
मन्तर्वे
- १७ [च] महा [छ] त्रप [ल्य] मतितात्रिध-कर्मतत्रिधैरमात्प
गुण-समगुन्तैरप्यतिमहत्वादेवस्वानुत्साह विमुक्त मतिमि [:]
प्रवाण्यपार्श्वरम []
- १८ पुन—मेतुबन्ध नैराशवाद्वाहामूलासु मजासु इहाधिष्ठामे पीर
जानरजना-मुपहाय पार्थिवेन कृत्स्नानामानज-मुवाप्यानां पाण
नात्त्वमियुक्तन
१९. पहलपेन-कुसैर-पुमेशामास्येन-मुविद्यान्नेन वपावहर्षं धर्म-अवहार
इत्यनैरुवागममिबर्हयता शक्यतन वाम्तेनाचयलेनाकिरिमतेनाप्ये
शुद्धाप्येह
- २० स्वधितिष्ठता धम-काति-मशाधि मतुरमिबर्हयतानुष्ठित [मि] ति

जीवदामन प्रथम का जूनागढ़ लेख

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

दिपि : १०० (१७८ ई०)

- १ --- [छ] कस्य स्व [ि] मि जीवदामस्य एताय पूषाय वप
[ि] १०० ---
- २ -- [व] रवदत्तास्य वास्तुन [म्] विद्वस्य व [स्तु] शुभम्
कस्य रामकस्य पुत्र [ि] ---

एपि० इ० ल० १८४० १४ ।

रुद्रसिद्ध प्रथम का गुण्डा-लेख

भाषा प्राकृत मिथिल संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

दिपि : १०३ (१८१ ई०)

- १ मिज् [] रवा महस्य [वम्] म स्वमि वाप्यन प्रीतरय राता
घषारय स्वमि जयदाम वीरस्य
- २ (रय) राज् [जी] महस्यपरस्य स्व [ि] मि-रुद्रदाम पुत्रस्य
राता घषरग्न स्वमि इह
- ३ सीहरस्य [व] वे [व्] मुषरगत १०० ३ वैशाख शुद्धे पञ्चम
[मि] भाव दिवा रा [दि] नि नघ
- ४ व मुहूत शर्मोत्त सनारति वारवरय पुषेण सनारति-राम
[म्] तिना हाम स्वो
- ५ [व] विप वा [वी] [र] नि [तो] [वज] अतिरन
सव-रना हिल गुणायमिति

एपि० इ० ल० १९४४ ११५ ।

जयदामन के पीत्र का जूनागढ़-प्रस्तर लेख

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी लिपि अक्षरम्

स्थपा मुरगयेन [घृत्रा] र्वा पय [म]...
 ... चाप्यनस्य प्र [पी] त्स्य राज्ञः छ [जय] स्व-स्वामि-जयवाम
 [पी] त्स्य राज्ञा म [हाछ]
 [पेत्र] शुक्लस्य विवसे पंचमं ५ १ [ह] गिरिनगरे देवामुर
 नाग-व [छ] रा [छ] से
 ... तथा [पु] रमिष केवलि- [ज्ञा] न-सं (माप्या) ना
 जरा मरु

एपि० इ अं १६ पृ० २८१ ।

००

रुद्रसेन प्रथम-नारदा (बस्थन) प्रस्तर-लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी लिपि : १२० (२०५ ई०)

- १ [व] ये १०० १ [७] [मा] द्रपद-वदुल्लस ५ २ [१]
 जो महस [म] पस
२. मद्रमुल्लस स्वम् (स्वामि) चाप्यनपुत्र-श्रीवत्स राज्ञा व [छ]
 पस
- ३ स्वामि जय [वा] म पुत्र-श्रीवत्स राज्ञो मह-छत्रपस्य मद्र
 मुगस्य
- ४ [स्व म रुद्र [इ] दाम पी [न] स्व राज्ञो म [ह] व
 [व] पस्य मद्र-मुगस्य स्वा [म] ि

रुद्रसीह [पुत्र] स्व राहो महोत्तमस्य स्वामि रुद्रसुतस्य इहम्
शत्रु

१ मानस-स-भोत् [न] स्व प्र [ता] शक-पुत्रस्य अर [र]
परस्य भाप्रमि : उरयवित [] स्व [र्ग]

७ ..

एति १० ११० १६ पृ० २१० ।

२१

स्वामि जीवदामन का कानखेग-सैख

माया : प्राकृत मिमित संरूप

लिति : ब्राह्मी

तिथि : १०० (२०६ ई०)

१ विद्व ॥ महावतस्त्रिदश गण-सेनारनेरभितमनस्य स्वामि
महासन महातेज साहित्यवीर्य जीवदाम..

२ बर्मादिजयन शकनरुद्रपुत्रेण महावदएहनायकेन शकन भीपरद
[र्म] एषा बर्मा...सा [मि] स्वराग्यामिभृदिकरं भवति क
ल [] बलरे भयोद्यम []

३ भयण-रुद्रस्य वरुमी-पुत्रकमतरिबलं कलाणाम्पुत्रस्य-रुद्रस्य
भंमद्यपरमम जामिमेताज्जर्म्मपयोर्षं पम्मागिर्नपुदया-भाद..

४ शाघात पदु : सत्य...दुर्भोगम्...इ...मारि...कारि (अ)
य म कलिल : कर्माधिमन : नदा

५ कत्वाना [] यिय वरुनो जल निधिद म्मामन १...गठ : ...
ध्...पाध्

६ हू [प] भी परबम्मणा गुन्तवा वानारिनोर्षं गुप्त
१००१...ध्...ए...

एति० १० ११० १६ पृ० २१२ ।

कठिनार्थों का सामना करना पड़ेगा। सर्वप्रथम और विकट समस्याओं को हमारे सामने उपस्थित होती है, वह है शुक्र-पहलव राजाओं का कथ। उनके अनुसार अथ प्रथम, अवलितिप और अथ द्वितीय ये सब एक ही व्यक्ति के विभिन्न नाम थे। उसी प्रकार स्पतिरिस और स्पतिराहसेस भी एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। उनका यह कहना बुद्धि को कुचिठठ करना है। इसी प्रकार वे मथुरा के राजाओं को तथा इक्ष्वाकु के सत्रप नहपान को माठस के पूर्व साधने का वाच्य करती हैं, या कि सर्वथा असंभव है तथा हास्यास्पद है।^१

रैप्लन डार्न, मार्शल आदि विद्वानों के कथित मत को ही मान कर हम शहरोर, मरा, तक्षशिला ताद्व-यत्रादि, शकों के प्राचीनतम भारतीय क्षेत्र में प्राप्त, अमिलेन्सों का काल निर्धारण करेंगे। शकों का सबसे प्राचीन अमिलेन्स उस क्षेत्र में पाया गया है जहाँ सत्रप शातक राज्य करते थे।^२ और यह स्पष्ट हो चुका है कि यूनानी शातकों में मिलिन्स महान् शातक था, जिसने संभवतः एक संवत् भी चलाया था। उसका काल निर्धारण १५५ ई पू किया गया है।^३ यूनानी महीनों का प्रयोग (शकों तथा उनके बाद के शातकों में) यह प्रमांनित करता है कि उनके पूर्वज किसी संवत् का प्रयोग करते थे। तक्षशिला ताद्वत्र में पनेमस (माक महीना) का उल्लेख हुआ है।^४

मिलिन्स न किसी संवत् को चलाया था इतका पता नहीं अमिलेन्स से चलता है— 'मिनद्रस महरजस कटिअस दिवस ५०५११ म (ख) (ठ) मे (र)....।'^५

१ बी० एल० डी० ए० सी० १९५३ पृ० ५२१-८८।

२ डा० नारायण, दि इण्टीप्रोक्ल, पृ० १५४।

३ वही, पृ ७०।

४ एरि० ई ५१५५।

५ वही, २५११-८।

इस प्रकार यहद्वीप, मेरा और ठठठिला ताछप्रवादि अमितेली का काल १५, १७ और ७७ ई० पू० निर्धारित होता है। एक संवत् के संबंध में डा० अश्वकियार नारायण, अम्पल प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व, भारत महाविद्यालय, काशी विश्व विद्यालय, का मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार "शकों के ध्वना संवत् तब चलाया जब उन्होंने अपने प्रथम राज्य की स्थापना की— अर इली की घाटी से निकलने के पश्चात् ही, ईसवी पूर्व १५५ में। आरे जी ही, पर जो संवत् चलाया गया, वह ईसवी पूर्व १५५ में ही चलाया गया होगा। एक ही समय में दो संवत् के चलाने के कारण हमें भाव्य हो कर पहले की मानना पड़ता है जो कि 'बबन संवत्' के नाम से प्रचलित है, जिसका मिलिंद ने चलाया था।^१

विश्व-प्रथम एवं परिश्रमीतर भारत के बाद शकों का दूसरा कुल मथुरा का था। मथुरा के शक-कुल के बारे में पर्याप्त प्रकाश 'मथुरा मिह शोर्ष लेण' प्राप्त है। इस लेख से इस कुल के काम का पता चलता है। लूका के अनुसार यह लेण अमोहिनी अयागरह से प्राचीन है।^२ लूकर ने इस लेण पर एगुदे अंक की ७२ पढ़ा था। बूलर ने ठठको ४२ पढ़ा है। रैजिन ने भी ठठको ४२ ही पढ़ा।^३ इस प्रकार अमोहिनी अयागरह के काल का शिष्य विवायप्रस्त बन गया। मथुरा किह शाय लेण अमोहिनी लेण से प्राचीन है इसका निष्कर्ष सरलता से निकाला जा सकता है। अमोहिनी लेण में शोराठ का महाधर कहा गया है जबकि मथुरा मिह शाय लेण में ठम करल धर कहा गया है।

मथुरा अधिनय से पता चलता है कि मथुरा धरणी का चरला

१ डा० नारायण, हि इरहोमीकन, पृ० १४४।

२ डा० जी० ई० दि पृ० ११४।

३ डी० दि० ई० ११११।

कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। सर्वप्रथम और बिकट समस्या जो हमारे सामने उपस्थित होती है, वह है शक-पहलव राजाओं का क्रम। उनके अनुसार अथ प्रथम, अपलिथिय और अथ द्वितीय ये सब एक ही व्यक्ति के विभिन्न नाम थे। उसी प्रकार स्पतिरिस और स्पतिराइसेस भी एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। उनका यह कहना बुद्धि की कुचिठत करना है। इसी प्रकार वे मथुरा के राजाओं को तथा दलन के रूप नहपान का माठस के पूर्व लोचने का वाच्य करती हैं, जो कि सबका अर्थमय है तथा हास्यास्पद है।^१

रैषन टार्न, मार्शल आदि विद्वानों के कथित मत को ही मान कर हम शहबौर, मीरा, तक्षशिला ताद्वग्गवादि, राज्यों के प्राचीनतम मार तीव क्षेत्र में प्राप्त, अभिलेखों का काष्ठ निवारण करेंगे। राज्यों का सबसे प्राचीन अभिलेख उस क्षेत्र में पाया गया है जहाँ यवन शासक राज्य करते थे।^२ और यह स्पष्ट हो चुका है कि यूनानी शासकों में मिश्रित महाम् शासक या, जिसने संभवतः एक संवत् भी चलता था। उसका काल निर्धारण १५५ ई० पू किया गया है।^३ यूनानी महीनों का प्रयोग (राज्यों तथा उनके बाद के शासकों में) यह प्रमाणित करता है कि उनका पूर्वज किसी संवत् का प्रयोग करते थे। तक्षशिला ताद्वग्ग में यनेमत (याक महीना) का उल्लेख हुआ है।^४

मिथिन्द्र न किती संवत् को खलाया या इतका पता बजौर अभिलेख से चलता है— 'मिन्द्रस महरजस कठिअठ दिवस ४४४११ म (च) (ठ) में (इ) ...।'^५

१ बी० एल० सी० ए० ली० १८५१ पृ० ८२१-८६।

२ डा० नारायण, हि इण्डोलॉजी, पृ० १४६।

३ वही, पृ० ७७।

४ एमि ई ४४५५।

५ वही, २४१-८।

इस प्रकार शहरीर, मीरा और लक्ष्मिणा वाङ्मयप्रति समिलेती का काल १५, १७ और ७७ ई० पू० निधारित होता है। यह संबंध क संबंध में डा० अक्षयकिशोर नारायण अष्टम प्राधान भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, भारती महाविद्यालय, काशा विश्व विद्यालय का मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार "यको ने अपने संबंध तब पलाया जब उन्होंने अपने प्रथम राज्य की स्थापना की— अरर इती की पाटी से निकलने क परभाव ही, ईशवी पूर्व १५५ में। बाहे जो हा, पर जो संबंध पलाया गया, वह ईशवी पूर्व १५५ में ही पलाया गया होगा। एक ही समय में जो संबंध क पलाये के कारण हमें बाध्य ही कर पहल को मानना पड़ता है जो कि 'यवन संबंध' के नाम से प्रचलित है, जिसको मिश्र म पलाया या।"^१

विषय-व्यय एवं परिणामांतर भारत के बाद यको का बृहदा कुल मपुरा का था। मपुरा के यह कुल क बारे में पयात प्रकाश 'मपुरा मिह र्शीर्ष लेख' बालता है। इस लेख से इस कुल क क्रम का पता चलता है। शूजा के अनुसार यह लेख अमोहिनी अयागण्ड से प्रार्थन है।^२ बृहदा ने इस लेख पर गुप्ते अंक को ७२ पदा था। बृहदा ने उसको ४२ पदा है। रैजने ने भी उसका ४२ ही पदा।^३ इस प्रकार अमोहिनी अयागण्ड के काल का विषय विचारप्रस्त बन गया। मपुरा मिह र्शीर्ष लेख अमोहिनी लेख से प्रार्थन है इसका निष्कर्ष बलता से निकाला जा सकता है। अमोहिनी लेख में योहात का महाधर कहा गया है जबकि मपुरा मिह र्शीर्ष लेख में उसे काल धर कहा गया है।

मपुरा अभिलेख से पता चलता है कि मपुरा धरणी का पहला

१ डा० नारायण, वि इरहामीरत, पृ० १४४।

२ सी० पी० ई० वि० पृ० ११४।

३ ई० वि० पृ० १५११।

राजा राहुसुत था। यह महाक्षत्रप शोकास का पिता या राहुसुत का
बाद उसका पुत्र उधराबिहारी हुआ। पिता की मृत्यु के बाद ही वह
महाक्षत्रप बना होगा। मथुरा सिंह शीर्ष श्लोक में वह सिर्फ क्षत्रप कहा
गया है। अर्थात् पिता के मातहत बुवराज का हेतियत से शासन में
सहायता करता था। उक्त श्लोक में पत्रिक महाक्षत्रप कहा गया है जब कि
तक्षशिला ताम्रपत्र उसके महाक्षत्रप के संबन्ध में लक्षणा मूक है।^१

वही संबन्ध का पत्रका पुनः उक्त लक्षणा होता है। याद रेण्डन के
मतानुसार विक्रम संवत् में इसे इम निर्दिष्ट मन तो शोकास का काल
५८४२-०१७-१६ ई पू होता है। अमोदिनी लेख से मथुरा सिंह
शीर्ष लेख मान्यमान कहा गया है। यदि मथुरा लेख को अमोदिनी
उक्त से ६ वर्ष प्रान्चल मान लें तो मथुरा अभिलेख का २२१६ पू०
काल-निर्धारित हो जाता है। स्तन कोनो ने भी इस श्लोक का विक्रम
संवत् में निर्दिष्ट माना है।^२

यदि अमोदिनी लेख के ७२ को मानकर उसको विक्रम संवत् में
न मानकर यवन संवत् में, ई पू० १५५, रखें तो कुछ कठिनाइयों
का सामना करना पड़ेगा। पहला तो वही कि तक्षशिला ताम्रपत्र का
काल हमें ७८८ मान्य है और मथुरा सिंह शीर्ष श्लोक में पत्रिक को
महाक्षत्रप कहा गया है जबकि तक्षशिला से वह अपने पिता के साथ
शासन करता हुआ मिलता है अर्थात् सिर्फ क्षत्रप था। और यह बात
है कि अमोदिनी लेख मथुरा सिंह शीर्ष लेख से मान्य है, तो क्या
पत्रिक (महाक्षत्रपति) तक्षशिला ताम्रपत्र से भी पहले एकबार महा-
क्षत्रप रह चुका होगा। और याद में क्या अपने पत्र से वह स्तुत कर
दिया गया। क्योंकि तक्षशिला ताम्रपत्र में उसका कवल क्षत्रप उपाधि
से अभिहित किया गया है। यह ठीक नहीं बैठता। और फिर एत

१ एपि० ई ११४१।

२ के हि ई १५५६।

३ एपि ई १४१३६ ४१।

प्रकार का पटना शुद्ध इतिहास में कहीं पठित हुए नहीं मिलते। अतः एव अमोहिनी अयागपट्ट का मध्यम पिह शीघ्र सेग विन्ध्य मन्त्र में ही रहे होंगे और अमोहिनी लहर का अंक संभवतः ८० ही रहा होगा। इसमें पत्रिका के शासन की तिथि या मासगुण ही माना है। पत्रिका कि टीका-टीका पता नहीं चल पाया था। उसने लगभग ५० वर्षों तक शासन किया।

इस प्रकार अब तक शुद्ध पत्रिका प्रभाव में रहे उन्होंने पत्रिकों का अनुकरण किया और बयो-बयो प मारतीय हात गण भारतीयों का अनुकरण करने गए। मध्यम में अंक उन्होंने भारतीय संस्कृत का अनाया और कालान्तर में ७८ ईसा से बलाए हुए 'शुद्ध संस्कृत' को अपनाया। महागण के उद्घाटन, अमोहिनी और काठियावाड़ के महाद्वारों के साथ इसी संस्कृत में है।



सहायक ग्रन्थ-सूची

१ सस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थ

पाणिनि का अष्टाध्यायी
पतञ्जलि का महामाध्य
शुंगपुराण
कालिकाचार्य कथानक

२ ब्रह्मसिद्धि ग्रन्थ (यवन)

हेरोडोटस, अनु० एलिसन
प्लिनि, अनु० वाट्सन
पेरिप्लस आफ दि रीयियन सी, अनु० मैकिडल
(इण्डियन ऐंजिकवेटी लवड ८)

३ अंग्रेजी ग्रंथ

ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया
बर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया रिमथ ।
पीक इन बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया, डार्न ।
तदशिला, माथल ।
फायम इन्स्कृप्शन इण्डियाफेरम, लवड २, ३।
ऐंमेट हिस्ट्री आफ बकन अनु० बीबिवार
सीयियन पीरियड आफ इण्डियन हिस्ट्री, लूजा
मिजेकड इण्डियन रियरिग आन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइ
वेणन, दिनचर्चद गरकार ।
हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डियन आन, कुमारस्वामी
हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डियन आन, परगूठन

दि इण्डो-ग्रीक्स डा० अरबकिशोर नागवन ।
 ऐंनैट इंडिया, टी० एल० घास
 दि शकाठ इन इंडिया, श्री सखभव
 दि " " " डा० तुपाकर पद्मगण्पाय
 विरुमाहित आर उज्जयिनी, डा० राजवली पारडेव
 दि इंडियन पैलियोप्राही, डा० " " "
 दि एच आर इपीरिपल मुनिटी ।
 ए म्यू दिस्ट्री आर इंडियन पीपुल ।

(ल)

आठ लान्त आर महापन बुद्धिम, डा० डी० तुमुडी
 दि सेंट्रल क्रिशाठडी आर 'बुद्धिम, डा० टी० आर० श्री० मूर्ति
 मधुरा मूर्तिवम कैटलाग, फोगल
 कैटलाग आर दि स्वायंठ आर दि आंस डाइनेस्टी
 वेस्डर्न सबाः आदि, रैफ्तन
 स्वायंठ आर दि इण्डो-ग्रीविवन, कनिपम
 दि क्मिहेतिव दिरुगी आर इंडिया, गरुड ९
 बनाया होर्ड, डा० अस्तेकर
 पोर्मीशन आर बीमन इन दि नू मिबिलाइजेशन डा० अहनकर
 इकोनामिक दिस्ट्री आर ऐंनैट इंडिया, एल० के० बास
 कारपोरट लाइफ इन ऐंनैट इंडिया आर० सी० मयूमकार
 मिनेर्याल काम मरकुन इंसुप्रांन, डी० श्री० दिरकोकर
 दिस्ट्री आर वमशास्त्र, पी० बा० काय
 बैरनगिम, शैविम एंड अर माइनर दलिबन किरुम,
 आर० सी० मंडारकर
 स्टोरी आर कालक, नार्मन बाउन
 दिरुगी आर इंडियन रिस्तानगी-मु० मा० रामगुन

हिन्दी ग्रन्थ

- मार्चीन भारत का इतिहास, डा० रमाशंकर बिराठा
 " " ' डा० मगवतशररु उपाध्याय
 पाणिनिशालीन भारतवर्ष, 'डा० वासुदेवशररु अमवास
 हिन्दी उ हिन्दु का बहत् इतिहास, प्रथम खण्ड
 भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, डा० मगवतशररु
 उपाध्याय
 संस्कृत साहित्य का इतिहास, पं० बलदेव उपाध्याय
 बौद्ध दर्शन तथा अम्य भारतीय दर्शन, भरतनिह उपाध्याय
 हिन्दू-परिवार-मीमांसा भी हरिदत्त बंसालकार
 हिन्दू राजतंत्र, आरुध्याय आबसवाल
 भारतीय इतिहास की मीमांसा, अयचन्द्र विशालकार
 प्राचीन भारतीय शासन-व्यक्ति डा अश्वमेध
 जैन दर्शन, म्वा० म्वा मुनि भी म्वायविजय जी
 शैरमत— डा० यदुबंशी
 मगवत संप्रदाय, पं० बलदेव उपाध्याय

शोध संबंधी पत्रिकाएँ

(क) अंग्रेजी :

इंडियन एंडिकवेरी

एशियाटिका इंडिका

अनरल रायल एशियाटिक सोसाइटी

अनरल वादि प्राक आरु रायल एशियाटिक सोसाइटी

ममापर्स आरु दि आर्केम जिकण तर्बे इंडिया

(ग)

ममापर्स आरु दि आर्केम जिकण तर्बे एम्मुघल गिरोर

अनर व घ उदीमा गिम्प सोसाइटी

स्मृतिकोशिका क्रानिकल

अनरुत उचर प्रदय दिरदारिकल मासाशटी

आर्सेलात्रिकल तये आरु वेरटर्न इटिया

इटियन दिरदारिकल क्याटलो

प्रार्तीदित्त आरु दि इटियन दिरदारिकल काम ल

(ल) हिन्दी :

विष्टम स्मृति-ग्रन्थ (इबालि इ

नागरी प्रारिणी पत्रिका (विष्टम स्मृति-ग्रन्थ)

विष्टमादित्त संयत्-प्रवक्त (डॉ० राजयसा पायडड)



४ हिंदी ग्रन्थ

प्राचीन भारत का इतिहास, डा० रमाशंकर त्रिगुठा

" ' ' डा० मंगलेश्वर उपाध्याय

प्राग्निच्छासिन भारतवर्ष, डा० तामुदेवशरण अग्रवाल

हिंदी में हिन्दू का बहुत इतिहास, प्रथम खण्ड

भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण डा० मंगलेश्वर उपाध्याय

संस्कृत साहित्य का इतिहास, पं० बलदेव उपाध्याय

बौद्ध दर्शन तथा अस्य भारतीय दर्शन भरतसिंह उपाध्याय

हिन्दू-परिवार-मीमांसा, श्री हरिदत्त वेदालंकार

हिंदू राजवंश, काश्याप्रसाद जायसवाल

भारतीय इतिहास की मीमांसा, जयचन्द्र विद्यालंकार

प्राचीन भारत का शासन-व्यवस्था, डा० अश्वमेध

जैन दर्शन, म्या० म्या० मुनि श्री न्यायविजय जी

श्रीराम— डा० यदुबंशी

मंगलेश्वर उपाध्याय, पं० पल्लव उपाध्याय

५ शोध संबंधी पत्रिकाएँ

(क) अंग्रेजी :

इंडियन एडिक्टोरी

एग्जिक्टिव इंडिया

अनरल रायल एग्जिक्टोरी नोताइटी

अनरल रायल आफ रायल एग्जिक्टोरी नोताइटी

मेमोर्बल आफ दि आर्कैल डिप्लोम लर्ने इंडिया

(ग)

मेमोर्बल आफ दि आर्कैल डिप्लोम लर्ने एम्पुचल गिरीट

अनरल र ए उनीला डिप्लोम नोताइटी

न्यूमिथमेडिकल क्लिनिकल

कनरल उधर प्रदस्य हिरटारिकल मोनाइटी

आर्केलागिकल लवे आर वेस्टर्न इटिया

इंडियन हिरटारिकल क्वाटर्ली

प्रोसीडिंग्स आर दि इंडियन हिरटारिकल काग स

(ए) हिन्दी ।

विजय-स्मृति-ग्रन्थ (बंगाल)

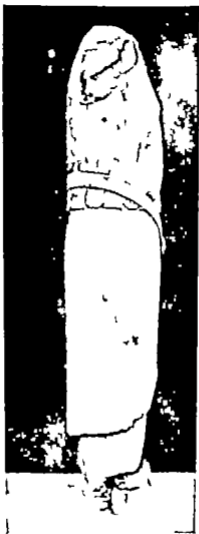
मागरी प्रचारिणी पत्रिका (विजय स्मृति ग्रन्थ)

विक्रमान्वित संयत् प्रवक्तव्य (डॉ० राजबन्सा पाटव)





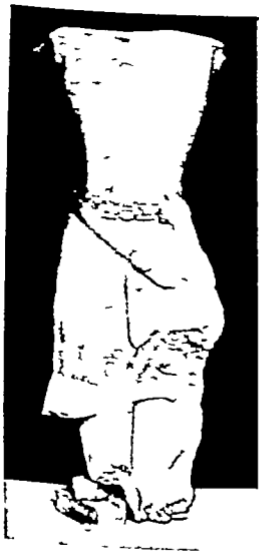
बापिसत्व-श्रतिमा [छारनाप सप्रहालय]



घटन की प्रतिमा [मयुरा संग्रहालय]



सीधीयन मैनिक् (नागाजूनीपाटा)



षटन की प्रतिमा [मथुरा संग्रहालय]

